२ आ (१५०)

श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि ग्रंथमाळा ग्रंथाङ्क-१११

॥ अर्हं ॥

अध्यात्मसार

रचयिता

श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्यायजी

पंडित श्री वीरविजयजीना टबा सह

प्रगटकर्त्ता

श्री अध्यात्मज्ञानप्रसारक मंडळ

(हा मणिलाल मोहनलाल पादराकर)

वीरात् २४६४]　　प्रत १०००　　[विक्रम स. १९९४

मूल्य ०-१२-०

मुद्रक-शेठ देवचंद दामजी
आनंद प्री. प्रेस—भावनगर.

प्रस्तावना.

श्री यशोविजयजी उपाध्यायना पून्य नामथी जैन समाज सुपरिचित छे तेओ आजे विदेही छता अक्षरदेहे जीवता छे. तेमनी केटलीक अमर कृतिओ जनसमाजमा घेर घेर वचाय छे. तेमना जेटली लोकप्रियता मेळववा बहु ओछी व्यक्तिओ शक्तिमान् थइ छे जे थोडाएक पवित्र-प्रथम पक्तिना साधुओ जैन समाजे प्रकटाव्या छे तेमाना तेओश्री एक छे

सर्वदर्शनमा तेम जैनदर्शनमा अध्यात्मज्ञान उपर घणो भार मूकवामा आव्यो छे तेनु कारण छे अध्यात्मज्ञान सर्व ज्ञानने मोखरे छे जेणे आत्माने जाण्यो तेणे सर्व जाण्यु, अने जेणे सर्व जाण्यु छता आत्माने न जाण्यो तेणे कइ न जाण्युं धार्मिक विधिविधानो, अनुष्ठानो वगेरे विकासने मार्गे लइ जनारा छे खरा परन्तु आत्मानो पूर्ण विकास अध्यात्मज्ञाननी प्राप्ति सिवाय शक्य नथी आत्मकल्याण ए ज जेनु ध्येय छे तेने माटे अध्यात्म विना आरो नथी

आत्मा गहन छे, अगम्य छे आनदघनजीए पोताना "निशानी कया बतावु रे तेरा अगम अगोचर रुप" थी शरु थता एक सुदर पदमा एनी अगम्यता बहु कुशळतापूर्वक बतावी छे तेथी ज महापुरुषो आत्मानु शुद्ध स्वरूप जाणवा सतत प्रयत्नशील रहे छे-जीवन सुद्धा समर्पी दे छे

अध्यात्मरसिकने अन्य कोई विषयमा रस पडतो नथी अध्यात्मनी तेने लगनी लागे छे श्री यशोविजयजी स्वय कहे छे के " स्त्रीना अधररूप अध्यात्मशास्त्रना स्वादथी जुवान पुरुषने

जे सुख उपजे छे ते सुखनो स्वाद अध्यात्मशास्त्रना स्वादनो जे समुद्र छे तेना एक बिंदुमात्र छे " (अ. सा. श्लो. ९) परंतु तेनी प्राप्ति अत्यंत मुश्केल छे. " जेम वनने विषे घर, दरिद्रने धन, अंधारामां उद्योत, तथा मरुदेशने विषे जे पाणी, ते दुःखे पामवा योग्य छे, तेम जे धन्य प्राणी होय छे तेने ज अध्यात्म-शास्त्र कलियुगने विषे प्राप्त थाय छे. " (अ. सा. श्लो. १७) अध्यात्मनो आ रस अमर्यादित छे, निरवधि छे, अखुट छे, अनंत छे. " कामनो जे रस ते भोगवतां सुधी मधुर छे. भलां भोजननो रस ते जमवाना वखत सुधी मधुरपणे वर्ते छे, पण अध्यात्मशा-स्त्रनी सेवानो जे रस ते तो निरवधि छे, केमके ते प्रारंभकाळथी मांडीने सदा वधतो ज रहे छे, पण क्यारे विरस न थाय. " (अ. सा. श्लो. २१)

अध्यात्म ज्ञाननी प्राप्तिथी ज मनुष्य महान् थइ शके छे. ते विना साची महत्ता आवती नथी. " जे प्राणी निश्चे अध्यात्म-शास्त्रने पाम्या नथी अने आचार्य–पंडितपणुं इच्छे छे ते पण व्यर्थ छे. " (अ. सा. श्लो. ११)

ग्रंथनी भाषा संस्कृत छे, परंतु संस्कृतनो सामान्य ज्ञाता पण समजी शके एवी सरळता अने सुगमता तेमनी भाषामां छे तेमनी काव्यशक्ति घणा उच्च प्रकारनी छे. तेमनां गुजराती काव्योमां नजरे पडती मधुरता, प्रासादिकता, शब्दलालित्य अने मनोहर उपमाओ तेमना संस्कृत काव्यमां पण नजरे पडे छे. रम्य कल्पनाओथी तेमनी काव्यपंक्तिओ दिपी ऊठे छे. अहिंसाने साचा स्वरूपमां जीवनमां उतारनार जैन भेखधारीमां जे मृदुता अने मार्दवनी आशा राखी शकाय ते मृदुता अने मार्दव तेमनी

कलममाथी टपकी रहेला आजे पण देखाय छे. भापामा तेना लेखकना मानसनु प्रतिबिंब पडे छे. तेमना अनेक लखाणोमाथी आपणे एक एवा यशोविजयनी कल्पनामूर्ति घडी शकीए छीए के जे तेओनी जीवतमूर्ति साथे कदाच अत्यत निकटनु साम्य धरावती होय.

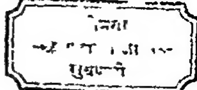
तेओश्री सस्कृतना महा विद्वान् हता. परतु विद्वान् के पडित कहेवडावबा माटे ते जमानामा जडबातोड शब्दो, क्लिष्ट समासो अने भारेखम भापानो उपयोग करवानी आवश्यकता रहती हती तेवी भापा न लखनार पडितोनी टीकाने पात्र थतो, पडितोमा तेनी गणना थती नहि श्रीमद् यशोविजयजीनामा पडितोनी भापा वापरवानी शक्ति हती, परतु तेमने सामान्य जनसमूहने प्रबोधवो हतो एवी क्लिष्ट भापा वापरी ग्रथने समजी न शकाय एवा कोयडारूप बनाववानी तेमनी इच्छा नहोती पंडितोनी टीका पण कातिल हती जनसमूहनी अने पडितो वच्चेनी भापानी खेंचाखेंची तेमना पोताना शब्दोमा आ प्रमाणे छे "जे नारे पोतानी मेळे पद वाचता अर्थ सूझे एवा अल्पार्थ ने सुगम पद जो अमे जोडीये तो खल माणम एम कहेशे जे, आ ग्रथमा काइ मार नथी, वळी जो अमे गभीर अर्थ सहित पद बाधीए तो खल माणस कहशे के कठण पद बाध्या छे, एनो शु अर्थ करीए ? ए तो मुगानी पारसी छे एवे ग्रथे कोइने गुण न थाय " (अ सा प्रशस्ति श्लो० ४) तेमनो आखो ग्रथ अवलोकता जणाय छे के तेओश्रीए काव्यनु अने विपयनु गौरव साचवता छता भापानी सरळता टकावी राखी छे, अने पडित-अपडित वच्चे समाधान स्वीकारी समतुला जाळवी बन्नेनी टीकाओथी पर थवा प्रयत्न कर्यो छे.

आ ग्रंथ उपर पंडित वीरविजयजी गणीए अर्थ भर्या छे. श्रीवीरविजयजीना परिचयनी जैन समाजने के साहित्यरसिक वाचकने भाग्येज जरूर छे. तेमनी भापानी मीठाश अने ललित उपमाओमां तेओ वीनहरिफ छे. तेमनी पूजाओथी भाग्येज जैननुं नानुं बाळक पण अजाण हशे. पर्युपणना पवित्र दिवसोमां मंदिरे मंदिरे तेमनी पूजाओना मधुर घोप कर्णपटल पर अथडाय छे. तेमना काव्योनी प्रासादिकता अने मधुरता पर मात्र जैनो नहि जैनेतरो पण मुग्ध बन्या छे ए सर्वविदित छे. तेमना जेवा समर्थ पुरुपने हाथे लखायेलो टबो बीजा कोइ लेखकना करतां वधारे प्रमाणिक होइ शके ए स्वाभाविक छे. संस्कृत नहि जाणनार वर्ग उपर तेमनो उपकार अनहद छे.

आ युगमां ज्यारे अध्यात्मज्ञान तरफ विशेप वेदरकारी बतावाती जाय छे, ज्यारे अध्यात्मशास्त्रना गहन समुद्रमां डुबकी मारवाने बदले थोडाएक आचारविचारो अने पंडिताइ पाछळ मथी धर्मना किनारा उपर घूम्या करवामां आवे छे, ज्यारे धर्म, धर्मधूरंधरो माटे, कुरुक्षेत्रनुं मेदान पूरुं पाडे छे तेवा समये आवा मार्गसूचक ग्रन्थनी खास जरूर छे. थोडाएक विचारवंत पुण्यात्माओ आ ग्रंथ वांची अध्यात्मज्ञानने मार्गे वळशे अने अध्यात्म रसनो यत्किंचित् आस्वाद करवा पण शक्तिवान् थशे तो ग्रन्थलेखकनो श्रम सफळ थयो गणाशे.

राजमहेल रोड,
वडोदरा.
ता. १–८–२७

नागकुमार मकाती
बी. ए.; एलएल. बी.





श्री यशोविजयजी उपाध्यायकृत

अध्यात्मसार (सार्थ)



ऐन्द्रश्रेणिनत श्रीमान्नदतान्नाभिनदन ।
उद्दधार युगादौ यो जगदज्ञान पकत ॥ १ ॥

श्रीशातिस्तातिभिद्भूयाद्भविना मृगलाछन ।
गाव कुवल्योल्लास कुर्वते यस्य निर्मला ॥ २ ॥

अर्थ—इन्द्रगणथी जे श्रेणि तणे नत क० नमस्कार कर्यो छे जेने एवा अने अष्ट महा प्रातिहार्यरूप लक्ष्मीए करी युक्त तथा युगने आदे जगतने अज्ञानरूप कादवमांथी उद्धार करनार एवा जे श्रीऋषभदेव भगवान् ते जयवंता वर्ता ' ॥ १ ॥ श्रीशातिनाथ भगवंत ते भव्यप्राणीओ प्रति संतापना भेदनार थाओ । मृगनु लांछन छे जेने एवा तथा जेना इन्द्रियना निर्मल भावो रमणीना विलास छे ते गाव जेनी गाय क० वाणी ते पृथ्वीमां विलास करे छे ॥ २ ॥

श्रीशैवेयं जिनं स्तौमि भुवनं यशसेव यः ।
मारुतेन मुखोत्थेन पांचजन्यमपूपुरत ॥ ३ ॥
जीयात् फणिफणप्रांत संक्रांततनुरेकदा ।
उद्धर्तुमिव विश्वानि श्रीपार्श्वोबहुरूपभाक् ॥ ४ ॥

अर्थ—शिवाराणीना पुत्र श्रीनेमनाथजी तेमने स्तवुं छुं. जे भगवंते पोताना यशे करीने जेम जगत्‌ने भर्युं छे तेमज पोताना मुखथी प्रगट्यो जे वायु तेणे करीने पांचजन्य नामे शंखने पूरीने तेनो नाद कीधो ॥ ३ ॥ फणी के० शेषनाग तेनी फणना प्रांते जे मणी तेने विषे संक्रम्युं जे शरीर तेणे करीने त्रण जगत्‌ना उद्धारज जाणे करता होयनी एवा जे श्रीपार्श्वनाथ बहुस्वरूपना कर्त्ता ते जयवंता वर्त्तो ॥ ४ ॥

जगदानंदनः स्वामी जयति ज्ञातनंदनः ।
उपजीवंति यद्वाचामद्यापि विबुधाः सुधाम् ॥ ५ ॥
एतानन्यानपि जिनान्नमस्कृत्य गुरूनपि ।
अध्यात्मसारमधुना प्रकटीकर्तुमुत्सहे ॥ ६ ॥

अर्थ—जगत्‌ने आनंदना करनार, वली जेहनी अमृतसरिखी वाणीने हजी सुधी पंडित लोको सेवे छे, अंगीकार करे छे एहवा ज्ञातनंदन जे श्री वीरजिन ते जयवंता वर्त्तो ॥५॥ ए पांचे परमेश्वरने तथा बीजा पण जिनोने तथा पोताना गुरुने नमस्कार करीने अध्यात्मनो सार जे रहस्य ते प्रगट करवाने हवे उत्साह करुं छुं ॥ ६ ॥

शास्त्रात्परिचितां सम्यक् संप्रदायाच्च धीमतां ।
इहानुभवयोगाच्च प्रक्रियां कामपि ब्रुवे ॥ ७ ॥

योगिना प्रीतये पद्यमध्यात्मरसपेशलं ।
भोगिनां भामिनीगीतं सगीतकमयं यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—घणा शास्त्रोथी भली रीते परिचयकरीने ने वली पंडितलोकोना संप्रदायथकी जे अध्यात्मशास्त्रने विषे अनुभव थयो तेथकी हुं काइक संक्षेप मात्र प्रस्तावना करु छु ॥७॥ जे रीते भोगीपुरुषने स्त्रीना गीतसगीत प्रियकारी लागे छे ते रीते योगीश्वर पुरुषने प्रीतिना अर्थे अध्यात्मरसे करीने मनोहरकारी एवो आ ग्रन्थ पद्यरचनाये करु छु ॥ ८ ॥

अथ अध्यात्ममाहात्म्य

कांताधरसुधास्वादाद्यूनां यज्जायते सुखं ।
बिंदुः पार्श्वे तदध्यात्मशास्त्रस्वादसुखोदधेः ॥९॥
अध्यात्मशास्त्रसंभूत संतोषसुखशालिनः ।
गणयंति न राजानं न श्रीदं नापि वासवम् ॥१०॥

अर्थ—स्त्रीना अधररूप अमृतना स्वादथी जुवान पुरुषने जे सुख उपजे छे ते सुखनो स्वाद अध्यात्मशास्त्रना स्वादनो जे समुद्र छे तेना एक बिंदुमात्र छे ॥ ९ ॥ जे प्राणीने अध्यात्मशास्त्रथी मनोहर संतोषरूप सुख प्राप्त थयु ते प्राणी राजाने तथा धनदने अने इंद्र सरिखाने पण लेखामां गणतो नथी ॥ १० ॥

यः किलाशिक्षिताध्यात्मशास्त्रः पांडित्यमिच्छति ।
उत्क्षिपत्यंगुलीं पंगुः स स्वद्रुफललिप्सया ॥ ११ ॥
दंभपर्वतदंभोलिः सौहार्दांबुधिचंद्रमाः ।
अध्यात्मशास्त्रमुत्ताल मोहजालवनानलः ॥ १२ ॥

अर्थ—जेम कल्पवृक्षना फलने लेवानी इच्छाये पांगलो पुरुष आगली ऊंची करे छे ते जेम व्यर्थ छे, तेम जे प्राणी निश्चे

अध्यात्मशास्त्रने पाम्या नथी अने आचार्य–पंडितपणुं इच्छे छे ते पण व्यर्थ छे ॥ ११ ॥ कपटरूप पर्वतने भेदवाने वज्र समान, मैत्रता-भावरूप समुद्रनी वृद्धि करवाने चंद्रमा समान एहवुं अध्यात्मशास्त्र ते वृद्धि पामेलुं एहवुं जे मोहजालनुं वन तेहने बालवाने अर्थे दावानल समान छे ॥ १२ ॥

अध्वा धर्म्मस्य सुस्थः स्यात्पापचारैः पलायते ।
अध्यात्मशास्त्रसौराज्ये न स्यात्कश्चिदुपप्लवः॥१३॥

येषामध्यात्मशास्त्रार्थ तत्त्वं परिणतं हृति ।
कषायविषयावेशक्लेशास्तेषां न कर्हिचित् ॥१४॥

अर्थ—अध्यात्मशास्त्रनुं भलुं राजप्रवर्तते थके कशोये उपद्रव थाय नहीं, धर्मनो मार्ग सुगम थाय अने पापरूप चोरटा नासी जाय ॥ १३ ॥ जे प्राणीना हृदयने विषे अध्यात्मशास्त्रना अर्थनुं तत्त्वतः ज्ञान थयुं छे तेने कषायरूप विषयना वेगनो क्लेश ते कदी ए न थाय ॥ १४ ॥

निर्दयः कामचंडालः पंडितानपि पीडयेत् ।
यदि नाध्यात्मशास्त्रार्थबोधयोधकृपा भवेत् ॥१५॥

विषवल्लिसमां तृष्णां वर्धमानां मनोवने ।
अध्यात्मशास्त्रदात्रेण छिंदंति परमर्षयः ॥ १६ ॥

अर्थ—जो अध्यात्मशास्त्रना अर्थना बोधनी कृपा पंडित जेवाने पण न होय तो निर्दय एवो जे कामरूप चंडाल ते पंडितने पण पीडा कर्या विना रहे नही ॥ १५ ॥ जे परमऋषीश्वर छे ते अध्यात्मशास्त्ररूप दातरडे करीने मनरूपी वनने विषे वृद्धि पामती एहवी तृष्णारूप झेहेरनी वेली तेने छेदी नाखे छे ॥ १६ ॥

वने वेश्म धन दौस्थे तेजो ध्वाते जल मरौ ।
दुरापमाप्यते धन्यैः कलावध्यात्मवाङ्मय ॥१७॥

वेदान्यशास्त्रवित् क्लेश रसमध्यात्मशास्त्रवित् ।
भाग्यभृद्भोगमाप्नोति वहते चदन खरः ॥ १८ ॥

अर्थ—जेम वनने विषे घर, दरिद्रने धन, अधारामा उद्योत तथा मरुदेशने विषे जे पाणी, ते दु खे पामवा योग्य छे, तेम जे धन्य प्राणी होय छे तेनेज अध्यात्मशास्त्र कलियुगने विषे प्राप्त थाय छे ॥ १७ ॥ वेदना जाण तथा बीजा शास्त्रना जाणनारा ते क्लेशना भोक्ता छे, अने रसना भोक्ता ते अध्यात्म-शास्त्रना जाणनारा छे ए रसनो भोग तो जे भाग्यवत होय तेज पामे, अने जे गधेडो होय ते तो मात्र चदनना भारने उपाडे एटलुज ॥ १८ ॥

भुजास्फालनहस्तास्यविकाराभिनया परे ।
अध्यात्मशास्त्रविज्ञास्तु वदत्यविकृतेक्षणा ॥१९॥

अध्यात्मशास्त्रहेमाद्रि मथितादागमोदधे ॥
भूयासि गुणरत्नानि प्राप्यते विबुधैर्न किम् ? ॥२०॥

अर्थ—भुजाना आस्फोट करवे करीने, वली हाथने तथा मुखने विकारे करीने, इत्यादिक नाटकना अभिनय करवे करीने भोगी पुरुष सुख करी माने छे, अने अध्यात्मशास्त्रना जाण जे पुरुष छे, ते तो अविकारी नेत्रना धणी इंद्रियना विकार रहित छे ॥ १९ ॥ अध्यात्मशास्त्ररूप जे हेमाचल पर्वत तेणे मथ्यो छे आगमरूप समुद्र ते थकी नीकल्या घणा गुणरूपीया जे रत्न ते तो विबुध जे पडित लोक तेओज पामे छे ॥ २० ॥

रसोभोगावधिः कामे सद्भक्ष्ये भोजनावधिः ।
अध्यात्मशास्त्रसेवायां रसोनिरवधिः पुनः ॥२१॥

कुतर्कग्रंथसर्वस्व गर्वज्वरविकारिणी ।
एति दृग् निर्म्मलीभाव मध्यात्मग्रंथभेषजात् ॥२२॥

अर्थ—कामनो जे रस ते भोगवतां सुधी मधुर छे, भलो भोजननो जे रस ते जमवाना वखत सुधी मधुरपणे वर्त्ते छे, पण अध्यात्मशास्त्रनी सेवानो जे रस ते तो निरवधि छे केमके ते प्रारंभकालथी मांडीने सदा वधतो ज रहे छे, पण क्यारे विरस न थाय ॥ २१ ॥ कुतर्कशास्त्रना सर्व रहस्यनो जे अहंकार, ते रूपी ताव तेहना विकारवाली थइ एहवी जे दृष्टि ते अध्यात्मशास्त्ररूप औषधना योगथी निर्मलपणाने पामे छे ॥२२॥

धनिनां पुत्रदारादि यथा संसारवृद्धये ।
तथा पांडित्यदृप्तानां शास्त्रमध्यात्मवर्जितं ॥२३॥

अधेतव्यं तदध्यात्मशास्त्रं भाव्यं पुनः पुनः ।
अनुष्ठेयस्तदर्थश्च देयो योग्यस्य कस्यचित् ॥२४॥

अर्थ—धनवंत जनने जेम पुत्र अने स्त्री ते संसारनी वृद्धिनां कारण छे तेम अभिमाने भरायेला पंडित लोकने अध्यात्मशास्त्र विना मात्र संसारनी वृद्धि छे ॥ २३ ॥ ते माटे अध्यात्मशास्त्रने भणवुं, वली वारंवार हृदयने विषे भाववुं, एना अर्थनुं वारंवार चिंतन करवुं अने जे पुरुषो योग्य होय तेनेज शीखववुं–पुस्तक आपवुं ॥ २४ ॥ ए रीते अध्यात्मशास्त्रना महात्म्यनो पहेलो अधिकार पूरो थयो.

अथ अध्यात्म स्वरूप

भगवन् ! किं तदध्यात्म यदित्थमुपवर्ण्यते ।
शृणु वत्स यथाशास्त्रं वर्णयामि पुरस्तव ॥ १ ॥
गतमोहाधिकाराणामात्मानमधिकृत्य या ।
प्रवर्तते क्रिया शुद्धा तदध्यात्मं जगुर्जिनाः ॥ २॥

अर्थ—हवे शिष्ये पूछ्युं के–हे भगवंत ! अध्यात्म ते शुं छे के जेनुं तमे आवुं वर्णन करो छो ? त्यारे गुरु कहे छे के–हे शिष्य ! शास्त्रमर्यादाये तने कहुं छुं ते सांभळ ॥ १ ॥ जे मुनिराजनो मोहनो अधिकार नाश पाम्यो छे अने जे आत्माने आश्रीने शुद्ध क्रियाये अंतरआत्माने विषे प्रवर्त्ते, तेनुं नाम परमेश्वर अध्यात्म कहे छे ॥ २ ॥

सामायिकं यथासर्व चारित्रेष्वनुवृत्तिमत् ।
अध्यात्मं सर्वयोगेषु तथानुगतमिष्यते ॥ ३ ॥
अपुनर्बंधकाद्यावद्गुणस्थानं चतुर्दश ।
क्रमशुद्धिमती तावत् क्रियाध्यात्ममयी मता ॥४॥

अर्थ—सामायिक चारित्र जेम सर्व चारित्रने विषे अनुगत कारणपणे वर्त्ते छे तेम सर्व जोगने विषे अध्यात्म पण सहचारीपणे वर्त्ते छे ॥ ३ ॥ अपुनर्बंधी जे चोथुं गुणठाणुं त्यांथी मांडीने चौदमा गुणठाणा लगण अनुक्रमे जे आत्मानी विशुद्धता प्रगट थाय ते सर्व अध्यात्म क्रिया जाणवी ॥ ४ ॥

आहारोपधिपूजार्द्धि गौरवप्रतिबंधतः ।
भवाभिनंदी यां कुर्यात् क्रियां साध्यात्मवैरिणी॥५॥

क्षुद्रो लोभरतिर्दीनो मत्सरी भयवान् शठः ।
अज्ञो भवाभिनंदीस्या निष्फलारंभसंगतः ॥ ६ ।

अर्थ—अने जे आहारोपधिने अर्थे तथा पूजा पामवानी ऋद्धि तेनी गौरवताये बंधाणा थका भवाभिनंदी जे क्रिया करे ते सर्व अध्यात्म क्रियानी वैरिणी जाणवी ॥ ५ ॥ १ क्षुद्रता, २ लोभ, ३ रति, ४ दीनता, ५ मत्सरीपणुं, ६ भय, ७ शठता, ८ अज्ञानताए भवाभिनंदिपणाना संगथकी जे क्रिया करे ते क्रियानो आरंभ निःष्फल थाय छे ॥ ६ ॥

शांतो दांतः सदागुप्तो मोक्षार्थी विश्ववत्सलः ।
निर्दंभां यां क्रियां कुर्यात् साध्यात्मगुणवृद्धये ॥ ७ ॥

अत एव जनः पृच्छो त्पन्नसंज्ञः पिपृच्छिषुः ।
साधुपार्श्वे जिगमिषुर्धर्म्मं पृच्छन् क्रियास्थितः ॥८॥

अर्थ—१ शांतगुण, २ दांतगुण, ३ सदागुप्तेंद्रियपणुं, ४ मोक्षार्थीपणुं, ५ विश्वनुं वात्सल्यतापणुं इत्यादिक गुणवालो निर्दंभीपणे जे क्रिया करे ते क्रिया अध्यात्मगुणनी वृद्धिकर्त्ता थाय ॥ ७ ॥ ते माटे जेने तत्त्व पूछवानी संज्ञा उपनी छे तथा पिपृच्छिषु के० तत्त्व प्रते हवे पूछवाने सन्मुख थयो छे ते, साधुनी पासे तत्त्व सांभलवाने अर्थे जवानुंशील छे जेनुं ते तथा क्रिया योगने विषे रह्यो थको धर्मना तत्त्वने पूछे छे ते ॥ ८ ॥

प्रतिपित्सुः सृजन् पूर्वं प्रतिपन्नश्च दर्शनं ।
श्राद्धोयतिश्च त्रिविधोऽनंतांशक्षपकस्तथा ॥ ९ ॥

दृग्मोहक्षपको मोहशमकः शांतमोहकः ।
क्षपकः क्षीणमोहश्च जिनोऽयोगी च केवली ॥१०॥

अर्थ—वली तत्त्वने अंगीकार करता थका पूर्वे प्रतिपन्न थयु छे सम्यक्त्वदर्शन जेने एवा श्रावक तथा यति ते त्रण प्रकारना १ उपशमसमकिती, २ क्षयोपशमसमकिती, ३ क्षायकसमकिती ते अनंतानुबंधीनो अंश खपाव्यो छे जेणे ॥९॥ वली जेणे दर्शनमोहनीय खपावी छे अथवा मोहनीयने उपशमावी छे एहवा जे उपशांतमोही तथा क्षपकश्रेणिने विषे वर्ते छे तथा जेणे मोहनो क्षय कर्यो छे ते सयोगीकेवली तथा अयोगीकेवली भगवंत जाणवा ॥१०॥

यथाक्रममभी प्रोक्ता असंख्यगुणनिर्जरा ॥
यतितव्यमतोऽध्यात्मवृद्धये कलयापि हि ॥ ११ ॥
ज्ञानं शुद्धं क्रिया शुद्धेत्यंशौ द्वाविह संगतौ ॥
चक्रे महारथस्येव पक्षाविव पतत्रिण. ॥ १२ ॥

अर्थ—ए अनुक्रमे जे कह्या ते सघला एक एक थकी असंख्यातगुणी निर्जराना कर्ता छे, माटे एक कलाए करीने पण अध्यात्मनी वृद्धिने अर्थे उद्यम करवो एहीज हेतु छे ॥ ११ ॥ जेम रथना बे चक्र ते रथनी साथे सल्लग्न छे, तथा पक्षीनी बे पांखो ते पक्षीनी साथे सलग्न छे, तेम एक शुद्ध ज्ञान अने बीजी शुद्ध क्रिया ए बे अंश ते अध्यात्मनी साथे सलग्न छे ॥१२॥

तत्पंचमगुणस्थानादारभ्यैवैतदिच्छति ॥
निश्चयो व्यवहारस्तु पूर्वमप्युपचारत ॥ १३ ॥
चतुर्थेऽपि गुणस्थाने शुश्रूषाद्या क्रियोचिता ॥
अप्राप्तस्वर्णभूषाणां रजताभूषणं यथा ॥ १४ ॥

अर्थ—पूर्व पण निश्चयनय अने व्यवहारनयनु आरोपण

उपचारथी छे, पण पांचमा गुणठाणाथी मांडीने ए नय इच्छे के ॥ १३ ॥ अने चोथे गुणठाणे पण शुश्रूषादिक क्रिया ते उचित छे; जेम कोइने सोनानां घरेणां न मलतां होय तेने रुपानां मले ते पण रुडां मनाय ॥ १४ ॥

अपुनर्बंधकस्यापि या क्रिया शमसंयुता ॥
चित्रादर्शनभेदेन धर्मविघ्नक्षयाय सा ॥ १५ ॥
अशुद्धा पि हिशुद्धायाः क्रियाहेतुः सदाशयात् ॥
ताम्रं रसानुवेधेन स्वर्णत्वमधिगच्छति ॥ १६ ॥

अर्थ—समभावे करीने सहित, दर्शन भेदे करीने विचित्र प्रकारनुं अपुनर्बंध जे चोथुं गुणठाणुं तेहनी क्रिया पण धर्मना विघ्नने क्षय करनारी छे ॥ १५ ॥ तो पण भला आशयथकी अशुद्ध क्रिया करे ते पण शुद्ध कहेवाय. जेम त्रांबु जे छे तेने गाली तेमां रसानुवेध कर्याथी (रसायन मेळववाथी) सोनुं थइ जाय छे तेम ॥ १६ ॥

अतो मार्गप्रवेशाय व्रतं मिथ्यादृशामपि ॥
द्रव्यसम्यक्त्वमारोप्य ददते धीरबुद्धयः ॥ १७ ॥
यो बुध्वा भवनैर्गुण्यं धीरः स्याद् व्रतपालने ॥
सयोग्यो भावभेदस्तु दुर्लक्ष्योनोपयुज्यते ॥ १८ ॥

अर्थ—ए ज कारण माटे धीरबुद्धिना धणी रत्नत्रयना मार्गने विषे प्रवेशवाने मिथ्यादृष्टिवालाने पण द्रव्य समकितनो आरोप करीने चारित्र आपे छे ॥ १७ ॥ जे प्राणी संसारनुं निर्गुणपणुं जाणीने व्रत पालवाने विषे धीर थाय ते प्राणी धर्मने योग्य जाणवो अने अंतरंगभावनो भेद तो दुःखे करीने समजाय छे, माटे ते उपयोगमां न आणवो ॥ १८ ॥

नोचेद्भावापरिज्ञानात्सिद्ध्यसिद्धोपराहते ॥
दीक्षाऽदानेन भव्याना मार्गोच्छेदः प्रसज्यते ॥१९॥

अशुद्धानादरेभ्यासाद्योगान्नो दर्शनाद्यपि ॥
सिद्धिर्नैसर्गिकोमुक्त्वा तदप्यभ्यासिक यतः ॥२०॥

अर्थ—कदापि कोइ एम कहेशे जे भाव जाण्या विना चारित्र देवाथी सिद्धि असिद्धि सर्व हणाइ जाय, ते वारे भव्यने पण दीक्षा न आपवी केम के तेने अतरंगनी खबर नथी, अने ए रीते दीक्षा न आपवाथी तो सम्यग्मार्गनो उच्छेद थाय ॥१९॥ एम अशुद्धनो अनादर करे अने शुद्ध जोगनो अभ्यास न करे त्यारे दर्शन जे समकित ते पण शुद्ध न थाय, केम के एक निसर्ग समकित टालीने शुद्ध करवु ते पण अभ्यासथी ज थइ शके ॥ २० ॥

शुद्धमार्गानुरागेणाशठाना यातु शुद्धता ॥
गुणवत्परतन्त्राणा सानक्वापि विहन्यते ॥ २१ ॥

विषयात्मानुबंधैर्हि त्रिधाशुद्ध यथोत्तर ॥
ब्रुवते कर्म्म तत्राद्य मुक्त्यर्थपतनाद्यपि ॥ २२ ॥

अर्थ—शुद्धमार्गने अनुरागे करीने अशठता भावे जो आत्मानी शुद्धता के० निर्मलताये गुणवत प्राणीने आधीन थइने वर्त्ते, तो ते प्रवृत्ति कोइ ठेकाणे हणाय नहीं ॥ २१ ॥ विषये करीने, आत्माये करीने अने अनुबंधे करीने ए त्रण प्रकारनी विशुद्धि छे ते एकेकथी निर्मल छे ए त्रणे कर्म छे, तेमा जे दुःखथी पोताना आत्माने मूकाववाने झपापात प्रमुख करे तेहने विषयशुद्धि कहिये ॥ २२ ॥

अज्ञानीनां द्वितीयं तु लोकदृष्ट्यायमादिकं ॥
तृतीयं शांतवृत्त्यातत्त्वसंवेदनानुगं ॥ २३ ॥

आद्यानाज्ञानबाहुल्यान्मोक्षबाधकबाधनं ॥
सद्भावाशयलेशेनोचितं जन्मपरे जगुः ॥ २४ ॥

अर्थ—अज्ञानीने आत्मशुद्धि नामे बीजी शुद्धि थाय, ते लोकदृष्टिये पांच यम नियम प्रमुख पाले छे-ए बीजो भेद. त्रीजो आत्मानुबंध ते कहिये, जे शांत वृत्तिये तत्त्वनुं संवेदन करे, चिंतन करे ॥ २३ ॥ पहेली शुद्धिमां अज्ञाननी बहुलता छे, जेणे करीने मोक्षना बाधकने बाध न करे अने तेना सद्भावथकी शुभाशयनो लेशमात्र होय, तो तेथी जन्म—मरणनी परंपरा कांइ त्रुटे नही एहवुं योगाभ्यासी पुरुष कहे छे ॥ २४ ॥

द्वितीयादोषहानिः स्यात्क्वचिन्मंडूकचूर्णवत् ॥
आत्यंतिकी तृतीया तु गुरुलाघवचिंतया ॥ २५ ॥

अपिस्वरूपतःशुद्धाक्रिया तस्माद्विशुद्धिकृत् ॥
मौनींद्रव्यवहारेण मार्गबीजं दृढादरात् ॥ २६ ॥

अर्थ—आत्मशुद्धि नामे बीजा जोगथकी कांइक लव-लेश मात्र दोषनी हानि तो थाय, पण परंपराये घणा दोष थयेला ते देडकाना चूर्णनी पेठे एक देडकानो नाश थाय, पण तेथी बीजा घणा देडका उत्पन्न थाय. त्रीजी शुद्धि आत्यंतिक छे, तेथी कर्मनी हानि थाय केम के ते गुरुताभाव अने लघुताभावनी विचारणा करवाथी प्रगटे एवी छे ॥ २५ ॥ स्वरूप थकी जे क्रिया शुद्ध छे ते ज निश्चयपणे आत्माने विशुद्धतानी करनारी छे, ते माटे शुद्धक्रिया करवी. मुनींद्र जे परमेश्वर तेणे बताव्यो जे

व्यवहार तेनु सेवन करवे करीने घणा आदर सहित क्रिया करे, तो मार्ग जे रत्नत्रयी तेनु बीज प्रगट थाय छे ॥ २६ ॥

गुर्वाज्ञापारतन्त्र्येण द्रव्यदीक्षाग्रहादपि ॥
वीर्योल्लासक्रमात्प्राप्ता बहव. परम पद ॥ २७ ॥

अध्यात्माभ्यासकालेपि क्रिया काप्येवमस्ति हि ॥
शुभौघसज्ञानुगत ज्ञानमप्यस्ति किंचन ॥ २८ ॥

अर्थ—गुरुनी आज्ञाने आधीन रहेवाथी द्रव्यदीक्षा लीधी होय तो पण वीर्योल्लासनी अनुक्रमे वृद्धि करीने घणा जीव परमपदने पाम्या छे ॥ २७ ॥ ए रीते अध्यात्मना अभ्यास-कालने विषे पण क्रिया काइक लेशमात्र निश्चे वर्तेज छे, अने शुभकारी ओघ सज्ञाने सहचारीपणे तिहा ज्ञान पण काइक वर्ते छे ॥ २८ ॥

अतो ज्ञानक्रियारूपमध्यात्म व्यवतिष्ठते ॥
एतत्प्रवर्द्धमान स्यान्निर्दभाचारशालिना ॥ २९ ॥

अर्थ—ए ज कारण माटे ज्ञानने क्रियारूप ते अध्यात्म-पणु वर्ते छे, जे ज्ञान क्रियारूप ते अध्यात्म छे ए ज ज्ञानक्रिया निर्दभाचारे करीने मनोहर एहवो जे प्राणी तेने विषे उत्तरोत्तर वृद्धिने पामे छे ॥ २९ ॥ ए बीजो अध्यात्मना स्वरूपनो अधिकार सपूर्ण थयो ॥

दभो मुक्तिलतावह्निर्दभो राहु. क्रियाविधौ ॥
दौर्भाग्यकारण दभो दभोध्यात्मसुखार्गला ॥ १ ॥

दभो ज्ञानाद्रिदभोलिर्दभ कामानलेहवि ॥
व्यसनाना सुहृद्दभो दभश्चौरो व्रतश्रिय· ॥ २ ॥

दंभेन व्रतमास्थाय यो वांछति परमं पदं ॥
लोहनावं समारुह्यसोऽब्धेः पारं यियासति ॥ ३ ॥

अर्थ—मुक्तिरूप वेलीने दहन करवामां कपट ते अग्नि समान छे; ने क्रियारूप चंद्रनो ग्रास करवाने कपट ते राहु छे; अने कपट ज दुर्भाग्यनुं कारण छे; अध्यात्मसुखनी प्राप्तिमां अर्गलारुप छे ॥ १ ॥ ज्ञानरूप पर्वतने तोडवाने कपट ते वज्र समान छे; कामरूपी अग्निनी वृद्धि करवाने घृत जोइये ते पण कपट छे, व्यसननो मित्र ते कपट छे; अने व्रतरूप लक्ष्मीनो चोर पण दंभ ज छे ॥ २ ॥ कपट राखी व्रतने विषे रही जे प्राणी परम पद जे मोक्ष तेनी वांच्छना करे छे, ते प्राणी लोढानी नावमां वेसी समुद्र तरवानी इच्छा राखे छे ॥ ३ ॥

किं व्रतेन तपोभिर्वा दंभश्चेन्न निराकृतः ॥
किमादर्शेन किं दीपैर्यद्यांध्यं न दृशोर्गतं ॥ ४ ॥

केशलोचधराशय्या भिक्षाब्रह्मव्रतादिकं ॥
दंभेन दुष्यते सर्वं त्रासेनैव महामणिः ॥ ५ ॥

अर्थ—ते तपें पण शुं ? ते व्रतें पण शुं ? जो कपट दिशाने तजी नहीं तो ते सर्व निष्फल छे, ते आरसीए पण शुं ? अने दीवे पण शुं ? जो दृष्टीए अंध छे तो तेहने सर्व ठेकाणे अंधकारज रहेशे ॥ ४ ॥ केश लोच करवो, भुमि उपर शयन करवुं, भिक्षा मागवी, शीलव्रतादिक पालवां, ए सर्व धर्मकरणी कपटे करीने दुपाइ जाय छे, जेम सुंदर मणि होय ते उपर एक डाव लागवाथी तेनी कांति मंद थाय छे तेहनी परे जाणवुं ॥ ५ ॥

सुत्यज रसलापट्य सुत्यज देहभूपण ॥
सुत्यजाः कामभोगाश्च दुस्त्यज दम्भसेवन ॥ ६ ॥

स्वदोषनिन्हवो लोक पूजा स्याद् गौरव तथा ॥
इयतैव कदर्य्यते दम्भेन वत वालिशाः ॥ ७ ॥

अर्थ—रसनु लोलपीपणु ते सुखे तजी शकाय, देहनी शोभा पण सुखे तजी शकाय, कामभोगादिने पण सुखे तजाय, पण कपटनो त्याग करवो घणो ज निकट छे ॥ ६ ॥ पोताना दोपने ढाकी राखे तेथी लोकमा पूजना थाय, तथा मोटाइ थाय, एहि ज पूजा प्रमुखनी लालच माटे पोताना आत्माने मूर्ख प्राणी कदर्थना उपजावे छे ! ॥ ७ ॥

असतीना यथा शीलमशीलस्यैव वृद्धये ॥
दम्भेनाव्रत वृद्ध्यर्थ व्रत वेपभृता तथा ॥ ८ ॥

जानानाअपि दम्भस्य स्फुरित वालिशाजनाः ॥
तत्रैव धृतविश्वासाः प्रस्खलति पदे पदे ॥ ९ ॥

अर्थ—जेम कुलटा नारीनु शील जे आचारवे कुशीलनी वृद्धिने अर्थे ज होय, तेम कपटे वेप धरनार व्रतवताने भवनी वृद्धि थाय, ते अव्रतनी वृद्धिने अर्थे ज थाय ॥ ८ ॥ कपटना विपाकने जाणता थका पण मूर्ख अज्ञानी प्राणी ते ज कपटने विपे विश्वास करता थका पगले पगले स्खलना पामे छे ॥ ९ ॥

अहो मोहस्य माहात्म्य दीक्षा भागवतीमपि ॥
दम्भेन यद्विलुपति कज्जलेनेव रूपक ॥ १० ॥

अब्जे हिम तनौ रोगो वने वह्निर्दिने निशा ॥
ग्रथे मौर्ख्य कलि सौख्ये धर्म्मे दम्भउपप्लवः ॥ ११ ॥

अर्थ—अहो इति खेदे जूओ ! मोहराजानो महिमा ! जे भगवंत संबंधी दीक्षा ते पण जेम काजले करीने चित्रामणनुं लोप थाय छे, तेहनी परे कपटे करीने लोपी नाखे छे, जेम कमलने विषे हिम, शरीरने विषे रोग, वनने विषे अग्नि, दिवसने विषे रात्री, ग्रंथने विषे मूर्खता, सुखने विषे क्लेश, ते उपद्रवना करता छे तेम धर्मने विषे कपट ते दुःखकर्त्ता छे ॥ १०–११ ॥

अतएव नयो धर्तुं मूल्योत्तरगुणानलं ॥
युक्ता सुश्राद्धता तस्य न तु दंभेन जीवनं ॥ १२ ॥
परिहर्तुं न यो लिंगमप्यलं दृढरागवान् ॥
संविज्ञपाक्षिकः सस्यान्निर्दंभः साधुसेवकः ॥ १३ ॥

अर्थ—एहिज हेतु माटे मूलगुण पंचमहाव्रत अने उत्तरगुण करणसित्तरी प्रमुख धरवाने जे प्राणी समर्थ न होय, तेणे श्रावकनां व्रत पालवां ते युक्त ज छे, पण कपट चारित्रें जीववुं ते रुडुं नथी ॥ १२ ॥ हवे जे प्राणी व्रतने मूकवाने समर्थ नथी केमके जेने व्रत उपर दृढराग लाग्यो होय ते मूकी शके नहीं तो तेणे संविज्ञपक्ष अंगीकार करवो श्रेष्ठ छे. केमके निर्दंभी साधुनी सेवना करवाथी घणो गुण थाय छे ॥ १३ ॥

निर्दंभस्यावसन्नस्याप्यस्य शुद्धार्थभाषिणः ॥
निर्जरां यतनादत्ते स्वल्पापि गुणरागिणः ॥ १४ ॥
व्रतभारासहत्वं ये विदंतोप्यात्मनः स्फूटं ॥
दंभाद्यतित्वमाख्यांति तेषां नामापि पाप्मने ॥ १५ ॥

अर्थ—निष्कपटी होय, शुद्ध सिद्धांतना अर्थना भाषक होय, ते गुणे करीने ते उसन्नाप्रमुख साधु जो थोडी पण जतना

करे छे, तो पण ते गुणना रागीपणाथी वर्तता थका तेने निर्ज्जरा थाय छे ॥ १४ ॥ पोताथी व्रतनो भार नथी उपटतो, एवु जांण्या छता पण जे पोताना आत्माने प्रगट रीते कपटे करीने यतिपणु ठरावे छे, सयमीपणु स्थापे छे ते लिंगीनु नाम लेता पण पाप थाय तो तेनी सेवना तो पापकारी थाय ज तेमा शु कहेवु ? ॥ १५ ॥

कुर्वते ये न यतना सम्यगालोचितानपि ॥
तैरहो यतिनाम्नैव दाम्भिकैर्वञ्च्यते जगत् ॥ १६ ॥
धर्मोतिख्यातिलाभेन प्रच्छादितनिजाश्रवः ॥
तृणायमन्यते विश्व हीनोऽपि धृतकैतव ॥ १७ ॥

अर्थ—जे लिंगी भली रीते द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जोईने यत्ना नथी करता, ते लिंगी यति एवे नाम करीने कपटी थई लोकने ठगता फरे छे ॥ १६ ॥ जे हीनाचारी थको कपटनो धरनारो लिंगी होय अने ते यतिधर्मी छे एवी प्रसिद्धि थइ, तेना लाभे करीने पोताना आश्रवने ढाक्या होय एवा जे यति ते समग्र जगतने तृण तुल्य जाणे छे ॥ १७ ॥

आत्मोत्कर्षात्ततो दम्भात्परेषा चापवादतः ॥
बध्नाति कठिन कर्म्म बाधक योगजन्मनः ॥ १८ ॥
आत्मार्थिना ततस्त्याज्यो दम्भोऽनर्थनिबधन ॥
शुद्धि स्यादृजुभूतस्येत्यागमेप्रतिपादित ॥ १९ ॥

अर्थ —पोताना आत्मानी बडाइ करे, घणु कपट धरे अने पारका अवर्णवाद बोले तेथी करीने कठिण कर्म बाधे छे,

तेवा पुरुषो ते योगीना जन्मने बाधक करनारा छे; ते शुद्ध चारित्रने पामी शके नहीं ॥ १८ ॥ माटे अनर्थनुं कारण जे कपट तेने धर्मार्थी प्राणीए तजवुं, केमके आत्मानी शुद्धि तो सरलताभावे थाय छे, एवुं आगमने विषे कह्युं छे ॥ १९ ॥

जैनैर्नानुमतं किंचिन्निषिद्धं वा न सर्वथा ॥
कार्यंभाव्यमदंभेनेत्येषाज्ञा पारमेश्वरी ॥ २० ॥
अध्यात्मरतचित्तानां दंभः स्वल्पोऽपि नोचितः ॥
छिद्रलेशोऽपि पोतस्य सिंधुं लंघयतामिव ॥ २१ ॥

अर्थ—तीर्थंकरे एकांते आज्ञा पण नथी करी, तेम सर्वथा निषेध पण नथी कीधो, तोपण जे कार्य करवुं ते कपट रहित करवुं एही ज परमेश्वरनी आज्ञा छे ॥ २० ॥ जेम वहाणमां छिद्रनो लेश होय ते पण समुद्र तरवामां योग्य नथी, तेम अध्यात्मने विषे जेनुं मन रंगायुं छे, तेने जरापण कपट करवुं ते योग्य नथी ॥ २१ ॥

दंभलेशोऽपि मल्ल्यादेः स्त्रीत्वानर्थनिबंधनं ॥
अतस्तत्परिहाराय यतितव्यं महात्मना ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम मल्लिनाथजीने कपटनो लेश पण स्त्रीवेदनो कारणिक थयो, माटे महान् पुरुषे कपट तजवाने घणो यत्न करवो ॥ २२ ॥ इति श्रीअध्यात्मसार ग्रंथने विषे दंभत्याग नामा त्रीजो अधिकार समाप्त थयो ॥



भवस्वरूपचिन्ताधिकार

तदेव निर्दम्भाचरणपटुता चेतसि भव-
स्वरूप संचिन्त्य क्षणमपि समाधाय सुधिया ॥
इयं चिताऽध्यात्मप्रसरसरसी नीरलहरी
सतां वैराग्यास्थप्रियपवनपीना सुखकृते ॥ १ ॥

अर्थ—एटला माटे निर्दंभ आचरण करवाने हे चेतन ! तु सावधान था ! आत्मस्वरूपनु चिंतन कर ! केमके क्षण मात्र पण सद्बुद्धि हृदयमा धरीने आत्मस्वरूपनी चिंता करवी तेही ज आत्मदिशारूप सरोवरनी लहरी छे ते शीतलता कर एवी छे, एही ज सज्जन लोकने वैराग्यदिशारूप पवन पूर्ण सुखकारी छे, माटे ते आत्मिकसुखने अर्थे साधवी ॥ १ ॥

इतः कामौर्वाग्निर्ज्वलति परितोदुःसहः इतः
पतति ग्रावाणो विषयगिरिकूटाद्विघटिताः ॥
इतः क्रोधावर्ता विकृतितटिनी संगमकृतः
समुद्रे संसारे तदिह न भयं कस्य भवति ॥ २ ॥

अर्थ—एक तरफ कामरूप वडवानलनो अग्नि बली रह्यो छे ते दु खे सहन थाय एवो छे, अने एक तरफ पच-प्रकारना विषयरूप पर्वत, तेहथी पड्या जे उन्मादरूप पथरा, तणे करी भयकर, वली एक तरफ विकारदिशारूप नदीना सग-थकी क्रोधना आवर्त्त पड्या छे, एवो जे आ ससार—समुद्र तेने विष कहो क्या ठेकाणे प्राणीने भय नथी? सर्वने भय ज वर्ते छे ॥२॥

प्रिया ज्वाला यत्रोद्गमति रतिसंतापतरला
कटाक्षान् धूमौघान् कुवलयदलश्यामलरुचीन् ॥
अथांगान्यंगारा कृतबहुविकाराश्च विषया
दहंत्यस्मिन्वह्नौ भववपुषि शर्म क्व सुलभं ? ॥ ३॥

अर्थ—जे संसारने विषे रतिना संतापे करीने तरला के० चपल एवी जे प्रिया के० भार्या ते कटुकज्वाला वर्त्ते छे, वली नीलकमल दलना सरखी जेनी कांति छे एहवा नेत्रना त्रिकोणमांथी जे जोवुं तेनुं नाम कटाक्ष ते रूप धूम्रना समूह चाले छे, तथा स्त्रीनां अंग ते अंगारा समान छे, जे अंगवडे घणा प्रकारना विकार प्रगट थाय छे, ते माटे संसाररूप अग्निमां वली रह्या जे प्राणी तेने भवमां पण सुख नथी तेमज शरीरमां पण कंई ज सुख नथी ॥ ३ ॥

गले दत्वा पाशं तनयवनितास्नेहघटितं
निपीड्यंते यत्र प्रकृतिकृपणः प्राणिपशवः ॥
नितांतं दुःखार्त्ता विषमविषयैर्घातिकभटै-
र्भवः सूनास्थानं तदहह महासाध्वसकरं ॥ ४ ॥

अर्थ—जेना गलाने विषे पुत्र तथा स्त्रीरूप स्नेहनो फांसो नखायो छे, तेना स्नेहपाशमां पड्या! तुच्छ स्वभावना धणी ते अतिशयपणे पीडा पामे छे, आकरा विषयरूप जे घातकी सुभट तेणे करीने संसार ते खाटकीनुं स्थानक छे; माटे हाहा संसार ते केवल दुःखनुं मूल छे ॥ ४ ॥

अविद्यायां रात्रौ चरति वहते मूर्ध्नि विषमं
कषायव्यालौघं क्षिपति विषयास्थीनि च गले ॥

महादोपान दंतान प्रकटयति वक्रस्मरमुखो
न विश्वासार्होय भवति भवनक्रचर इति ॥ ५ ॥

अर्थ—अज्ञानदिशारूप रात्रिनो चालनार जेना माथा उपर विषमकषायरूप सर्पनो समूह रह्यो छे, जेना गलाने विषे विषयरूप हाडका बांध्या छे, जे महोटा दोषरूप दांत प्रकट करे छे, जेनु मुख कामनी चेष्टा करे छे, एवो संसाररूपी राक्षस ते विश्वास करवाने योग्य नथी ॥ ५ ॥

जना लब्ध्वा धर्म्मद्रविणलवभिक्षां कथमपि
प्रयातोवामाक्षीस्तनविषमदुर्गस्थितिकृता ॥
विलुट्यते यस्या कुसुमशरभिल्लेन बलिना
भवाटव्यां नास्यामुचितमसहायस्य गमनं ॥ ६ ॥

अर्थ—जे प्राणी धर्मरूप धनना लवलेशने पाम्यो छे, तेणे भिक्षा मागवाने एकला विचरवु नहि, केमके भवाटवीने विषे बलवत्तर भील एवो जे काम ते स्त्रीना स्तनरूप विषयी कोटमा रहीने ते प्राणीमात्रना धर्मरूप धनने लुटी ले छे, माटे सहाय विना ते प्राणीए एकलुं विचरवु (चालवु) योग्य नथी ॥ ६ ॥

धनं मे गेहं मे मम सुतकलत्रादिकमतो
विपर्यासादासादितवितततुच्छा अपि मुहुः ।
जना यस्मिन मिथ्यासुखमदभृत कूटघटना-
मयो य ससारस्तदिह न विवेकी प्रसजति ॥ ७ ॥

अर्थ—धन, घर, पुत्र ने स्त्री आदि सर्व वस्तु मारी छे,

एवा विपर्यासपणाथी विशेष प्रसिद्ध दुःखज छे, माटे जे प्राणी वारंवार सुखने मदे भर्या थका सुख माने छे, ते फोकट छे. ए संसार तो केवल कपट रचनाथी भर्यो छे, तेने विषे विवेकी प्राणीए प्रीति करवी नही ॥ ७ ॥

प्रियास्नेहो यस्मिन्निगडसदृशो यामिकभटो-
पमः स्वीयो वर्गो धनमभिनवं बंधनमिव ॥
महामेध्यापूर्णं व्यसनबिलसंसर्गविषमं
भवः कारागेहं तदिह न रतिः क्वापि विदुषां ॥ ८ ॥

अर्थ—स्त्रीनो स्नेह ते बेडी समान छे, बीजा सगासंबंधी लोक ते पोरियात समान छे, धनसंपत्ति ते नवा बंधन सरखी छे अने महा अमध्येकरी सहित छे, सात प्रकारना व्यसनरूप बिले सहित छे; टूंकामां कहिये तो आ संसार ते बंदिखाना जेवो छे माटे पंडित लोकने ए वस्तुमांहेनी एके वस्तु उपर रति के० मरजी थती नथी ॥ ८ ॥

महाक्रोधोगृध्रोऽनुपरतिशृगाली च चपला
स्मरोलूको यत्र प्रकटकटुशब्दः प्रचरति ॥
प्रदीप्तः शोकाग्निस्ततमपयशोभस्म परितः
स्मशानं संसारस्तदतिरमणीयत्वमिह किं ? ९ ॥

अर्थ—जे पंडित लोक ते आ संसारने स्मशान सरखो कहे छे, केमके स्मशानमां रहेनारी चीजो सर्व संसारमां छे, ते कही बतावे छे. जेम स्मशानमां गिध पक्षी छे तेम संसारमां महाक्रोध ते गीध पक्षी छे, अरतिरूप घणी चपल शियाळणी छे; घुवड पक्षीरूप काम छे, ते प्रगटपणे कडवा शब्दथी रुदन करे छे,

देदीप्यमान शोकरूपी अग्नि प्रज्वले छे, निरंतर अपयशरूप राख छे, माटे संसार ते स्मशान छे, एमा रमणीक चीज कोई नथी ॥९॥

धनाशा यच्छायाप्यति विषममूर्छां प्रणयिनी
विलासो नारीणा गुरुविकृतये यत्सुमरसः ॥
फलास्वादो यस्य प्रसरनरकव्याधिनिवह-
स्तदास्था नो युक्ता भव विपतरावत्र सुधिया ॥१०॥

अर्थ—धननी जे इच्छा ते अतिशय विषयरूप विषम मूर्छाने विस्तारनारी छे, स्त्रीयोनो विलास ते महाविकारकारी कुसुमनो रस छे, जेना फलनो स्वाद विस्तार पामतो नर्कनी पीडाना समूह तुल्य थाय, एवु संसाररूप विषवृक्ष छे, एनी हठल विश्राम करवो युक्त नथी ॥ १० ॥

क्वचित् प्राज्य राज्य क्वचन धनलेशोप्यसुलभः
क्वचिज्जातिस्फाति क्वचिदपि च नीचत्वकुयशः ॥
क्वचिल्लावण्यश्रीरतिशयवती क्वापि न वपु
स्वरूप वैषम्य रतिकरमिद कस्य नु भवे ॥ ११ ॥

अर्थ—कोईने ता विस्तारवालु राज्य छे, कोइने धननो लेश पण दोहलो छे, कोईनी उत्तम जाति छे, कोइनी नीच जाती छे, कोइने अपयश छे, कोइने लावण्यलीलानी लक्ष्मी घणी छे, कोइनु शरीर पण रुडु नथी, एवु ससारनु स्वरूप विषम छे, ते कोने रतिकारी थाय ? ॥ ११ ॥

इहोद्दाम काम खनति परिपथि गुणमही-
मविश्रामः पार्श्वस्थितकुपरिणामस्य कलहः ॥

विलात्यंत: कामन्मदफणभृतां पामरमतं

वदाम: किं नाम प्रकटभवधामस्थितिसुखं ॥ १२ ॥

अर्थ—इहां उद्दाम-काम दिशा छे; ते ज परिपंथी के० शत्रु छे, ते गुणरूप जे मही के० पृथ्वी तेने खणे छे अने पासे रह्यो जे कुपरिणाम ते विश्राम लीधा विना निरंतर क्लेश करे छे, ए क्लेशवडे खरडाया एवा जे प्राणी ते अष्ट मदरूप सर्प तेणे करी युक्त छे. एवुं पामर लोकने मानवा योग्य आ संसाररूप जे घर तेनुं शुं सुख कहीए? ॥ १२ ॥

तृषार्त्ता: खिद्यंते विषयविवशा यत्र भविन:

करालक्रोधार्काच्छमसरसि शोषं गतवति ॥

स्मरस्वेदक्लेदग्लपितगुणमेदस्यनुदिनं

भवग्रीष्मे भीष्मे किमिह शरणं तापहरणं ॥ १३ ॥

अर्थ—संसारने विषे प्राणी मात्र पुद्गलनी तृष्णारूप तरसे करीने पीडाणा छे, अने विषयनी आशाए करी परवश थया छे, एहवा प्राणीयो बिहामणा क्रोधे करी पीडाय छे; केमके तेमने माटे समतारूप सरोवर तो सुकाइ गयुं छे, अने कामदिशारूप जे परस्वेद तेनी जे ग्लानता तेणे करी निरंतर गुणमेदा खरडाय छे. ज्यां एहवो बिहामणो आ संसाररूप उष्णकाल छे त्यां तेना तापने हरे एवो कोइ नथी ॥ १३ ॥

पिता माता भ्राताप्यभिलषितसिद्धावभिमतो

गुणग्रामज्ञाता न खलु धनदाता च धनवान् ॥

जना: स्वार्थस्फातावनिशमवदा नाशयभृत:

प्रमाता क: ख्याताविह भवसुखस्याशु रसिक: ॥१४॥

अर्थ—आ ससारने विषे पिता, माता ने भ्राता के० भाइ आदि ते सर्व चिंतित अर्थनी अभिलाषा पूरे त्या लगी अभिमतके० ममत करी माने, तथा गुणना समूहनो जाण एहनो धनवत प्राणी होय ते पण कृपणपणे करीने गुणी जनने धन देइ शक नही, एम सर्व प्राणी पोताना स्वार्थ साधन करवाने सावधानपणे वर्त्ते छे, पण परमार्थथी वेगला रसे छे, एवा भव सुखना रसिया जे जीव तेहना स्वरूपने कहेवाने कोण समर्थ थइ शके ? ॥ १४ ॥

पर्णं, पाणि गृह्णात्यहहमहति स्वार्थे इह यान्
  त्यजत्युच्चैर्लोकस्तृणवद्घृणस्तानपरथा ॥
विष स्वाते वक्त्रेऽमृतमिति च निश्वासघातिकृद्-
  भयादित्युद्वेगो यदि न गदितै. किं तदधिकं ॥१५॥

अर्थ—एम स्वार्थने वश थईने प्राणी चडालनो हाथ पकडी चाले छे ! अहो इति आश्चर्य ! जे स्वार्थपणु ते एहवु छे. वली जे उत्तम कुलथी उपजेला तेहने तजे छे अन तरणा जेवो निर्लज्ज थईने हैयामा झेर भयु होय पण मोढे अमृत जेवु मीठु बोले छे एवा अनेक प्रपच स्वार्थ माटे प्राणी करे छे ने विश्वासघाती थाय छे, एवा प्राणी आ ससारमा वसे छे, ते जोईने पण आ ससारथी जेनु मन उद्वेग पामतु नथी तेने घणु शु कहीए ? ॥ १५ ॥

दृशा भार्तैः कातै· कलयति मुद कोपकलितै-
  रमीभिः खिन्नः स्याद्घनधननिधीनामपि गुणी ॥

उपायैः स्तुत्याद्यैरपनयति रोषं कथमपी-
त्यहो मोहस्यैवं भवभवनवैषम्यघटना ॥ १६ ॥

अर्थ—स्त्रीनी दृष्टिना प्रांत के० खूणा ते मनोहर छे, माटे तेना जोवाथी हर्ष उपजे छे, अने स्त्रीनी कोपयुक्त दृष्टि खराब छे माटे ते देखीने खेद उपजे छे, तथा घणा धनवाला पुरुषने गुणीजनो स्तुति आदि करी रीजवे छे; ने कष्ट सहीने तेमनो रोष उतारे छे, ए सघलुं मोहथकी थाय छे; माटे जुओ मोहरूपी राजानुं केवुं विषमतापणुं छे, के जे तजवा योग्य छे तेनो आदर करावे छे अने जेनो आदर करवो जोइए तेनो त्याग करावे छे ॥ १६ ॥

प्रिया प्रेक्षा पुत्रो विनय इह पुत्री गुणरति-
र्विवेकाख्यस्तातः परिणनिरनिंद्या च जननी ॥
विशुद्धस्य स्वस्य स्फुरति हि कुटुंबं स्फुटमिदं
भवे तन्नो दृष्टं तदपि बत संयोगसुखधीः ॥ १७ ॥

अर्थ—जीवने तत्त्वविचारणा करवी ते स्त्री छे, विनय करवो ते पुत्र छे, गुणने विषे जे रति करवी ते पुत्री छे, स्याद्वादपणे स्वपर–विवेचन करवुं ते पिता छे, अनिंद्या जे पारकी निंदा तजवी ते आत्मानी माता छे, एवुं जे अंतरंग कुटुंब छे ते तो जे वारे आत्मा शुद्ध थाय ते वारे प्रगट रीते पेदा थाय; पण तेने जे पुरुष संयोगी सुखमां मग्न थइ रह्यो छे ते तो क्यारे पण देखतो नथी ॥ १७ ॥

पुरा प्रेमारंभे तदनुतद विच्छेदघटने,
तदुच्छेदे दुःखान्यथ कठिनचेता विषहते ॥

विपाकादापाकाहितकलशवत्तापबहुलात्,
जनो यस्मिन्नस्मिन्क्वचिदपि सुखं हंत न भवे ॥१८॥

अर्थ—प्रथम प्रेम करता दुःख छे, ते पछी तेने निश्चलपणे राखवाने पण घणु दुःख छे, वली ते प्रेमपात्रनो विच्छेद थाय, मरण थाय अथवा प्रेम तुटे त्यारे मोटी वधारे दुःख उपजे, ने ते सहन करवाने छाती घणी कठण राखवी पडे नींभाडाना पाकने विषे आरोपित कर्यो एवो जे घट तेना सरखी तापनी बहुलता छे एवो जे आ संसाररूप नींभाडो तिहां सुख तो काइ ज नथी, समग्र दुःखमय ज छे ॥ १८ ॥

मृगाक्षीदृग्बाणैरिह हि निहत धर्म्मकटकं,
विलिप्ताहृद्देशा इह च बहुलैरागरुधिरैः ॥
भ्रमत्यूर्ध्वं क्रूरा व्यसनशतगृधाश्च तदियं
महामोहक्षोणीरमणरणभूमिः खलु भवः ॥ १९ ॥

अर्थ—आ संसारने विषे धर्मराजाना कटकने तो मृगनयनीना दृष्टिरूपी बाणे हणी नाख्यु छे, रागादिकरूप रुधीरवडे लेपाइ गया छे हृदयप्रदेश जेना ते उपर अनेक प्रकारना मनतन संबंधी कष्टरूपी गीधपक्षीओ भमी रह्या छे, एवो महामोहरूप क्षोणीरमण जे राजा तेनी रणभूमि समान आ संसार छे ॥१९॥

हसति क्रीडति क्षणमथ च खिद्यति बहुधा,
रुदंति रुदति क्षणमपि विवादं विदधते ॥
पलायते मोदं दधति परिनृत्यति विवशा
भवे मोहोन्मादं कमपि तनुभाजः परिगताः ॥२०॥

अर्थ—क्षणमां हसे, क्षणमां क्रीडा करे (रमे), क्षणमां खेद करे, क्षणमां बहु प्रकारे रडे, क्षणमां विलाप करे, क्षणमां अनेक प्रकारनो विवाद करे, क्षणमां नासी जाय, क्षणमां हर्षित थइ नाचवा मांडे इत्यादि उन्माद संसारने विषे देहधारी प्राणीयो करे छे, ते सर्व मोहराजाने आधीनथका करे छे ॥ २० ॥

अपूर्णा विद्येव प्रकटखलमैत्रीव कुनय-
प्रणालीवास्थाने विधववनितायौवनमिव ॥
अनिष्णाते पत्यौ मृगदृश इव स्नेहलहरी
भवक्रीडा व्रीडा दहति हृदयं तात्त्विकदृशाम् ॥२१॥

अर्थ—असंपूर्ण विद्या जेम पंडितने, तेमज खल माणसनी मित्राई, वली राजसभामां अन्यायनी प्रणालिका एटले अन्यायनो मार्ग, तथा विधवा स्त्रीनुं यौवन, वली मूर्ख भरतारनी आगल स्त्रीना स्नेहनी लहरी ते जेम खेदने पात्र थाय छे तेमज संसारनी क्रीडा जे लज्जामणी छे तेथी तत्त्वदर्शी प्राणी दुःख पामे छे ॥ २१ ॥

प्रभाते संजाते भवति वितथा स्वापकलना,
द्विचंद्रज्ञानं वा तिमिरविरहे निर्मलदृशां ॥
तथा मिथ्यारूपं स्फुरति विदिते तत्त्वविषये,
भवोऽयं साधूनामुपरतविकल्पस्थिरधियां ॥ २२॥

अर्थः—जेम प्रभात समय स्वप्ननी रचना निष्फल थइ जाय छे, जेम कोइनी आंखमां जाकल आवी होय तेहने आकाशमां बे चंद्रमा भासे, पण निर्मलदृष्टि थतां बे चंद्रमानुं भ्रांतिज्ञान मटी जाय छे तेम संसारथी न्यारा रह्या एहवा जे स्थिर बुद्धि-

नाला तत्त्वाने समजेला साधु तेने आ संसार ते मिथ्यारूप भासे छे ॥ २२ ॥

प्रियावाणीवीणाशयनतनुसंबाधनसुखै-
 र्भवोय पीयूषैर्घटित इति पूर्वं मतिरभूत् ॥
अकस्मादस्माकं परिकलिततत्त्वोपनिपदा-
 मिदानीमेतस्मिन्न रतिरपि तु स्वात्मनि रतिः ॥२३॥

अर्थ·——स्त्रीनी वाणीयें करीने तथा वीणानादे करीने, शय्याये करीने, वली शरीरने चोलवु–चापवु तेणे करीने जे सुख उपजे छे, ते अमृते करीने घुटेलु होय तेवु छे एवु पूर्वे बाल काले वर्तायु हतु, पण हवे महभाग्यकारे अमने तत्त्वदिशाना रहस्यनी परिकलना थइ–जाणपणु थयु, तेथी संसारने विषे तत्त्वरुचि वर्त्तती नथी, पण आत्मतत्त्वमा रुचि थइ छे ॥ २३ ॥

दधाना काठिन्यं निरवधिकमाविद्यकभव-
 प्रपंचा पाचालीकुचकलशवन्नातिरतिदाः ॥
गलत्यज्ञानाभ्रे प्रसृमरस्वात्मनि विधौ
 चिदानंदस्यंद सहज इति तेभ्योऽस्तु निरतिः॥२४॥

अर्थ·——संसारना समस्त प्रपंच ते अतिशय कठिणताने धरतावका छे, माटे मुजने काष्ट अने पाषाणनी पुतलीना स्तननी पेरे रतिकारी नथी लागता, केमके अज्ञाननु वादल गली गयु छे अने आत्मिक ज्ञानरूप चंद्रोदय थयो तेथी सहज चिदानंद रसनी शीतलता प्रगटी तेणे करी विषय तापनी अरति मटी गइ ॥ २४ ॥

भवे या राज्यश्रीर्गजतुरगगोसंग्रहकृता
न सा ज्ञानध्यानप्रशमजनिता किं स्वमनसि ॥

बहिर्याः प्रेयस्यः किमु मनसि ता नात्मरतय
स्ततः स्वाधीनं कस्त्यजति सुखमिच्छत्यथ परं ॥२५॥

अर्थः—संसारने विषे हाथी, घोडा, बलद प्रमुख जे राजलक्ष्मी छे, ते शुं अंतरंग आत्माने नथी ? अर्थात् छे. ज्ञान हाथी, ध्यान घोडा, समता ते बलद, ए लक्ष्मी आत्मानी छे; अने तुं जो मनवडे बाह्य साथे प्रेम करे छे तो पोताना आत्मा साथे रति केम करतो नथी ? आत्मिक सुख तजीने पौद्गलिक सुखने कोण इच्छे ? एवो मूर्ख कोण होय ? ॥ २५ ॥

पराधीनं शर्म्म क्षयि विषयकांक्षौघमलिनं
भवे भीति स्थानं तदपिकुमतिस्तत्र रमते ॥
बुधास्तु स्वाधीने ऽक्षयिणि करणौत्सुक्यरहिते
निलीनास्तिष्ठंति प्रगलितभयाध्यात्मिकसुखे ॥२६॥

अर्थः—पौद्गलिक सुख केवुं छे ? एक तो पराधीन छे; स्वभावे क्षय थवा लायक छे; विषयनी वांछनावडे मलिन छे; एम संसारने विषे भयनां स्थान घणां छे, ते छतां कुमतिना धणी संसारमां रमे छे अने पंडित लोक जे छे ते स्वाधीन सुखमां रमे छे. ते सुख केवुं छे ? के जे कोइ काले क्षय पामे नहीं; इंद्रियोनी उत्सुकताये रहित छे. जे प्राणी आत्मज्ञानमां लय पाम्या थका छे ते प्राणी सकल भयदिशा रहित थका परमानंदने विषे मग्नपणे रहे छे ॥ २६ ॥

तदेतद्भाषन्ते जगदभयदानं खलु भव-
स्वरूपानुध्यानं शमसुखनिदानं कृतधियः ॥
स्थिरीभूते ह्यस्मिन्विधुकिरणकर्पूरविमला
यशःश्रीः प्रौढा स्याज्जिनसमयतत्त्वस्थितिविदाम्॥२७॥

अर्थः—आ जगत् प्रत्ये पंडित लोक एम कहे छे, जे पोताना आत्मभावना स्वरूपनुं चिंतन ते ज समताना सुखनुं कारण छे, अने जगतने अभयदाननुं देवावालु छे जेणे कारनता भाव बुद्धि करी तेने आत्मस्वरूपज्ञान स्थिर थये थके चंद्र किरण कर्पूर सरीखी उज्ज्वल यशलक्ष्मी ते प्रौढपणे विस्तार पामे, एवा तत्त्वज्ञानी ते जिनेश्वरप्रणीत सिद्धांतना तत्त्वनी मर्यादायें वर्ते ॥ २७ ॥ इति भवस्वरूप चिंताधिकार. चतुर्थ. समाप्तः ॥

इतिश्री नयविजयगणिशिष्य श्रीयशोविजयेन विरचिते अध्यात्मसार प्रकरणे प्रथम प्रबंधः ॥ १ ॥



वैराग्य संभवाधिकार

भवस्वरूपविज्ञानाद् द्वेषान्नैर्गुण्यदृष्टिजात् ॥
नद्विच्छेदस्पं द्राग् वैराग्यमुपजायते ॥ १ ॥
सिद्धया विषयसौख्यस्य वैराग्यं वर्णयंति ये ॥
मतं न युज्यते तेषां यावदर्थाप्रसिद्धितः ॥ २ ॥

अर्थः—भवनुं स्वरूप जाण्या थकी, संसार उपर द्वेष थया थकी, संसारने निर्गुणपणे देखवा थकी शीघ्रपणे संसारना विच्छेदनो वैराग्य आत्माने विषे प्रगट थाय ॥ १ ॥ विषयसुखनी सिद्धि–निष्पत्ति–प्राप्ति नेवडे जे वैराग्यनुं वर्णन करे छे, तेनुं मत घटमान नथी, जिहां सुधी अर्थ के० द्रव्य छे, तिहां सुधी विषय छे, एवी प्रसिद्धि छे. " अर्थसत्त्वे विषयसत्वं "। इति ॥२॥

अप्राप्तत्वभ्रमादुच्चैरवाप्तेष्वप्यनंतशः ॥
कामभोगेषु मूढानां समीहा नोपशाम्यति ॥ ३ ॥
विषयैः क्षीयते कामो नेंधनैरिव पावकः ॥
प्रत्युत प्रोल्लसच्छक्तिर्भूय एवोपवर्धते ॥ ४ ॥

अर्थः—जे एम जाणे छे, जे हुं कोइ काले संसारने विषे आव्योज नथी, जो अनंती वार विषय सेव्या छे, ते छतां आ विषय नवा पाम्यो, एवो भ्रम जेने उपजे छे, एवा जे कामभोगने विषे मुंझाइ रह्या छे, तेनी अभिलाषानो नाश थतोज नथी ॥३॥ जेम इंधनथी अग्नि घटे नहीं, पण उलटी वृद्धिज पामे, तेम विषय सेवतां कामभोग पण कदापि क्षय पामे नहीं, उलटी शक्ति उल्लास पामती जाय; वारंवार वधतीज जाए ॥ ४ ॥

सौम्यत्वमिव सिंहानां पन्नगानामिव क्षमा ॥
विषयेषु प्रवृत्तानां वैराग्यं खलु दुर्वचं ॥ ५ ॥

अकृत्वा विषयत्यागं यो वैराग्यं दिधीर्षति ।
अपथ्यमपरित्यज्य स रोगोच्छेदमिच्छति ॥ ६ ॥

अर्थ —जेम सिंहने सोमपणु नथी, सर्पने जेम समता नथी तेम विषयमा जे प्रवर्त्या तेमने वैराग्य दोहिलो छे, पण सुगम नथी ॥ ५ ॥ जे विषयनो त्याग कर्या विना चित्तमा वैराग्यनी धारणा करे छे, ते कुपथ्य तज्या विना रोग टाळवानी इच्छा करे एवु छे ॥ ६ ॥

न चित्ते विषयासक्ते वैराग्यं स्थातुमप्यलं ॥
अयोघन इवोत्तप्ते निपतन्निन्दुरम्भसः ॥ ७ ॥
यदीन्दुः स्यात् कुहूरात्रौ फलं यद्वाऽर्कशिनि ॥
तदा विषयसंसर्गिचित्ते वैराग्यसंक्रमः ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम लोढानो घण तप्या होय ते पाणीना बिंदुने शोषी जाय छे तेम जेनु चित्त विषयासक्त छे तेना हृदयमा वैराग्य रही शकतो नथी ॥ ७ ॥ जो अमास्ना रात्रीए चंद्र उगे अने जो वाझीआ वृक्षने फल आवे तो विषयी जीवना हृदयमा वैराग्य संक्रमे ॥ ८ ॥

भवहेतुषु तद्द्वेषाद्विषयेष्वप्रवृत्तितः ॥
वैराग्यं स्यान्निराबाधं भवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥ ९ ॥
चतुर्थेऽपि गुणस्थाने तन्नैवं तत् प्रसज्यते ॥
युक्तं खल्वप्रमातॄणां भवनैर्गुण्यदर्शनम् ॥ १० ॥

अर्थ —भवनी वृद्धिना हेतु उपर जेने द्वेष होय, विषयने विषे जेनी प्रवृत्ति न होय ते प्राणीने संसारनी निर्गुणताना चिंतनथकी निराबाधपणे वैराग्य उपजे ॥ ९ ॥ चोथा गुणठाणाने

विषे पण सम्यक्त्ववंत ज्ञातापुरुष निश्चयपणे संसारनी निर्गुणताज जुए छे, तो तेने वैराग्यनी प्राप्ति थाय छे ते युक्त ज छे ॥ १० ॥

सत्यं चारित्रमोहस्य महिमा कोप्ययं खलु ॥
यदन्यहेतुयोगेऽपि फलायोगोऽत्र दृश्यते ॥ ११ ॥
दशाविशेषे तत्रापि न चेदं नास्ति सर्वथा ॥
स्वव्यापारहतासंगं तथा च स्तवभाषितम् ॥१२॥

अर्थः—चारित्रमोहनीनो महिमा साचो छे. केमके निश्चयथकी अन्यजोग हेतुये पण फलनुं अयोग्यपणुं ते थकी जोवामां आवे छे ॥ ११ ॥ सम्यक्त्वनी दशामां विशेषे करीने ते चोथे गुणठाणे पण सर्वथा वैराग्य न ज होय, एम न जाणवुं, तिहां पण पोताना आत्मिक स्वभावनी रमणतायें कुसंगपणुं हणाय छे, ए अर्थ वीतरागस्तोत्रने विषे श्रीहेमाचार्यजीए करेलो छे, माटे चोथे गुणठाणे वैराग्यपणुं होय ॥ १२ ॥

यदा मरुन्नरेंद्रश्रीस्त्वया नाथोपभुज्यते ॥
यत्र तत्र रतिर्नाम विरक्तत्वं तदापि ते ॥ १३ ॥
भवेच्छा यस्य विच्छिन्ना प्रवृत्तिः कर्म्मभावजा ॥
रतिस्तस्य विरक्तस्य सर्वत्र शुभवेद्यतः ॥ १४ ॥

अर्थ—जे काले देवताना राजानी लक्ष्मी हे नाथ! तमे भोगवी तिहां पण जिहां जिहां रतिमोहनी उपजे ते तमे करी नथी, त्यां पण तमे विरक्तपणुं ज कर्युं छे; पण रंगाया नथी ॥ १३ ॥ माटे भवनी इच्छा जेहने विच्छेद थाय छे, तेने जे

अवश्य वेदवा योग्य भावकर्मनी प्रवृत्ति प्रमुख जे विरक्त आत्माने रतिपणु छे ते सर्वत्र शुभ वेदनी ज वर्ते छे ॥ १४ ॥

अतश्चाक्षेपकज्ञानात् कांताया भोगसंनिधौ ॥
न शुद्धिप्रक्षयो यस्माद्धारिभद्रमिदं वचः ॥ १५ ॥
मायाभस्तत्त्वतः पश्यन्ननुद्विग्नस्ततोद्रुतः ॥
तन्मध्ये न प्रयात्येव यथा व्याघातवर्जित ॥ १६ ॥

अर्थ—एही ज कारण माटे स्वरूप ज्ञानना अभ्यासे करी अथवा अन्य वस्तुये करी अन्य वस्तुनु पूरवु ते क्षेपक कहेवाय, ते क्षेपकपणु जेने नथी तेनु नाम अक्षेपक कहिये, एहवो अक्षेपक ज्ञानवत निश्चय भावनु ग्रहण करनारो वे पुरुष जो कांता जे स्त्री तेना भोगने सन्मुख प्रवर्त्ततो होय, तो पण तेहनी शुद्धिनो प्रकर्षे रीते क्षय न थाय, एंटले ज्ञानशुद्धि ते कर्मक्षयनु कारण छे एवु हरिभद्रसूरिनु वचन छे ॥ १५ ॥ परमार्थ दिशाथकी सर्व ससारने इद्रजाल समान देखतो थको अनुद्वेग दशामा वर्त्ते, जेहने कामभोगमा उद्वेग नथी ने राग पण नथी ते तेणे करी तेमा तन्मयपणु न करे, ते निर्विघ्नपणे यथायोग्ये मोक्षे ज जाय छे ॥ १६ ॥

भोगान स्वरूपत पश्यस्तथा मायादिकोपमान् ॥
भुजानो पि ह्यसग· मन्प्रयात्येव पर पद ॥ १७ ॥
भोगतत्त्वस्य तु पुनर्न भवोदधिलघनम् ॥
मायोदकदृढावेशस्तेन यातीह क· पथा ॥ १८ ॥

अर्थ—जे प्राणी शब्दादिक भोगने परमार्थ दिशायें जोतो थको इद्रजाल समान जाणे ते विषयादिकने भोगवतो पण

तेमां लेपातो नथी, ते निश्चय परमपद जे मोक्ष तेने पामे छे ॥ १७ ॥ अने जे भवाभिनंदी प्राणी ते संसारना भोगने ज तत्त्व करी माने छे, ते प्राणी संसार समुद्रने उलंघी न शके, केमके मायारूप उदकना आवेशे ते प्राणी कुपंथने विषे जाय छे ॥ १८ ॥

स तत्रैव भवोद्विग्नो यथा तिष्ठत्यसंशयं ॥
मोक्षमार्गेऽपि हि तथा भोगजंवालमोहितः ॥१९॥
धर्म्मशक्तिं न हंत्यत्र भोगयोग बलीयसी ॥
हंति दीपापहो वायुर्ज्वलंतं न दावानलं ॥ २० ॥

अर्थ—ते प्राणी भोगनो जंबाल के० कलिमल तेणे मोहित थयो थको मोक्षमार्गना साधनने विषे पण भवोद्विग्नतापणे निश्चय थकी रहे छे ॥ १९ ॥ धर्मनी सामर्थताने कामभोगनो संयोग हणी शकतो नथी, केमके धर्मनी सामर्थता घणी बलवत्तर छे. दीपक समान अल्प धर्मने तो कदापि वायु समान विषय ओलवी नाखे, पण जाज्वल्यमान दावानल समान जे महाधर्मनी वासना तेने वायु नडी शकतो नथी ॥ २० ॥

बध्यते बाढमासक्तो यथा श्लेष्मणि मक्षिका ॥
शुष्कगोलवदश्लिष्टो विषयेभ्यो न बध्यते ॥ २१ ॥
बहुदोषनिरोधार्थमनिवृत्तिरपि क्वचित् ॥
निवृत्तिरिव नो दुष्टा योगानुभवशालिनां ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम श्लेष्मने विषे माखी लेपाइ फसाइ जाइ छे, तेम विषयने विषे गाढपणे आसक्त थतां प्राणी बंधाइ जाय छे. सुकी मृत्तिकाना गोलामां जेम माखी फसाती नथी तेम आसक्ति

रहित उदासीन एवा जे जीव ते विषयने विषे बधाता नथी ॥ २१ ॥ जेम रोगने काढवाने औषधोनी जरूर छे तेम घणा दूषणनो रोध करवाने अर्थे क्वचित् अनिवृत्तिपणु पण दुष्ट नथी. जेम कामभोगनी त्यागबुद्धि दुष्ट नथी, तेम अनुभवजोगे करीने सहित जे वर्त्ते तेने क्वचित मात्र अनिवृत्ति छे ते पण निवृत्तिनी पेंज दुष्ट नथी ॥ २२ ॥

यस्मिन्निषेव्यमाणेऽपि यस्याशुद्धिः कदाचिन ।
तेनैव तस्य शुद्धिः स्यात् कदाचिदिति हि श्रुतिः॥२३॥
विषयाणा ततो बधजनने नियमोऽस्ति न ॥
अज्ञानिना ततो बधो ज्ञानिना तु न कर्हिचित् ॥२४॥

अर्थ—जेम शत्रुनी सेवना करनारो पुरुष दुःखीयो थईने कालांतरे सुखी थाय तेम कदापि विषयने सेवनारो कर्म करीने तेहि ज विषयादिकथी शुद्ध थाय, एवी पण कोइकनी श्रुती छे ॥ २३ ॥ जे विषय ते एकांते कर्मबंधनु ज कारण छे, एवो एकांत नियम नथी, पण जे अज्ञानी छे तेने ज कर्मबंधनु कारण छे, पण जे तत्त्वज्ञानी समतारसमां मग्न छे, तेने नथी ॥ २४ ॥

सेवतेऽसेवमानोऽपि सेवमानो न सेवते ॥
कोऽपि पारजनो न स्याच्छ्रयन् परजनानपि ॥२५॥
अत एव महापुण्यविपाकोपहितश्रियाम् ॥
गर्भादारभ्य वैराग्य नोत्तमाना विहन्यते ॥ २६ ॥

अर्थ—केटलाक प्राणी विषयने द्रव्यथी अणसेवता थका पण भावथी विषयने सेवे छे, केटलाक प्राणी द्रव्यथी सेवे छे पण भावथी नथी सेवता, पारकी सेवना करतो थको पण तेहनो

परमार्थ पर प्रते न देतो थको एहवो जे ज्ञानी ते कर्ममथी ज नथी थतो ॥ २५ ॥ ए माटे उत्तम पुरुषे महापुण्य विपाकना योगे प्राप्त करी एहवी जे तीर्थकरादिकनी लक्ष्मी तेने गर्भथकी मांडीने पण वैराग्यधारा त्रुटती नथी ॥ २६ ॥

विषयेभ्यः प्रशांतानामश्रांतं विमुखेकृते ॥
करणैश्चारुवैराग्यमेष राजपथः किल ॥ २७ ॥

स्वयं निवर्त्तमानैस्तैरनुदीर्णैरयंत्रितैः ॥
तृप्तैर्ज्ञानवतां तस्माद्सावेकपदी मता ॥ २८ ॥

अर्थ—जेहने विषयथकी प्रशांत चित्त थयुं छे अने विश्राम रहित इंद्रियोना विषयने विमुख करवुं तेणे करीने मनोहर वैराग्य मार्ग सेववानुं बने, अने विषयनो पण त्याग थाय, ते तो निश्चयथकी वैराग्य दिशानो राजमार्ग छे ॥ २७ ॥ अने जे इच्छा विना सहेजे कोइ कारणयोगे पोते इंद्रियविकारथकी निवर्त्ते छे, पण प्रशांतने अण उदीरवे करीने अनियंत्रणायें करी एटले इंद्रियनो निरोध हजी कर्यो नथी, पण सहेज चारित्र प्रमुखना योगे इंद्रियनिरोध थयो छे एहवा तृप्तिवंत ज्ञानी पुरुष तेनो वैराग्य ते पूर्वोक्त राजमार्गना वैराग्यनी एकपदी छे, एटले एकदंडी छे. जेम गाडा चालवाना मार्गने तो महोटो मार्ग कहियें, पण माणसोने पगे चालवानो रस्तो न्हानो थाय छे, तेवो ते वैराग्य पण न्हानो कहियें ॥ २८ ॥

बलेन प्रेर्यमाणानि करणानि वने भवत् ॥
न जातु वशतां यांति प्रत्युतानर्थवृद्धये ॥ २९ ॥

पश्यंति लज्जया नीचैर्दुर्ध्यानं च प्रयुंजते ॥
आत्मानं धार्मिकाभासाः क्षिपंति नरकावटे ॥३०॥

अर्थ—बलात्कारे प्रेर्या थका पण वनना हाथीनी पेठे इंद्रियो कदापि वश थती नथी, ऊलटी अनर्थनी वृद्धि करनारी थाय छे ॥ २९ ॥ लाजे करी नीचु जुए छे अने मनमा दुष्ट ध्यान धरे छे, एवा धर्मधुतारा प्राणी ते पोताना आत्माने नरकना कूपमा नाखे छे ॥ ३० ॥

वचन करणाना तद्विरक्त. कर्तुमर्हति ॥
सद्भावविनियोगेन सदा स्वान्यविभागवित् ॥३१॥
प्रवृत्तेर्वा निवृत्तेर्वा न सकल्पो न च श्रमः ॥
विकारोहीयतेऽक्षाणामिति वैराग्यमद्भुत ॥ ३२ ॥

अर्थ—शुभ भावने अर्पण करीने सदा स्वपर विवेचन ज्ञानयुक्त भावनावाला ज्ञाता विरक्त प्राणी इंद्रियोने ठगवाने समर्थ थाय छे, पण बीजा नथी थता ॥ ३१ ॥ प्रवृत्तिने विषे अथवा निवृत्तिने विषे जेने सकल्प नथी अने थाक पण नथी, एवा समभावे वर्तनारना सर्वे विकार दूर थाय छे, अने एनु नाम अद्भुत वैराग्य पण छे ॥ ३२ ॥

दारुयत्रस्यपाचालीनृत्यतुल्या प्रवृत्तय ॥
योगिनो नैव बाधायै ज्ञानिनो लोकवर्तिन· ॥३३॥
इय च योगमायेति प्रकट गीयते परैः ॥
लोकानुग्रहहेतुत्वान्नास्यामपि च दूषण ॥ ३४ ॥

अर्थ·—जेम काष्टनी पुतलीने दोरीना सचारे करी नाचनारीना माफक नाचती जोइए छीये, पण तेने कर्मबंध नथी, तेम लौकिक व्यवहारने विषे वर्त्तता ज्ञानी जे योगीश्वर पुरुष तेहने ससारनी प्रवृत्ति पीडा करती नथी ॥ ३३ ॥ ए वैराग्य

दशाने पर दर्शनी जोग मायाने नामे प्रगटपणे बोलावे छे, ए पण लोकने उपकारकर्त्ता छे. एने विषे दूषण नथी ॥ ३४ ॥

सिद्धांते श्रूयते चेयमपवादपदेष्वपि ॥
मृगपर्षत्परित्रासनिरासफलसंगता ॥ ३५ ॥

औदासीन्यफले ज्ञाने परिपाकमुपेयुषि ॥
चतुर्थेऽपि गुणस्थाने तद्वैराग्यं व्यवस्थितं ॥ ३६ ॥

अर्थः—सिद्धांतमां पण सांभलीये छीये के, अपवादने विषे मृगला सरखी पर्षदाने पण निरास करवी एज वृषभ तुल्य गीतार्थनी शुद्ध ज्ञानदिशा जाणवी ॥ ३५ ॥ परिपक्व थइथकी एवी जे ज्ञानदिशा अने जेनुं फल उदासीनता छे, ते थकी चोथे गुणस्थानके पण वैराग्यदिशा प्राप्त थाय छे ॥ ३६ ॥

इति वैराग्यसंभवाधिकार पंचम समाप्त ॥



वैराग्यभेदाधिकार

तद्वैराग्य स्मृत दुःखमोहज्ञानान्वयात्त्रिधा ॥
तत्राद्य विषयाप्राप्तेः ससारोद्वेगलक्षण ॥ १ ॥
अत्रागमनसोः खेदो ज्ञानमव्यापक न यत् ॥
निजाभीप्सितलाभे च विनिपातोऽपि जायते ॥ २ ॥

अर्थः—ते वैराग्य त्रण प्रकारनां छे दुःखगर्भित, मोह गर्भित अने ज्ञानगर्भित तेमा प्रथम स्त्री त विषयादिकने न पामवाथकी ससारथी उद्वेग पामवानु लक्षण छे, माट तेहने दुःख-गर्भित वैराग्य कहिये ॥ १ ॥ देह सबधी, मन सबधी जे खेद तेथी उपज्यु जे ज्ञान ते अव्यापक के० शुद्धिकारी न थाय, आत्मानी पुष्टिकर्त्ता न थाय, केमके ते प्राणी पोतान अभिलाप करवा योग्य धनादिक वस्तुने पामीने तापसादिपणु छोडीने पाछु गृहस्थपणु अगीकार कर ॥ २ ॥

दुःखाद्विरक्ता प्रागेवेच्छति प्रत्यागते पद ॥
अधीरा इव सग्रामे प्रविशता वनादिक ॥ ३ ॥
शुष्कतर्कादिक किंचिद्वैद्यकादिकमप्यरो ॥
पठति ते शमनदो न तु सिद्धान्तपद्धति ॥ ४ ॥

अर्थ —दुःखथकी जे वैराग्य पाम्या त तो प्रथमथी ज पाछा गृहस्थावासनी इच्छा करे छे, जे दुःख टले तो घर जइये, जेम अधीर पुरुष जे कायर ते संग्रामने विष जतांथको वननी गलीमा सरावा नेसवानी इच्छा करे छे, तेहनी पेरे ॥ ३ ॥

प्राणीयो वादविवाद करवाने शुष्क तर्क ग्रंथ भणे छे, आजीविकाने अर्थे वैद्यक प्रमुखना ग्रंथ भणे छे; पण समता रसनी नदी एवी सिद्धांतनी जे पद्धति ते भणता नथी ॥ ४ ॥

ग्रंथपल्लव बोधेन गर्वोष्माणं च बिभ्रति ॥
नत्त्वं ते नैव गच्छंति प्रशमामृतनिर्झरं ॥ ५ ॥
वेषमात्रभृतोऽप्येते गृहस्थान्नातिशेरते ॥
न पूर्वोत्थायिनोयस्मान्नापि पश्चान्निपातिनः ॥ ६ ॥

अर्थः—जे समता-अमृतना झरणने पाम्या नथी, ते ग्रंथना पल्लवमात्रके० खंडखंडमात्रे करीने गर्वनी गरमीने धरीनेज वर्त्ते छे, पण तत्त्वना रहस्यने पामताज नथी ॥ ५ ॥ जे साधुना वेष मात्रे करीने पोतानुं जीवितव्यपणुं राखे छे, ते पण गृहस्थ-तुल्यज छे, पण गृहस्थथी न्यारा नथी; जेणे आगल उच्छाह धर्यो नथी, जे गुण पामीने पडवाइ पण थया नथी, केमके गुण पामीने तजे ते तो पडवाइ कहेवाय; पण एतो कोइवारे पडवाइ पण थया नथी, एहवा जे छे ते तो गुणने पाम्याज नथी ॥ ६ ॥

गृहेऽन्नमात्रदौर्लभ्यं लभ्यंते मोदका व्रते ॥
वैराग्यस्यायमर्थो हि दुःखगर्भस्य लक्षणं ॥ ७ ॥
कुशास्त्राभ्याससंभूतंभवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥
मोहगर्भं तु वैराग्यं मतं बालतपस्विनां ॥ ८ ॥

अर्थः—अहो घरमां तो पूरुं अन्न पण नथी मलतुं, ने दीक्षा लीधा थकी तो लाडवा मले छे, ते माटे दीक्षा लेवामां शुं दुःख छे ? एवुं जाणीने जे दीक्षा लिये छे तेनुं नाम दुःखगर्भित वैराग्य जाणवुं ॥ ७ ॥ ए रीते प्रथम दुःखगर्भित वैराग्यपणुं

देशाडयु हवे मोहगर्भित वैराग्य कहे छे कुशास्त्रना अभ्यासथी प्रगटयु जे ससारनु निर्गुणीपणु तेथी मोहगर्भित वैराग्य थाय छे ते बाल तपस्वी प्रमुख जाणवा ॥ ८ ॥

सिद्धातमुपजीव्यापि ये विरुद्धार्थभाषिण ॥
तेषामप्येतदेवेष्टकुर्वतामपि दुष्कर ॥ ९ ॥
ससारमोचकादीना मिवैतेषा न तात्त्विक ॥
शुभोऽपि परिणामो यज्ञालानाज्ञानकच्चिस्थिति: ॥१०॥

अर्थ.—जे सिद्धातनु उपजीवन करीने पणसूत्र विरोधि अर्थ कहे छे, ते प्राणी जो दुष्कर करणी करे छे तोपण तेने एनो ज जाणवो ॥ ९ ॥ ससारना दु खथी मूकावाना हेतुथी जे मुसलमान ते घोडा प्रमुखने दु खी देखी दयाभावे करी मारी नाखे छे, ते पण शुभ परिणामनी बुद्धि राखे छे ते छता परमार्थे पाप ज छे, तेम मोहगर्भितने परमार्थ जडे नहीं जो एनो परिणाम शुभ होय तोपण परमार्थे ज्ञाननी रुचि थाय नहीं ॥ १० ॥

अमीषा प्रशमोप्युक्तं दोषपोषाय केवल ॥
अतर्निलीनविषम ज्वरानुभवसन्निभ ॥ ११ ॥
कुशास्त्रार्थेषु दक्षत्व शास्त्रार्थेषु विपर्यय ॥
स्वच्छदता कुतर्कश्च गुणवत्सस्तवोज्झन ॥ १२ ॥

अर्थ—जेम अतरगमा लीन थइ रह्या एहवा हाडनदी ज्वर दु खदायी थाय छे, तेम एने पण जे प्रशमादिक गुण थाय, ते पण घणु करीने केवल दूषणभणीज थाय, पण गुणभणी नहीज थाय, केमके अतरग मिथ्यात्व गया विना वैराग्य ते दु खदायी छे ॥ ११ ॥ कुशास्त्रना अर्थने विषे डाह्या थाय, ने शास्त्रना

विपरीत अर्थ करे, स्वछंदपणे वर्ते, कोइ साथे क्षमा राखे नहीं अने गुणीनी प्रशंसा न करे ॥ १२ ॥

आत्मोत्कर्षः परद्रोहः कलहो दंभजीवनं ॥
आश्रवाच्छादनं शक्त्युल्लंघनेन क्रियादरः ॥ १३ ॥
गुणानुरागवैधुर्यमुपकारस्य विस्मृतिः ॥
अनुबंधाद्यचिंता च प्रणिधानस्य विच्युति ॥१४॥

अर्थः—जे पोतानी मोटाइ करे, पारको द्रोह करे, क्लेश कजीआ करे, कपट राखे, पोताना पाप ढांके, पोतानुं सामर्थ्य उलंघीने क्रियानो उद्यम करे, ते आर्त्तध्यानी कहेवाय ॥ १३ ॥ वली जे गुणी पुरुषोनो रागी न होय, बीजाना करेला उपकारने विसरी जाय, तीव्र कर्मबंधनी चिंता सहित वर्त्ते, अने शुभ अध्यात्मना अध्यवसाय रहितपणे वर्त्ते ॥ १४ ॥

श्रद्धामृदुत्वमौद्धत्य माधुर्य्यमविवेकिता ॥
वैराग्यस्य द्वितीयस्य स्मृतेयं लक्षणावली ॥ १५ ॥
ज्ञानगर्भं तु वैराग्यं सम्यक्तत्त्वपरिच्छिदः ॥
स्याद्वादिनः शिवोपायस्पर्शिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥१६॥

अर्थः—श्रद्धा, मृदुता, उद्धतता, मधुरता, अविवेकपणुं ए मोहगर्भित वैराग्यनी परंपरा जाणवी ॥१५॥ ए रीते मोहगर्भित वैराग्यनुं स्वरूप कह्युं. हवे ज्ञानगर्भित वैराग्यनुं स्वरूप कहे छे. जे सम्यक्त्वे करी तत्त्वनी ओलखाण करे, स्याद्वाद दृष्टियें वर्ते, मोक्षनुं चिंतन करे, मोक्षना उपायने फरसे, अने तत्त्वदिशा देखवानो अर्थी थाय; ते ज्ञानगर्भित वैराग्य जाणवो ॥ १६ ॥

मीमासा मासला यस्य स्वपरागमगोचरा ॥
बुद्धिः स्यात्तस्य वैराग्य ज्ञानगर्भमुदचति ॥ १७ ॥
न स्वान्यशास्त्रव्यापारे प्राधान्य यस्य कर्मणि ॥
नाप्नौ निश्चयसशुद्ध मार प्राप्नोति कर्म्मण. ॥१८॥

अर्थ·—जेहनो विचार पुष्टकारी होय अने स्वसिद्धात तथा परसिद्धात मवधी बुद्धि जेने होय तेने वैराग्यनी वात कहिये, अने एहानेज ज्ञानगर्भित वैराग्य प्रगट थाय ॥ १७ ॥ जेने स्वशास्त्र परशास्त्रना व्यापारनु प्राधान्यपणु नथी, तेमज क्रियाने विषे पण प्राधान्यता नथी, ते निश्चे थकी क्रियानुं निर्मल सारभूत जे फल तेने क्यारे पण पामे नहीं ॥ १८ ॥

सम्यक्त्वमौनयो सूत्रे गतप्रत्यागते यतः ॥
नियमो दर्शितस्तस्मात् सार सम्यक्त्वमेव हि ॥१९
अनाश्रवफल ज्ञानमव्युत्थानमनाश्रव· ॥
सम्यक्त्व तदभिव्यक्तिरत्येकत्वविनिश्चय. ॥२०॥

अर्थः—जे सम्यक्त्व ते मौन चारित्र कहिये, अने चारित्र ते मोन समकित कहिये, एवु श्री आचाराग मध्ये गतप्रत्यागत करीने कह्यु छे ॥ ज सम्म तिपासहा त मोण तिपासहा जम्मो ॥ ते माटे नियामकपणुं जाणवु ॥ सिझति चरणरहिया दसणरहिया न सिझति ॥ इति वचनात् ते माटे सम्यक्त्व ते सारभूत जाणवु ॥ १९ ॥ आश्रवनो त्याग ते ज्ञाननु फल छे अने अनाश्रवनु फल ते अभ्युत्थान एटले विषयमा उजमाल न थाय, विषयनो त्यागी होय, एवु नाम निश्चय सम्यक्त्व कहिये कारक सम्यक्त्वीनी एवी दृष्टि होय, एटला माटे निश्चय नयनीरति के० प्रीति ते शुद्धचारित्रवतनेज होय ॥ २० ॥

बहिर्निवृत्तिमात्रं स्याच्चारित्र्याद्व्यवहारिकात् ॥
अंतःप्रवृत्तिसारं तु सम्यक्प्रज्ञानमेव हि ॥ २१ ॥
एकांतेन हि षट्कायश्रद्धानेऽपि न शुद्धता ॥
संपूर्णपर्ययालाभाद् यन्न याथात्म्यनिश्चयः ॥ २२ ॥

अर्थः—धन, कण, कंचन, कामिनी प्रमुख बाह्य वस्तुनो जे त्यागी थाय, ए व्यवहार चारित्रना पालवाथी ते प्राणी व्यवहार दृष्टियेंज चाले छे अने जेने सम्यक्त्व सहित ज्ञाननी प्रवृत्ति होय, तेहनेज अंतरंग प्रवृत्तिनो सार कहिये ॥ २१ ॥ समस्त नयनी वासना रहित थका एकांते छकायनी रक्षानी श्रद्धा करता थका सम्यक्त्वनी शुद्धता न कहेवाय, पण संपूर्ण नयनो अपेक्षाये द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयना लाभ विना यथार्थपणानो लाभ नही ज थाय, माटे शुद्ध नयनी अपेक्षाये वर्त्तवुं ॥ २२ ॥

यावंतः पर्यया वाचां यावंतश्चार्थपर्ययाः ॥
सांप्रतानागतातीतास्तावद्द्रव्यं किलैककं ॥ २३ ॥
स्यात्सर्वमयमित्येवं युक्तं स्वपरपर्ययैः ॥
अनुवृत्तिकृतं स्वत्वं परत्वं व्यतिरेकजं ॥ २४ ॥

अर्थ—जेम जगत्मां वर्त्तमान, अनागत तथा अतीतकालना जेटला शब्द पर्याय वचनना छे, तथा पदार्थना जेटला अर्थपर्याय छे, ते सर्व पर्याय निश्चेथी एकज द्रव्य छे ॥ २३ ॥ जे सत्व के० पदार्थ ते सर्वस्व परपर्यायमयी होय ते आवी रीते जे अनुवृत्ति सहजचारी गुणपणे स्वत्वं के० स्वपणुं जाणवुं अने परपणुं ते व्यतिरेकपणे करी जाणवुं ॥ २४ ॥

ये नाम परपर्याया. स्वास्तित्वायोगतो मता ॥
स्वकीया अप्यमी त्याग स्वपर्यायविशेषणात् ॥२५॥
अतादात्म्येऽपि सबधव्यवहारोपयोगत. ॥
तेपा स्वत्व धनस्येव व्यज्यते सूक्ष्मया धिया ॥ २६ ॥

अर्थ—जेटला परपर्याय छे ते सर्व पोतानी आस्तिक्यताना अजोगथी जाणवा. ते यद्यपि पोताना छे, तो पण गतभाव छे अने पोताना पर्याय तो सामान्यतापणे छे ॥ २५ ॥ परपर्याय जो पण तादात्म्यभावे नथी तोपण व्यवहारनयना जोगथी तेहनो सबध छे जेम धननो धणी अने धन ते जुदा जुदा छे, तोपण सूक्ष्म बुद्धिये विचारता तेमनो सबध जणाय छे ॥ २६ ॥

पर्याया· स्युर्मुनेर्ज्ञानदृष्टिचारित्रगोचरा. ।
यथा भिन्ना अपि तथोपयोगाद्वस्तुनो ह्यमी ॥ २७ ॥
नो चेद्भावसबधानेपणे का गतिर्भवेत् ॥
आधारप्रतियोगित्वे द्विष्ठे न ह्ि पृथग् द्वयो ॥ २८ ॥

अर्थ—तेम अभिन्नपणे ज्ञानना तथा चारित्र सबधी पर्याय मुनिने पण होय, जो पण ते अभिन्न छे, तो पण उपयोगपणे विचारता निश्चयनये पोतपोताना ज छे, पण व्यवहार एक आत्माना छे, एम कहेवाय ॥ २७ ॥ एम जो न कहीये अने अभावना सबधथी गवेपणा करिये तो केवी गति थाय ? आधारातर निरूपकताने भावे विचारता, " द्विष्टे विनष्टे द्वयात् " एटले पृथक्भावताना द्वेप करवाथी विणसे अने ते बेहुथी आत्मा भिन्न नथी ॥ २८ ॥

स्वान्यपर्यायसंश्लेषात् सूत्रेऽप्येवं निदर्शितं ॥
सर्वमेकं विदन्वेद सर्वं ज्ञानं नयैककं ॥ २९ ॥
आसत्तिपाटवाभ्यास स्वकार्यादिभिराश्रयन् ॥
पर्यायमेकमप्यर्थं वेत्ति भावाद् बुधोऽखिलं ॥३०॥

अर्थ—स्वपर्याय अने परपर्यायना संबंधथी सूत्रने विषे पण एम देखाडयुं छे के सघलुं एकताभावे जाणतां, " एगेआया, " इत्यादिक सघलुं ज्ञान ते संग्रहनये करी एकज छे ॥ २९ ॥ माटे चित्तनी आसक्तिये अने बुद्धिनी पाटवताये अभ्यास करवाथी पोताना कार्यपणादिकने आश्रयतां थकां पर्यायना एक अर्थने जाणीने पण बुद्ध जे पंडित ते सर्व भावने जाणे " जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ " इति वचनात ॥ ३० ॥

अंतरा केवलज्ञानं प्रतिव्यक्तिर्न यद्यपि ॥
क्वापि ग्रहणमेकांशद्वारं चातिप्रसक्तिमत् ॥ ३१ ॥
अनेकांतागमश्रद्धा तथाप्यस्खलिता सदा ॥
सम्यग्दृष्टेस्तयैव स्यात् संपूर्णार्थविवेचनं ॥ ३२ ॥

अर्थ—यद्यपि केवलज्ञानने विषे तो कांइ पण प्रतिव्यक्ति नथी, तोपण कोई ठेकाणे एक अंशनुंज ग्रहण कर्युं छे, ने कोइ स्थानके सर्वांश ग्रहण कीधो छे ॥ ३१ ॥ तो पण अनेकांत आगमनी श्रद्धा ते अस्खलितपणे सदा प्रवर्त्ते छे, माटे अनेकांतपणुं अंगीकार करतां ज सम्यक्त्व छे; तथा उत्सर्ग, अपवाद, निश्चयव्यवहार तेना संपूर्ण अर्थनो निश्चय थाय छे ॥ ३२ ॥

आगमार्थोपनयनाद् ज्ञानं प्राज्ञस्य सर्वगं ॥
कार्यादेर्व्यवहारस्तु नियतोल्लेखशेखरः ॥ ३३ ॥

तदेकांतेन यः कश्चिद्विरक्तस्यापि कुग्रहः ॥
शास्त्रार्थबाधनात्सोऽय जैनाभासस्य पापकृत् ॥ ३४ ॥

अर्थ—आगमना अर्थनु उपनयन जे थापवु ते थकी प्राप्त जे बुद्धिवंत तेनु ज्ञान सर्वव्यापकपणे प्रवर्त्ते कार्यादिक जे व्यवहार छे, ते तो निश्चयपणे चित्रामणनी रेखा सरिखो छे श्रेष्ठरूप करवाने जेम आलेखन करे ते सरिखो व्यवहार छे, अने समग्ररूप करवा समान ते निश्चयनय छे ॥ ३३ ॥ ते माटे एकांत नय अंगीकार करीने प्रवर्त्तनारा वैराग्यवंतने पण कुग्रही कहिये, तो बीजा मात्र नाम धरावनार होय तेनी तो शी वार्ता ? एक नयवालो शास्त्रना अर्थनो बाधक जाणवो. ते जो जैनाभास छे तो पण पापकारी जाणवो ॥ ३४ ॥

उत्सर्गे चापवादेऽपि व्यवहारेऽथ निश्चये ॥
ज्ञाने कर्म्मणि वाय चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३५ ॥
स्वागमेऽन्यागमार्थाना शतस्येव परार्धके ॥
तावताप्यबुधत्व चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३६ ॥

अर्थ—उत्सर्गमार्गमा, अपवादमार्गमा, व्यवहारमार्गमा, निश्चयमार्गमा, ज्ञाननयने विषे अने क्रियानयने विषे जो कदाग्रह नथी, तो तेने ज्ञानगर्भितपणु छे अने ते ज्ञानी पण छे ॥३५॥ स्वसिद्धांतना जाणवाथी अन्य शास्त्रनु जाणवु ते तेमा ज समाइ जाय छे जेम परार्ध नाम उत्कृष्ट गणित (अंक) छे, तेमा सोनु गणित (अंक)पण समाइ जाय छे, अने तेटलु ज्ञान पामीने पण जो अज्ञानपणु रहे तो, तेने ज्ञानगर्भिता बिलकुल नथी एम जाणवु ॥ ३६ ॥

नयेषु स्वार्थसत्येषु मोघेषु परचालने ॥
माध्यस्थ्यं यदि नायातं न तदा ज्ञानगर्भता ॥३७॥
आज्ञयागमिकार्थानां यौक्तिकानां च युक्तितः ॥
न स्थाने योजकत्वं चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥३८॥

अर्थ—पोतपोताना स्वार्थने विषे सघला नय सत्य छे, ने परमार्थनी चालने विषे निष्फल छे, अने ते नयना विवादमां जो मध्यस्थता न आवी तो तेने ज्ञानगर्भता छे ज नहीं ॥३७॥ जे आज्ञाग्राह्य अर्थने आज्ञाये ग्रहे नही, आगम प्रमाणे ग्रहवा योग्यने आगमे ग्रहे नहीं, अने युक्तिग्राह्यने युक्तिवडे ग्रहे नहीं, एम सहुने पोतपोताने ठेकाणे जोडी जाणे नही, तो तेने ज्ञानगर्भिता मूलथी ज नथी एम जाणवुं ॥ ३८ ॥

गीतार्थस्यैव वैराग्यं ज्ञानगर्भं ततः स्थितं ॥
उपचारादगीतस्याप्यभीष्टं तस्य निश्रया ॥ ३९ ॥
सूक्ष्मेक्षिका च माध्यस्थ्यं सर्वत्र हितचिंतनं ॥
क्रियायामादरो भूयान् धर्मे लोकस्य योजनं ॥४०॥

अर्थ—उपर कह्या मुजब तो गीतार्थने ज ज्ञानगर्भित वैराग्य छे, पण अज्ञानीने नथी एम ठर्युं; तो पण तेना उपचारथकी अगीतार्थने पण गीतार्थनी निश्राये ज्ञानगर्भित वैराग्य छे ॥३९॥ ते माटे सूक्ष्म दृष्टिये मध्यस्थपणुं अंगीकार करीने अने परदूषण तजीने वर्त्तवुं, सर्व जगत्ना जीवनुं हित चिंतववुं, मैत्रीभाव धरवो, क्रियाने विषे घणो आदर करवो, उपयोग धरवो अने धर्ममार्गमां लोकने जोडवा एहि ज श्रेष्ठ छे ॥ ४० ॥

चेष्टा परस्य वृत्तांते मूकांधबधिरोपमा ॥
उत्साहः स्वगुणाभ्यासे दुःस्थस्येव धनार्जने ॥४१॥
मदनोन्मादवमनं मदसमर्दमर्दनं ॥
असूयातंतुविच्छेदः समतामृतमज्जनं ॥ ४२ ॥

अर्थ—मुंगा तथा आंधला अने बेहरानी पेरे बोलवामां, देखवामां अने सांभलवामां इत्यादिक पारका वृत्तांतने विषे जेणे चेष्टा तजी छे, अने पोताना गुणना अभ्यास करवामां जे उत्साहवंत छे; जेम दरिद्री धन कमावानो उद्यमी होय तेनी परें उजमाल थको वर्त्ते ॥ ४१ ॥ कामना उन्मादनुं वमन करनार, मदना समूहने टालनारा, ईर्षारूप तंतुना तोडनारा अने समतारूप अमृत कुंडमां मज्जन करनारा ॥ ४२ ॥

स्वभावान्नैव चलनं चिदानंदमयात्सदा ॥
वैराग्यस्य तृतीयस्य स्मृतेयं लक्षणावली ॥ ४३ ॥
ज्ञानगर्भमिहादेयं द्वयोस्तूपमर्दतः ॥
उपयोगः कदाचित् स्यान्निजाध्यात्मप्रसादतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा चिदानंदमयपणाना स्वभावथी सर्वदा चलायमान नही एहवा वर्त्तणुकवंत जे होय, ए त्रीजा ज्ञानगर्भित वैराग्यना गुणनी लक्षणावली कही ॥ ४३ ॥ इहां ज्ञानगर्भित वैराग्य ते ग्रहवा योग्य छे, अने मोहगर्भित वैराग्य तथा दुःखगर्भित वैराग्यनुं उपमर्दन करीने केटलाक पोताना अध्यात्मभावना प्रसादथकी कदाचित ज्ञानगर्भित वैराग्यनो उपयोगी थाय ॥४४॥

इति श्रीवैराग्यभेदाधिकार षष्ठ समाप्त ॥

वैराग्य विषयाधिकार–

विषयेषु गुणेषु च द्विधा भुवि वैराग्यमिदं प्रवर्त्तते ॥
अपरं प्रथमं प्रकीर्तितं परमध्यात्मबुधैर्द्वितीयकं ॥ १ ॥

अर्थ—पृथ्वीने विषे विषयमां अने गुणमां ए बेहु प्रकारे वैराग्य प्रवर्त्ते छे. तेमां विषय वैराग्य तो अमुख्यपणे कह्यो छे. बीजो अध्यात्मभावयुक्त गुण वैराग्य ते मुख्यपणे जाणवो ॥१॥

विषयाउपलंभगोचरा अपि चानुश्रविकाविकारिणः ॥
न भवंति विरक्तचेतसां विषधारेव सुधासु मज्जतां ॥२॥

अर्थ—जे विषय वैराग्य छे ते प्राप्तिगोचरपणे वर्त्ते छे, पण निश्चेथी ज्ञाता पुरुष ते रूपरसादिकने विषे आसक्ति करे नही. जे विरक्त चित्तवाला ते अविकारी थकाज होय, केमके जे अध्यात्मरूप अमृतधाराने विषे मज्जन करता होय तेहने विषनी धारा शुं करनार छे ? अर्थात तेहने कांइ विषनी धारा पीडा करी शकती नथी ॥ २ ॥

सुविशालरसालमंजरीविचरत्कोकिलकाकलीभरैः ॥
किमु माद्यति योगिनां मनो निभृतानाहतनादसादरं॥३

अर्थ—जे योगीश्वर अनहद नादे सहित छे, ते योगमार्गे करीने सर्व देहरंध्रपुरीने " अर्हपद " अथवा " सोहं " पद अथवा ॐकार ध्वनि मनमां धरे छे, तेनो ब्रह्मद्वारे जे नाद ऊठे छे तेनुं नाम अनहद नाद कहिये, तेणे करी जे युक्त छे तो तेवा योगीश्वरनुं मन भली विस्तारवंती आंबानी मंजरीने विषे विचरती जे कोकिला तेना मनोहर शब्द सांभलीने शुं मग्न थशे ? अर्थात् नहीं ज थशे ॥ ३ ॥

रमणीमृदुपाणिकरुणक्वणनाकर्णनपूर्णघूर्णना· ॥
अनुभूतनटीस्फुटीकृतप्रियसगीतरता न योगिन ॥४॥

अर्थ—स्त्रीना सुकोमल हाथमा रह्या जे करुण तेनो शब्द साभलीने पूर्णपणे घुम्या छे लोचन जेनी अनुभव दिशारूप नाटक करनारी स्त्रीये प्रियकारी सगीतरूप नाटक कीधा तो पण तेमा योगीश्वरनु मन रगाय नही, एटले लोभाय नही ॥ ४ ॥

स्वलनाय न शुद्धचेतसा ललनापचमचारुघोलना ॥
यदिय समतापदावलीमधुरालापरतेर्न रोचते ॥ ५ ॥

अर्थ — स्त्रीनी पचमरागनी घोलना ते समतापदनी श्रेणिना मधुर आलापनी रतिवाला शुद्ध चेतनावत योगीने रुचे नहीं, एटले शुद्ध चेतनावतने स्खलनाकारी न थाय ॥ ५ ॥

सतत क्षयि शुक्रशोणितप्रभव रूपमपि प्रिय न हि ॥
अविनाशिनिसर्गनिर्म्मलप्रथमानस्वकरूपदर्शिन. ॥६॥

अर्थ.—अविनाशी सहज निर्मल अने विस्तार पामतु एहवु जे पोतानु स्वरूप तेहना जोनार योगीश्वर तेने तो जेनु निरतर शील क्षय थाय छे अने वीर्यरुधिरथी उपनु एहवु जे स्त्री आदिकनु रूप ते प्रियकारी लागतु नथी ॥ ६ ॥

परद्रव्यमपायसकुल विषयो यत्खलु चर्मचक्षुष ॥
न हि रूपमिद मुदे यथा निरपायानुभवैकगोचर ॥७॥

अर्थ —जेनो निरपाय के० जेहनो नाश नथी एहनो अनुभवदिशाने जोवानो रस छे तेने रूप ते परपदार्थ के० धीनान जोवा योग्य छे, वळी नाशवत छे, अने चर्मचक्षुनो विषय

छे एहवो जे रूप ते जोवाथकी तेनो जे रस ते निश्चयनयथकी हर्षकारी न थाय ॥ ७ ॥

रतिविभ्रमहास्यचेष्टितैर्ललनानामिह मोदते ऽबुधः ॥
सुकृताद्रिपविष्वमीषु नो विरतानां प्रसरंति दृष्टयः॥ ८

अर्थ—रतिसुखने देखीने तथा स्त्रीना नेत्रविभ्रमनी चेष्टायें करीने अबुद्ध जे अज्ञानी प्राणी ते घणो हर्ष पामे छे, पण ए विभ्रम विलासादिक तो सुकृतरूप पर्वतने वज्र थइ भेदे एवा छे माटे योगीश्वरनी दृष्टि तेमां रमती नथी ॥ ८ ॥

न मुदे मृगनाभिमल्लिकालवलीचंदनचंद्रसौरभं ॥
विदुषां निरुपाधिबाधितस्मरशीलेन सुगंधिवर्ष्मणां ९

अर्थः—कस्तूरी, मालतीना पुष्प, लवली के० एलची चंदन तथा चंद्र के० कर्पूरनी सुगंधी ते पंडित लोकोने मग्न करती नथी; तेमने तो निरुपाधिक अनुभवगोचर स्वरूप चिदादानंदने विषेच मग्नपणुं वर्त्ते छे, पण रूपादिकने विषे मग्नतापणुं नथी ॥ ९ ॥

उपयोगमुपैति यच्चिरं हरते यन्न विभावमारुतः ॥
न ततः खलु शीलसौरभादपरस्मिन्निह युज्यते रतिः॥१०

अर्थः—जे घणा काल सुधी उपयोगमां आवे, जेनी सुगंधीने विभावदिशारूप वायु हरी शकतो नथी, एवी जे शील सुगंधी तेने मूकी योगीश्वरनुं चित्त अन्य सुगंधीमां लोभातुं नथी ॥ १० ॥

मधुरैर्न रसैरधीरता क्वचनाध्यात्मसुधालिहां सतां ॥
अरसैः कुसुमैरिवालीनां प्रसरत्पद्मपरागमोदिनां ॥११॥

अर्थः—जेम निकस्वर थता जे कमल तना स्वाद सुगध-युक्त रसे मग्न थया एवा जे भ्रमर ते निरस कुसुम उपर रति पामे नही, तेम अध्यात्मरूप अमृतरसना भोगी जे प्राणी तेने बीजा शर्करादिक मधुररसनी अबीरजता उपजती नथी, गृधतापणु करे नही ॥ ११ ॥

विपमायतिभिर्नु कि रसै स्फुटमापातसुखैर्विकारिभिः
नवमेऽनवमे रसे मनो यदि मग्न सततावकारिणि ।१२।

अर्थः—जे आगल कडवा विपाक आपे एवा मधुररसे शु सारु ? वली प्रगटपणे राज्यरुद्धि, स्त्री विपयादिक सुख पाम्या अने ते पाछा जता रहे तेथी विक्रिया प्रगटे तो तेवा सुखथी शु सारु ? जो सदाय अविकारी एवो पूर्ण नवमो जे शातरस तेने विपे मनमग्न छे, तो पूर्वे कह्या एवा रसे शु फायदो थाय ? अर्थात् काइज नही ॥ १२ ॥

मधुर रसमाप्य निःपतेद्रसनातो रसलोभिना जल ॥
परिभाव्य विपाकसाध्वस विरताना तु ततो दृशोर्जल १३

अर्थ —एक अचरज जुओ, के रसना लालची जे प्राणी त मधुर रसने जोइने अथवा खाधानी वात साभलीने कहे छे के मारा मुखमा पाणी भराय छे एटले जीभथी पाणी पडे छे, अने सर्वविरति जे मुनिराज ते मासादिक मधुररस खाधे आगल माठा विपाक आवशे, तेना भयने विचारी बेउ आखे पाणी आणे छे, एटले आखमाथी आसु पाडे छे ॥ १३ ॥

इह ये गुणपुष्पपूरिते धृतिपत्नीमुपगुह्य शेरते ॥
विमले सु विकल्पतल्पके क बहिः स्पर्शरता भवतु ते १४

अर्थः—इहां चरणकरणादिक जे गुण ते रूप फुलें पुरी एवी निर्मळ जे सुविकल्प के० मनकुशलतारूप शय्या, तेहने विषे संतोषरूप स्त्रीने आलिंगन देइने सूए छे, तेवा मुनिराज ते बाह्य स्त्रीना स्पर्श विषे रत केम थाय ? ॥ १४ ॥

हृदि निर्वृतिमेव बिभ्रतां न मुदे चंदनलेपनाविधिः ॥
विमलत्वमुपेयुषां सदा सलिलस्नानकलापि निष्फला १५

अर्थः—हृदयने विषे निवृत्ति सुखने धरनारा जे प्राणी तेने बावनाचंदनना लेपनी विधि ते हर्ष आपती नथी, तथा सदैव निर्मलभावने धरता जे प्राणी तेने जलनी स्नानविधि ते निष्फल जाणवी ॥ १४ ॥

गणयंति जनुः स्वमर्थवत्सुरतोल्लाससुखेन भोगिनः ॥
मदनाहिविषोग्रमूर्छनामयतुल्यं तु तदेव योगिनः॥१६॥

अर्थ—भोगी प्राणी स्त्री साथे विलास संभोगना सुखे करी जन्मारो सफल माने छे, अने योगीश्वर पुरुष तो मदन जे काम तेनी चेष्टाने सर्पना विषनी आकरी मूर्च्छातुल्य माने छे ॥ १६

तदिमे विषयाः किलैहिका न मुदे केऽपि विरक्तचेतसां ॥
परलोकसुखेऽपि निःस्पृहाः परमानंदरसालसा अमी ॥१७

अर्थ—वैरागी जीवने आ भवमां क्षणिक सुख आपे एवा जे विषय ते निश्चयथकी कांइ पण हर्षकारी नथी, केमके त्यागी प्राणी तो परलोक जे स्वर्गादिकनां सुख तेने विषे पण निःस्पृही छे; ते तो मात्र मोक्षसुखनाज अभिलाषी छे ॥ १७ ॥

मदमोहविषादमत्सरज्वरबाधाविधुरा॰ सुरा अपि ॥
विषमिश्रितपायसान्नवत् सुखमेतेष्वापि नैति रम्यता ॥ १८

अर्थ—गर्व, अज्ञान, विषाद अने मत्सर ते रूपभावनी पीडाये रहित एवा जे देवता तेना जे विषयादिक सुख ते पण विष-मिश्रित दूधपाकना भोजननी परे मनोहरकारी नथी ॥ १८ ॥

रमणीविरहेण वह्निना बहुबाष्पानिलदीपितेन यत् ॥
त्रिदशैर्दिवि दु खमाप्यते घटते तत्र कथ सुखास्थिति. १९

अर्थ—केमके स्त्रीना वियोगरूप अग्नि ते आसुरूप वायरे करी देदीप्यमान थयो एवो जे शोकरूप अग्नि प्रगट्यो, तेथी स्वर्गना देवताने पण पीडा थाय छे, तेवा ते स्वर्गमा देवताने पण सुखनी स्थिति छे, एहवु केम कहेवाय ? ॥ १९ ॥

प्रथमानविमानसपदा च्यवनस्यापि दिवो विचिन्तनात् ॥
हृदय न हि यद्विदीर्यते घुसदा तत्कुलिशाणुनिर्मित ॥ २०

अर्थ —जेने विमान सपदा मोटी छे एवा देवताने पण च्यवन वेलाये जे दु ख प्रगटे छे, ते दु खथी देवतानु हृदय मात्र फाटतु नथी, तेनु कारण जे तेमनु हृदय ते वज्रना परमाणुये करी उत्पन्न थयेलु छे, तेथी घणु कठण छे, माटेज फाटतु नथी ॥ २० ॥

विषयेषु रति. शिवार्थिनो न गतिष्वास्ति किलाग्नि-
लास्वपि ॥
घननदनचदनार्थिनो गिरिभूमिष्वपरद्रुमेष्विव ॥२१॥

अर्थः—जेम निबिड नंदनवनना चंदनना विलेपनवालाने पर्वतनी भूमियें अथवा बीजा कोइपण वृक्षे रति थती नथी, तेम मोक्षार्थीने विषय उपर प्रीति थती नथी, तेमज मनुष्य तथा स्वर्गप्रमुख समग्र गतिने विषे पण प्रीति थती नथी ॥ २१ ॥

इति शुद्धमतिः स्थिरीकृताऽपरवैराग्यरसस्य योगिनः॥
स्वगुणेषु वितृष्णतावहं परवैराग्यमपि प्रवर्त्तते ॥२२॥

अर्थः—एम विचारी शुद्धबुद्धि स्थिर करीने जेने बीजा वैराग्यनो गुण प्रगट्यो छे तेवा योगीने आत्मगुणने वधारं एवी तृष्णाना आगमरूप परम वैराग्य प्रगट थाय ॥ २२ ॥

विपुलर्द्धिपुलाकचारणप्रबलाशीविषमुख्यलब्धयः ॥
न मदाय विरक्तचेतसामनुषंगोपनताः पलालवत् ॥ २३

अर्थः—विपुललब्धि, पुलाकलब्धि, चारणलब्धि, मोटीआशीविषयलब्धि, प्रमुख अनेक लब्धिओ जो पण उपजे, तोपण ते वैरागी मुनिने अहंकार भणी थाय नहीं, मात्र एक मुक्तिसुख विना बीजां सुखने पलाल पुंजरूप ते माने छे ॥२३॥

कलितातिशयोऽपि कोऽपि नो
विबुधानां मदकृद्गुणव्रजः ॥
अधिकं न विदन्त्यमी यतो
निजभावे समुदंचति स्वतः ॥ २४ ॥

अर्थः—पंडित ते कोइ मोटा अतिशयादि गुणना समूहे सहित होय, तोपण मद करे नहीं, तेथी कांइ अधिकता पण न गणे, मात्र पोताना शुद्ध स्वभावमांज आनंद पामे ॥ २४ ॥

हृदये न शिवेऽपि लुब्धता मदनुष्ठानमसंगमंगति ।
पुरुषस्य दशेयमिष्यते सहजानंदतरंगसंगता ॥ २५ ॥

अर्थः—पोताना हृदयने विषे मुक्तिसुख उपर पण लुब्धता नथी, एक मद्अनुष्ठानरूप सहजानंदना कल्लोलने मलती असंगानुष्ठानरूप पुरुषनी जे दशा तेने वांछे छे, पामे छे ॥२५॥

इति यस्य महामतिर्भवेदिह वैराग्यविलासभृन्मनः ॥
उपयाति वरीतुमुच्चकैस्तमुदारप्रकृतिं यशःश्रियः ॥२६॥

अर्थ —वैराग्यविलासी पुरुषने एवी बुद्धि उपजे छे ने तेना उदार प्रकृतिवालाने यशरूप जे लक्ष्मी ते हर्ष धरीने वरवाने इच्छे छे ॥ २६ ॥ इतिश्री वैराग्य विषयाधिकार समाप्त

इति द्वितीय प्रबंध समाप्त ॥



ममतात्यागाधिकारः

निर्ममस्यैव वैराग्यं स्थिरत्वमवगाहते ॥
परित्यजेत्ततः प्राज्ञो ममतामत्यनर्थदां ॥ १ ॥

विषयैः किं परित्यक्तैर्जागर्ति ममता यदि ॥
त्यागात्कंचुकमात्रस्य भुजंगो नहि निर्विषः ॥ २ ॥

अर्थः—ममता रहित प्राणीनेज वैराग्य स्थिरपणे रहे छे. ते माटे बुद्धिवंत प्राणिये अनर्थदायक जे ममता तेने तजवी ॥ १ ॥ जेम सर्प कांचली काढवाथी विष रहित थतो नथी, तेम जेने ममता जागे छे ते विषयनो त्याग करे तो पण त्यागी थतो नथी ॥ २ ॥

कष्टेन हि गुणग्रामं प्रगुणीकुरुते मुनिः ॥
ममंताराक्षसी सर्वं भक्षयत्येकहेलया ॥ ३ ॥

जंतुकांतं पशूकृत्य द्रागविद्यौषधीबलात् ॥
उपायैर्बहुभिः पत्नी ममता क्रीडयत्यहो ॥ ४ ॥

अर्थ—जे गुणसमूहने मुनिराज घणा कष्टे करी प्रगट करे छे, तेने ममतारूप राक्षसी एक कोलीये खाइ जाय छे ॥ ३ ॥ केवुं आश्चर्य छे के स्त्रियाराज्यनी पेरे ममतारूप स्त्री ते जीवरूप भर्त्तारने पशु जे मर्कट ते रूपे करीने शीघ्रपणे अज्ञानरूप जडी-बुटीना बलथकी घणे प्रकारे नचावीने रमाडे छे ॥ ४ ॥

एकः परभवे याति जायते चैक एव हि ॥
ममतोद्रेकतः सर्वं संबंधं कलयत्यथ ॥ ५ ॥

व्याप्नोति महतीं भूमिं वटबीजाद्यथा वटः ॥
तथैकममताबीजात्प्रपंचस्यापि कल्पना ॥६॥

अर्थ—एकलो चेतन परभवे जाय छे अने एकलोज आ भवे आवे छे, पण ममताने वश थइने रत्नादेवीनी परे मिथ्या सगपण न्यात जात वगेरेनी कल्पना करे छे ॥ ५ ॥ जेम एक वडना बीजथकी घणी धरतीये वड व्यापीने विस्तार पामे छे, तेम एक ममताना बीज थकी घणा प्रपंचनी कल्पना उठे छे ॥ ६ ॥

माता पिता मे भ्राता मे भगिनी वल्लभा च मे ॥
पुत्राः सुता मे मित्राणि ज्ञातयः संस्तुताश्च मे ॥७॥
इत्येवं ममताव्याधिं वर्द्धमानं प्रतिक्षणं ॥
जनः शक्नोति नोच्छेत्तुं विना ज्ञानमहौषधं ॥ ८ ॥

अर्थ—माता, पिता, भाई, बेन, स्त्री ए सर्व माहरा छे, पुत्र, पुत्री, मित्र ए पण माहरा छे, न्याति परिचित ए माहरा छे ॥ ७ ॥ ए प्रकारे ममतारूप रोग दिवसे दिवसे वधतो जाय छे, तेने मटाडवाने कोइ पण ज्ञानरूप ओषध विना समर्थ थातो नथी ॥ ८ ॥

ममत्वेनैव निःशंकमारंभादौ प्रवर्त्तते ॥
कालाकालसमुत्थायी धनलोभेन धावति ॥ ९ ॥
स्वयं येषां च पोषाय खिद्यते ममतावशः ॥
इहामुत्र च ते न स्युस्त्राणाय शरणाय वा ॥१०॥

अर्थ—जेम वेला कवेला उठीने विप्र वे मामा सोनु लेवाने गयो, तेनी परे एक ममताये करीने निःशंकपणे आरंभमा

प्रवर्त्ते छे; ममणशेठ परे धनने लोभे करी दोडे छे ॥ ९ ॥ परभवमां इहांनुं कुटुंब शरण आधार नथी, तो पण कुटुंबने पोषवानी ममतामां खेद पामे छे ॥ १० ॥

ममत्वेन बहून् लोकान् पुष्णात्येकोऽर्जितैर्धनैः ॥
सोढा नरकदुःखानां तीव्राणामेक एव तु ॥ ११ ॥

ममतान्धो हि यन्नास्ति तत्पश्यति न पश्यति ॥
जात्यंधस्तु यदस्त्येतद्भेद इत्यनयोर्महान् ॥ १२ ॥

अर्थ—पोते एकलो धन मेलवीने ममत्वे करीने घणा लोकने पुष्टि करे छे, पण परभवमां आकरां नारकीनां दुःख आवशे तेवारे एकलोज भोगवशे ॥ ११ ॥ जीव आंधलो नथी, पण ममताये करी नास्तिक पदार्थने खरा करी माने छे, तेहने मिथ्यादृष्टि अंध कहीये, केमके तेनी चर्मचक्षु छे, तो पण ते चक्षुए करी आत्मिक अर्थने नथी देखतो, माटे एने देखतो पण आंधलोज जाणवो; अने जे जातिअंध छे पण ज्ञानीने संयोगे आत्मार्थने जुए छे, माटे ए बे प्रकारना अंधमां घणो अंतर छे ॥ १२ ॥

प्राणाननित्यताध्यानात् प्रेमभूम्ना ततोऽधिकां ॥
प्राणापहां प्रियां मत्वा मोदते ममतावशः ॥ १३ ॥

कुंदान्यस्थीनि दशनान् मुखं श्लेष्मगृहं विधुम् ॥
मांसग्रंथी कुचौ कुंभौ हेम्नो वेत्ति ममत्ववान् ॥१४॥

अर्थ—राग दिशाये करीने प्राणने अनित्य माने पण प्राणनी लेनारी जे स्त्री तेने ममताने वश थइ वल्लभ जाणीने हर्ष पामे छे ॥ १३ ॥ ते स्त्रीना दांत यद्यपि हाडकानां छे, तो पण

तेने कुदफुलनी कलिना जेवा जाणे, अने श्लेष्म जे लाळ तेणे करी भरेलुं मुख होय तेने चद्रतुल्य वखाणे छे, अने स्तन मासना गठा छे तेने सोनाना कलश समान लेखे छे, ए वातो सर्व ममत्वने लीधे थाय छे ॥ १४ ॥

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् क्रियायामन्यदेव च ॥
यस्यास्तामपि लोलाक्षीं साध्वीं वेत्ति ममत्ववान् ॥१५॥
या रोपयत्यकार्येऽपि रागिणं प्राणसशये ॥
दुर्वृत्ता स्त्री ममत्वाधस्ता मुग्धामेव मन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—वली ते स्त्री केवी छे ? जेना मनमा कांइक होय अने वचनमा वली बीजो कोटक होय, अने भोग तो वली कोइ बीजानी साथज कर एवी छे, तेने वैरागी पुरुष कहे छे जे ए स्त्रीथकी सर्व सर्युं एटले स्त्रीने सर्वथा जुदी गणे छे, पण जे प्राणी ममतावत छे, ते तो एवी चचल नेत्रवाली स्त्रीने सती माने छे ॥ ५ ॥ स्त्री पोताना रागी धणीने मरण थाय एवा काम भलावे, अने ते पण ममत्वे आवलो पुरुष ते कार्य उठाट-पीटाइने कर. वली स्त्री व्यभिचारिणी होय तो पण तेने भोली करी माने, ते उपर एक दृष्टात छे. " लाली कहती नापडी असला सेलमसेल, ज्याथी लाव्यो लाकडी त्यानी त्या जइ मेल " ॥ १६ ॥

चर्माच्छादितमासास्थिविण्मूत्रपिठरीष्वपि ॥
वनितासु प्रियत्व यत्तन्ममत्व विजृम्भितं ॥ १७ ॥
लालयन् बालकं तातेत्येवं ब्रूते ममत्ववान् ॥
वेत्ति च श्लेष्मणा पूर्णामगुलीममृताञ्चिता ॥ १८ ॥

अर्थ—ममत्वनी चेष्टा ते धूललीला सरखी छे, तेने वश थइ रह्यो एवो जे पुरुष ते हाड, मांस, विष्टा, मूत्र तथा चर्मथी मढेली हांडली जेवी स्त्री उपर प्रेम करे छे; ममत्व धरे छे ॥ १७ ॥ वली ममत्वे करीने पोताना पुत्रने रमाडे ते वखते तेने बाप बाप करी कहे, अने ते बालकना हाथनी आंगलीयो श्लेष्मथी भरी होय तेने अमृत समान जाणे ॥ १८ ॥

पंकार्द्रमपि निःशंका सुतमंकान्न मुंचति ॥
तदमेध्येऽपि मेध्यत्वं जानात्यंबा ममत्वतः ॥ १९ ॥
मातापित्रादिसंबंधोऽनियतोऽपि ममत्वतः ॥
दृढभूमिभ्रमवतां नैयत्येनावभासते ॥ २० ॥

अर्थ—मोहथकी बालकनी माता पोताना बालकने कादवे भर्यो होय, तो पण निःशंकपणे खोलामांथी मूकती नथी. वली विष्टाये अशुचि होय, तो पण ते बालकने तेनी माता मोहना वशथकी पवित्र गणे छे ॥ १९ ॥ जेम धरती शाश्वत दृढ छे, पण धतुराना फल भक्षण करनार प्राणीने फेर आवे छे, त्यारे तेने धरती फरती जणाय छे तेम मातापितादिकनो संबंध संसारमां अनादिनो शाश्वत छे; पण मोहवडे मुंझाणो प्राणी एम कहे छे जे, माता मरी गइ; हवे केम थशे ? शी रीते चालशे ? ॥ २० ॥

भिन्नाः प्रत्येकमात्मानो विभिन्नाः पुद्गला अपि ॥
शून्यसंसर्ग इत्येवं यः पश्यति स पश्यति ॥ २१ ॥
अहंताममते स्वत्वस्वीयत्वभ्रमहेतुके ॥
भेदज्ञानात्पलायेते रज्जुज्ञानादिवाहिभिः ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम प्रत्येक जीव पण जुदा जुदा छे, अने ते कइ गतिथी आव्या अने कइ गतिये जशे ? तेम पुद्गल पण जुदा छे, तथा शरीरनो संग पण शून्य छे, ए रीते जे देखे छे, तेने देखतो जाणवो ॥ २१ ॥ जेम दोरडानु ज्ञान थये सर्पनी भीति नाश पामे छे, तेम हु जने स्त्री आदिक माहरी छे एवो ममत्व थाय छे, ते भ्रमहेतु छे. ते भ्रम ज्ञाननजरे जोवाथी नाश पामे ॥ २२ ॥

किमेतदिति जिज्ञासा तत्त्वाभिज्ञानसम्मुखी ॥
व्यासंगमेव नोत्थातु दत्ते क ममतास्थितिः ॥२३॥
प्रियार्थिनः प्रियाप्राप्ति विना क्वापि यथा रतिः ॥
न तथा तत्त्वजिज्ञासोस्तत्त्वप्राप्ति विना क्वचित् ॥२४॥

अर्थ—ए संसारनो संबंध शु छे ? एम आत्मतत्त्वने सन्मुख ओळखवानी इच्छा थइ एटले ममता तरत नाश पामे आत्मज्ञानी आगल ममता किहा रहे ? ॥ २३ ॥ जेम कामी पुरुष स्त्रीनो अर्थी थयो, ते स्त्री पाम्या विना कोइ पण ठेकाणे रति न पामे, तेम तत्त्वनो जाण पुरुष पण तत्त्व पाम्या विना क्याय रति न पामे ॥ २४ ॥

अत एव हि जिज्ञासा विष्कंभति ममत्वधीः ॥
विचित्राभिनयाक्रांतः सभ्रांत इव लक्ष्यते ॥२५॥
धृतो योगो न ममता हता न ममताऽहता ॥
न च जिज्ञासितं तत्त्व गतं जन्म निरर्थकम् ॥२६॥
जिज्ञासा च विवेकश्च ममतानाशकावुभौ ॥
अतस्ताभ्यां निगृह्णीयादेनामध्यात्मवैरिणीं ॥२७॥

अर्थ—ए कारण माटे तत्त्व जाणवानी इच्छाए करी ममतानी बुद्धि जेणे दबावी छे ते प्राणी विचित्र प्रकारनी नय-गम, भंग, रचनाये व्याप्यो थको संसारना सर्व पदार्थने संभ्रांत जाणे, एटले इंद्रजालवत् जाणे ॥ २५ ॥ जेणे जोग पण थयो नहीं, अने ममता पण हणी नही, तथा समता पण आदरी नही, वली शास्त्र जाणवानी इच्छा पण न करी, तेनो नरजन्म निष्फल गयो, एम जाणवुं ॥२६॥ एक जाणवानी इच्छा अने बीजो विवेक ए बे ममताने नाश करनारा छे. ते माटे ए बेहुथकी ममतानो निग्रह करवो कारण के ममता ते अध्यात्मनी दुश्मन छे ॥ २७ ॥

इति ममता त्यागाधिकारः अष्टम समाप्तः ॥



समताधिकारः

त्यक्तायां ममतायां च समता प्रथते स्वतः ॥
स्फटिके गलितोपाधौ यथा निर्मलतागुणः ॥ १ ॥

प्रियाप्रियत्वयोर्यार्थैर्व्यवहारस्य कल्पना ॥
निश्चयात्तद् व्युदासेन स्तैमित्य समतोच्यते ॥२॥

अर्थ—हवे समता आगनानो अधिकार कहे छे जेम स्फटिकने विषे उपाधिपणु टले, तेवारे निर्मलतापणु वधे छे, तेम जेवारे ममतानो त्याग थाय तेवारे पोतानी मेलेज समता विस्तरे ॥ १ ॥ संसारने विषे पोताने अर्थे कोइ काम पडे तेवारे एम जाणे जे आ माहरो व्हालो छे अने आ दुश्मन छे, पण ए सर्व व्यवहार कल्पना छे, निश्चयथकी तो ते व्यवहारनाशे करी मध्यस्थपणु पामे, तेवारेज समतावंत कहेवाय ॥ २ ॥

तेष्वेव द्विषतः पुंसस्तेष्वेवार्थेषु रज्यतः ॥
निश्चयात्किंचिदिष्टं वाऽनिष्टं वा नैव विद्यते ॥३॥

एकस्य विषयो यः स्यात्स्वाभिप्रायेण पुष्टितः ॥
अन्यस्य द्वेष्यतामेति स एव मतिभेदतः ॥ ४ ॥

अर्थ—व्यवहार कल्पनावालो तो जेने विषे द्वेष लावे तेनेज विषे पोताना अर्थ मावने करी राजी थाय, पण जो निश्चयथकी विचारे तो एमा काइ इष्ट नथी, तेम अनिष्ट पण नथी ॥३॥ एक विषय जे एक कार्य छे ते एक जणने पोतानी रुचिये पुष्टकारी छे अने बीजाने तथीज द्वेष उपजे छे ए मति–कल्पनाना भेद छे एम जाणवु ॥ ४ ॥

विकल्पकल्पितं तस्माद्द्वयमेतन्न तात्विकं ॥
विकल्पोपरमे तस्य द्वित्वादिवदुपक्षयः ॥ ५ ॥
स्वप्रयोजनसंसिद्धिः स्वायत्ता भासते यदा ॥
बहिरर्थेषु संकल्पसमुत्थानं तदा हतं ॥ ६ ॥

अर्थ—इष्ट अनिष्ट ए विकल्पनी कल्पनाथकी छे, ए बेनेज रागद्वेष जाणवा. पण एमां कांइ तत्त्व नथी. जो मनथी विकल्प जाय तो रागद्वेष ए बेहु दूर थाय ॥ ५ ॥ पोताना प्रयोजननी सिद्धि जेवारें पोताने स्वाधीन थाय, तेवारें बाहेरना अर्थसंकल्पनो उठाव नाश पामे ॥ ६ ॥

लब्धे स्वभावे कंठस्थस्वर्णन्यायाद्भ्रमक्षये ॥
रागद्वेषानुपस्थाने समता स्यादनाहता ॥ ७ ॥
जगज्जीवेषु नो भाति द्वैविध्यं कर्मनिर्मितं ॥
यदा शुद्धनयस्थित्या तदा साम्यमनाहतं ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम कंठ उपर रहेलुं सुवर्ण साक्षात देखाय छे तेम स्वाभाविक गुण पामे थके विभाविक भ्रमणा दूर जाय, तेवारे रागद्वेष ऊठी दूर थाय अने समता विशेषे वधे ॥ ७ ॥ जगतना जीवने विषे कर्मनुं विचित्रपणुं छे, माटे ते विभावपणुं सारुं नरसुं कहेवानी रीत जेवारे न भासे तेवारे शुद्धनयनमां रह्यो थको प्रबल समताने पामे ॥ ८ ॥

स्वगुणेभ्योऽपि कौटस्थ्या देकत्वाध्यवसायतः ॥
आत्मारामं मनो यस्य तस्य साम्यमनुत्तरं ॥ ९ ॥
समतापरिपाकेस्याद्विषय ग्रहशून्यता ॥
यया विशदयोगानां वासीचंदनतुल्यता ॥ १० ॥

अर्थ—पोताना गुणथकी पोतानो आत्मा साखी करीने एक शुद्ध अध्यवसायथकी आत्माने विषे जेनु मन रमे छे, तेनी समता अनुत्तर कहिये ॥ ९ ॥ एम जेने पाकी समता थइ तेनु विषयरूप घर सत्रु थयु, एम जे मुनिने निर्मल समता योग प्रगटयो, ते मुनिने कुठारे करी कोइ छेदे अथवा चंदने करी कोइ पूजे ते तेहु तुल्य छे ॥ १० ॥

किं स्तुमः समतां साधो या स्वार्थप्रगुणीकृता ॥
वैराणि नित्यवैराणामपि हन्त्युपतस्थुषाम् ॥ ११ ॥
किं दानेन तपोभिर्वा यमैश्च नियमैश्च किं ॥
एकैव समता सेव्या तरीः संसारवारिधौ ॥ १२ ॥

अर्थ—एवा साधुनी समताना शु वखाण करियें ? जेणे पोताना आत्मानी सिद्धि करवाने समता आदरी, एहवा मुनि ते समतारूप घरमा रहेता थका आ भवना तथा आगला कट्ठ भव ते सर्व भवना वैरभावने टाली नाखे छे, जेम नित्य पासे थमता थका मृतग अने माजारी के० बिलाडी तेमना वैर पण शमी जाय तेहनी पेरे जाणवु ॥११॥ कपटी वेश धारण करवाथी शु थाय ? तथा घणी तपस्याय पण शु थाय ? वली मौन धारी अतीतनी पेरे इंद्रियदमन कीधे शु थाय ? अने व्रत धारणकरे पण शु थाय ? मात्र एक समता जे संसाररूप समुद्र तरवामा नौका जेवी छे, तेनु-ज सेवन करवु तेहि ज श्रेष्ठ छे ॥ १२ ॥

दूरे स्वर्गसुखं मुक्तिपदवी सा दवीयसी ॥
मनःसंनिहितं दृष्टं स्पष्टं तु समतासुखं ॥ १३ ॥
दृशोः स्मरविषं शुष्येत् क्रोधतापः क्षयं व्रजेत् ॥
औद्धत्यमलनाशः स्यात्समतामृतमज्जनात् ॥ १४ ॥

अर्थ—देवलोकनां सुख तो दूर छे. वली मोक्ष पदवी ते तो मोटी छे, अने भवस्थितिने हाथ छे, तेवाग मननी पासे प्रगटपणे देखीयें एवी समतानु सुख ते शुं खोटुं छे ? ॥ १३ ॥ समतारूप अमृतकुंडमां स्नान करवाना प्रभावथी आंखयकी कंदर्परूप दर्पनुं विप सोपाइ जाय छे; क्रोधरूप ताप नाश पामे छे; उद्धताइ रूपी मेल ते पण दूर थाय छे. ॥ १४ ॥

जरामरणदावाग्निज्वलिते भवकानने ॥
सुखाय समतैकैव पीयुषघनवृष्टिवत् ॥ १५ ॥
आश्रित्य समतामेका निर्वृता भरतादयः ॥
न हि कष्ट मनुष्ठानमभूत्तेषां तु किंचन ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म, जरा, मरणरूप दावानलें करी बलतुं एवुं संसाररूप वन तेमां समतानु जे सुख छे ते अमृतना वरसाद सरखुं जाणवुं ॥ १५ ॥ चित्रशाली मध्ये एकज समताने अवलंबता भरतराजा आदि आठ पाट केवल पामीने सिद्ध थया पण तेमने कष्टक्रिया कांइ पण करवी पडी नही, एहवी ए समता छे ॥ १६ ॥

अर्गला नरकद्वारे मोक्षमार्गस्य दीपिका ॥
समता गुणरत्नानां संग्रहे रोहणावनिः ॥ १७ ॥
मोहाच्छादितनेत्राणामात्मरूपमपश्यतां ॥
दिव्यांजनशलाकेव समता दोषनाशकृत् ॥ १८ ॥

अर्थ—वली समता ते नरकने बारणे भोगल जेवी छे, अने मोक्षमार्गनी दीवि छे. वली गुणरूप रत्ननो संग्रह करवाने रोहणाचल पर्वतनी भूमिका सरिखी छे ॥ १७ ॥ जेनां नेत्र

मोहनडे ढकाया छे अने जे पोताना स्वरूपने जोइ शकता नथी, तेने दिव्य अंजन आजवाने समता ते शलाकारूप छे, अने अज्ञाननां पडलने छेदनारी छे ॥ १८ ॥

क्षणं चेत, समाकृष्य समता यदि सेव्यते ॥
स्यात्तदा सुखमप्यस्य यद्वक्तु नैव पार्यते ॥ १९ ॥

कुमारी न यथा वेत्ति सुखं दयितभोगजं ॥
न जानाति तथा लोको योगिनां समतासुखं ॥ २० ॥

अर्थ—जे प्राणी एक क्षणमात्र मनने खेंचीने समताने सेवे, ते प्राणीने एहवु सुख प्रगटे, जेहनो मुखे कहता थका पार आवे नही ॥ १९ ॥ जेम कुमारिका भरतारना सुखने जाणती नथी तेम लोको पण मुनिराजनी समताना सुखने जाणता नथी ॥ २० ॥

नतिस्तुत्यादिकाशंसाशरस्तीव्रः स्वमर्मभित् ॥
समतावर्मगुप्तानां नार्त्तिकृत्सोऽपि जायते ॥ २१ ॥

प्रचितान्यपि कर्म्माणि जन्मनां कोटिकोटिभिः ॥
तमांसीव प्रभा भानोः क्षिणोति समता क्षणात् ॥२२॥

अर्थ—जेणे समतानु बस्तर पहर्युं छे तेने नमस्कार, स्तुति, पूजा, लाभ, परद्रव्यनी इच्छादिरूप जे पोतानां मर्मने लागनारा एहवा जे तीक्ष्ण बाणो ते पीडा करी शकता नथी ॥ २१ ॥ जेम सूर्य किरणना प्रकाशथी अंधकार नाश पामे छे तेम कोटि कोटि भवना प्राणीना निबिडसंचित जे पापकर्म छे ते समतावडे एक क्षणमां नाश पामे छे. ॥ २२ ॥

अन्यलिंगादिसिद्धानामाधारः समतैव हि ॥
रत्नत्रयफलप्राप्तेर्ययास्याद्भावजैनता ॥ २३ ॥
ज्ञानसाफल्यमेषैव नयस्थानावतारिणः ॥
चंदनं वह्निनेव स्यात् कुग्रहेण तु भस्म तत् ॥ २४ ॥

अर्थ—जे अन्यलिंगी सिद्ध थया ते पण द्रव्यथी मोक्षफल साधता थका रत्नत्रयना फलनी प्राप्तिवडे भावथी जैनपणुं पाम्याः माटे ते अन्यलिंगीओने पण समता ते एक आधारभूत हती ॥ २३ ॥ जो नयस्थानके उतारी जोइये तो, ए समताज ज्ञाननुं फल छे; ने जेम ज्ञानवडे भवताप शमे छे. तेम समतारूप चंदने करी भवताप शमी जाय छे; पण कुग्रह के० कदाग्रह अज्ञानरूप अग्निवडे तो समतारूप चंदन वली भस्म थाय छे ॥२४॥

चारित्रपुरुषप्राणाः समताख्या गता यदि ॥
जनानुधावनावेशस्तदा तन्मरणोत्सवः ॥ २५ ॥
संत्यज्य समतामेकां स्याद्यत्कष्टमनुष्ठितं ॥
तदीप्सितकरं नैव बीजमुप्तमिवोषरे ॥ २६ ॥

अर्थ—आ संसाररूप गामने विषे सर्व लोक क्रयविक्रय करता दोडादोड करे छे, ते शुं छे? ते कहे छे, के जेवारे चारित्ररूपी पुरुष मरण पाम्यो, तेवारें समतारूपी प्राण पण जता रह्या. पछी तेना मृत कार्यनो उत्सव, पाथरणा, स्नानसूतक वगेरे करवाने जाणे ए लोको दोडादोड करे छे एम समजवुं ॥ २५ ॥ जेम उखर क्षेत्रमां बीज वाव्युं ते कष्टे करीने पण फले नही, तेम एक समताने छोडी जे प्राणी कष्ट क्रिया करे छे तेने रूडुं फल आगल मलतुं नथी ॥ २६ ॥

उपायः समतैवेका मुक्तेरन्यः क्रियाभरः ॥
तत्तत्पुरुषभेदेन तस्या एव प्रसिद्धये ॥ २७ ॥
दिङ्मात्रदर्शने शास्त्रव्यापारः स्यान्न दूरगः ॥
अस्याः स्वानुभवः पारं सामर्थ्याख्योऽवगाहते ॥२८॥

अर्थ—मुक्तिनो उपाय तो एक समता छे बाकी क्रिया कष्ट सर्व आडंबर छे, ते पुरुषने भेदेकरी एटले तप, जप सर्व समतानी प्रसिद्धि छे पुरुष भेद ते गृहस्थ अने मुनिने शीले छे, एटले क्रिया करवामा गृहस्थ तथा मुनिनो व्यवहार जुदो छे, पण ते बेउनी क्रिया समताये बखाणवी एवी शास्त्रनी आज्ञा छे ॥ २७ ॥ शास्त्रना उपदेश तो जेम कोइ आगलीनडे मार्ग बतावे, पण पोते काइ साथे आवे नही, तेम दिशिमात्रने बतावे एवा छे, पण जे शास्त्र साभलीने पोताना अनुभवमा लावी पोताने सामर्थ्ये करी पथ अवगाहे, तेज भवाटवीनो पार पामे ॥ २८ ॥

परस्मात् परमेषा यन्निगूढं तत्त्वमात्मनः ॥
तदध्यात्मप्रसादेन कार्योऽस्यामेव निर्भरः ॥ २९ ॥

अर्थ—परपुद्‌लादिक वस्तु ते आत्मानी नथी, अने देहमाथी आत्मा परम पवित्र छे, आत्माने विषे आत्मतत्त्व गुप्त छे, माटे अध्यात्मने प्रसादे करी समताने विषे हर्ष उल्लास करवो ॥ २९ ॥

॥ इति समताधिकारः नवमः समाप्तः ॥



सदनुष्ठानाधिकार:

परिशुद्धमनुष्ठानं जायते समतान्वयात ॥
कतकक्षोदसंक्रांतेः कलुषं सलिलं यथा ॥ १ ॥
विषं गरलाऽन्यनुष्ठानं तद्धेतुरमृतं परं ॥
गुरुसेवाद्यनुष्ठानमिति पंचविधं जगुः ॥ २ ॥

अर्थः—जेम कतकफलना चूर्णने योगे डोहळुं पाणी निर्मल थाय तेम समताना योगथी शुद्ध अनुष्ठान प्रगट थाय छे ॥ १ ॥ विषानुष्ठान, गरलानुष्ठान, अन्योन्यानुष्ठान, तद्धेतुअनुष्ठान ने अमृतानुष्टान ए पांच अनुष्ठान गुरुसेवादिक करणीमां कह्यां छे ॥२॥

आहारोपधिपूजर्द्धिप्राभृत्याशंसया कृतं ॥
शीघ्रं सच्चित्तहन्तृत्वाद्विषानुष्ठानमुच्यते ॥ ३ ॥
स्थावरं जंगमं चापि तत्क्षणं भक्षितं विषं ॥
यथा हंति तथेदं सच्चित्तमैहिकभोगतः ॥ ४ ॥

अर्थः—मिष्टान भोजननी लालचे, वस्त्रनी लालचे, पूजानी लालचे, दोलतनी इच्छाये, जे तप जप कष्टक्रिया करे ते क्रिया पोताना शुभ चित्तनी हणनारी छे. एवुं नाम विषअनुष्ठान जाणवुं ॥ ३ ॥ स्थावर विष ते सोमल जाणवुं अने जंगम विष सर्पादिकनुं जाणवुं; ए बेउमांथी एक विष खाधाथी तरत मरे छे तेम भोगाभिलाषे क्रिया करवी ते शुभ चित्तने हणे छे. ॥ ४ ॥

दिव्यभोगाभिलाषेण कालांतरपरिक्षयात ॥
स्वादृष्टफलसंपूर्त्तेर्गरानुष्ठानमुच्यते ॥ ५ ॥

यथा कुद्रव्यसयोगजनित गरसज्ञितम् ॥
विष कालातरे हंति तथेदमपि तत्त्वत: ॥ ६ ॥

अर्थ·—जे देवेंद्रादिकना सुख परभवे पामवानी इच्छा करीने तपस्या करे ते प्राणी कालातरे नरकगति पामे, कष्ट करीने अणदीठा फलनी वाच्छा करे तेने गरलानुष्ठान कहेवु ॥ ५ ॥ जेम अगडी चूर्ण प्रमुख निर्मल द्रव्यने सयोगे प्रगट थतु विष ते गरल-नामा विष कहियें, ते घणा दिवस कष्ट पमाडी मारे छे, तेम ए पण तत्त्वथी नर्क फलनी प्राप्ति करे छे ॥ ६ ॥

निषेधायानयोरेव विचित्रानर्थदायिनो· ॥
सर्वत्रैवानिदानत्व जिनेंद्रै: प्रतिपादित ॥ ७ ॥
प्रणिधानाद्यभावेन कर्म्मानध्यवसायिन: ॥
सम्मूर्च्छिमप्रवृत्ताभमननुष्ठानमुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ —अनेक प्रकारे महा अनर्थ उपजावे एवा ए पूर्वोक्त बे अनुष्ठाननो निषेध करवाने समस्त तीर्थंकरे नियाणु वर्जवानु कह्यु छे ॥ ७ ॥ प्रणिधानादिकने अभावे कर्म जे क्रिया तेमा अध्यवसाय रहित के० शून्यपणे सम्मूर्च्छिमनी परे शून्य मननी प्रवृत्तिये अथवा देखादेखीये जे क्रिया करे ते अन्योन्यानुष्ठान कहिये ॥ ८ ॥

ओघसज्ञात्र सामान्यज्ञानरूपा निवधन ॥
लोकसज्ञा च निर्दोपसूत्रमार्गानपेक्षिणी ॥ ९ ॥
न लोक नापि सूत्र नो गुरुवाचमपेक्षते ॥
अनध्यवसित किंचित्कुरुते चौघसज्ञया ॥ १० ॥

अर्थ·—इहा सामान्य प्रकार ज्ञानरूपनु कारण न गवेपे, ते ओघसज्ञा प्रवाहरूप कहिये, तेनी निर्दोष सूत्रना मार्गनी अपेक्षा

विना लोक देखादेखीये क्रिया करे अथवा उपयोगशून्य थका जे क्रिया करे ते अन्योन्यानुष्ठान छे ॥ ९ ॥ एटले लोकनी रीत विना अने सूत्रनी तथा गुरुना वचननी अपेक्षा विना उपयोग-शून्यपणे जे कांई करवुं तेनुं नाम ओघसंज्ञा छे ॥ १० ॥

शुद्धस्यान्वेषणे तीर्थोच्छेदः स्यादितिवादिनां ॥
लोकाचारादरश्रद्धा लोकसंज्ञेति गीयते ॥ ११ ॥

शिक्षितादिपदोपेतमप्यावश्यकमुच्यते ॥
द्रव्यतो भावनिर्मुक्तमशुद्धस्य तु का कथा ? ॥१२॥

अर्थः—जो अत्यंत शुद्ध मार्ग खोलवा जइए, तो तीर्थनो उच्छेद थाय, माटे लोकना आचार उपर आदर—श्रद्धा करवी, जेम चाले तेम चालवा दीजे, एहवां वचन बोलता जे लौकिक आचारे प्रवर्त्ते तेनुं नाम लोकसंज्ञा छे ॥ ११ ॥ अने शिक्षा-ग्रहण, आसेवन तथा पदसंपदाये सहित भावशून्यपणे जे आव-श्यक करे ते पण द्रव्य आवश्यक कह्युं छे, तो जे अशुद्धज करे तेनी तो शी वात कहिये ? ॥ १२ ॥

तीर्थोच्छेदभिया हंताविशुद्धस्यैव चादरे ॥
सूत्रक्रियाविलोपः स्याद्गतानुगतिकत्वतः ॥ १३ ॥

धर्मोद्यतेन कर्त्तव्यं कृतं बहुभिरेव चेत् ॥
तदा मिथ्यादृशां धर्मो न त्याज्यः स्यात्कदाचन ॥१४॥

अर्थः—तीर्थनो उच्छेद थाय, तेना भयथी अशुद्ध क्रियाने विषे गाडरीया प्रवाहनी पेरे गतानुगतिकपणे आदर करतां कांइ परमार्थ जाणे नहीं अने ज्ञानक्रियानो नाश करे ॥ १३ ॥ वली धर्मनो अर्थी थइने एम कहेशो के जे घणा जन

करे ते आपणे पण करवु, तो मिथ्यात्वधर्मना घणा सेवनार छे, माटे ते पण कोइ काले छडाशे नहीं एम ठर्युं ॥ १४ ॥

तस्माद्गतानुगत्या यत् क्रियते सूत्रवर्जितं ॥
ओघतो लोकतो वा तदननुष्ठानमेव हि ॥ १५ ॥
अकामनिर्जरागत्वं कायक्लेशादिहोदितम् ॥
सकामनिर्जरा तु स्यात् सोपयोगप्रवृत्तितः ॥ १६ ॥

अर्थः—माटे सूत्रनी शैली रहितपणे गतानुगतिकपणे ओघसज्ञाये अथवा लोकसज्ञाये जे करवु तेने अन्योन्यानुष्ठान कहेवु ॥ १५ ॥ जे अज्ञानपणे कायक्लेश करे तेने अकामनिर्जरा कहेवी, अने उपयोग सहित ज्ञानक्रिया करवी तेनु नाम सकामनिर्जरा छे ॥ १६ ॥

सदनुष्ठानरागेण तद्धेतुर्मार्गगामिना ॥
एतच्च चरमावर्त्ते ऽनाभोगादेर्विना भवेत् ॥ १७ ॥
धर्मयौवनकालोऽयं भवबालदशापरा ॥
अत्र स्यात्सत्क्रियारागोऽन्यत्र चासत्क्रियादरः ॥१८॥

अर्थः—मार्गानुसारीपुरुष शुद्ध क्रियानुष्ठानने रागे करी जे करे ते तद्धेतुअनुष्ठान कहेवाय, ते ज्यारे छेल्लु पुद्गल परावर्त्त रहे, त्यारे जे क्रिया करे ते अनउपयोगे न करे माटे ए अनुष्ठान पण त्यारेज होय ॥ १७ ॥ छेल्ले पुद्गल परावर्त्ते ज्यारे तद्धेतु अनुष्ठान प्रगटे त्यारे ए धर्मनो यौवनकाल प्रगट्यो, अने ससारमा बाल्यदशा हती ते मटी गइ एम जाणवु ए अनुष्ठाने शुद्ध क्रियानो राग उपजे छे, अने पूर्वना त्रण अनुष्ठाने अशुद्ध क्रियानो आदर उपजे छे ॥ १८ ॥

भोगरागाद् यथा यूनो बालक्रीडाऽखिला ह्रिये ॥
धर्म्मयूनस्तथा धर्म्मरागेणासत्क्रियाह्रिये ॥ १९ ॥
चतुर्थं चरमावर्त्ते तस्माद्धर्म्मानुरागतः ॥
अनुष्ठानं विनिर्दिष्टं बीजादिकमसंगतं ॥ २० ॥

अर्थ—जेम युवान् पुरुष भोगनो विलासी थाय छे ने बालक्रीडाथी लजवाय छे, तेम धर्मे यौवनकालवंत पुरुष धर्मना रागे करी अशुद्ध क्रियाथी लजवाय छे ॥ १९ ॥ ते माटे ते धर्मना अनुरागथी चरम पुद्गल परावर्त्तेज तद्धेतु नामे चोथुं अनुष्ठान कह्युं छे, पण बीजादिक जे समकित ते तो असंग के० अप्राप्त छे ॥ २० ॥

बीजं चेह जनान् दृष्ट्वा शुद्धानुष्ठानकारिणः ॥
बहुमानप्रशंसाभ्यां चिकीर्षा शुद्धगोचरा ॥ २१ ॥
तस्या एवानुबंधश्चाकलंकः कीर्त्यतेऽङ्कुरः ॥
तद्धेत्वन्वेषणा चित्रा स्कंधकल्पा च वर्णिता ॥२२॥

अर्थः—इहां समकितरूप बीज तो तेवारे थाय के जेवारे शुद्ध क्रिया करता जीवोने देखीने बहुमान प्रशंसा करे, अने आगमविधिरागे पोते पण ज्ञाने शुद्ध विधिगोचर होय तेवारे समकित उपजे छे ॥ २१ ॥ ए तद्धेतुअनुष्ठाननो अनुबंध जे शुद्ध परिणमन ते कलंक रहित अंकुर कहिये, अने तद्धेतुअनुष्ठाननी खोल करवी ते नाना प्रकारनो स्कंध कहिये ॥ २२ ॥

प्रवृत्तिस्तेषु चित्रा च पत्रादिसदृशी मता ॥
पुष्पं च गुरुयोगादिहेतुसंपत्तिलक्षणं ॥ २३ ॥
भावधर्म्मस्य संपत्तिर्या च सद्देशनादिना ॥
फलं तदत्र विज्ञेयं नियमान्मोक्षसाधकं ॥ २४ ॥

अर्थ—ते मध्ये अनर्त्तवु ते रूप विचित्र प्रकारना पान जाणवा, अने सद्गुरुना योगनडे स्वर्गमा सुखसपदा पामवी ते रूप फल जाणवा ॥ २३ ॥ जेवारे गुरु पासे देशना साभळीने भावधर्मरूप सपदा पामे ते फल कहिये, ते फल मोक्ष-साधनरूप छे एम जाणवु ॥ २४ ॥

सहजो भावधर्मो हि शुद्धश्चदनगधवत् ॥
एतद्गर्भमनुष्ठानममृत सप्रचक्ष्यते ॥ २५ ॥
जैनीमाज्ञा पुरस्कृत्य प्रवृत्त चित्तशुद्धित ॥
सवेगगर्भमत्यतममृत तद्विदो विदु. ॥ २६ ॥

अर्थ—सहज स्वाभाविक जे भावधर्म छे ते तो चदननी सुगध समान छे ते सहित जे अनुष्ठान क्रिया करवी तेनु नाम अमृतानुष्ठान छे ॥ २५ ॥ प्रभुनी आज्ञानडे मनशुद्धिये प्रवर्त्त अने अत्यतपणे सवेगगुणे सहित होय तेने गणधरादिक अमृतानुष्ठान कहे छे ॥ २६ ॥

शास्त्रार्थालोचन सम्यक् प्रणिधान च कर्म्मणि ॥
कालाद्यगाविपर्यासोऽमृतानुष्ठानलक्षण ॥ २७ ॥
द्वय हि सदनुष्ठान त्रयमत्रासदेव च ॥
तत्रापि चरम श्रेष्ठ मोहोग्रविषनाशनात् ॥ २८ ॥

अर्थ—भली रीते शास्त्रना अर्थ विचारे, क्रिया मध्ये वीर्य उल्लास धरे, पचमकालना दोष न गणे, अथवा जे काले जे उचित क्रिया होय ते क्रिया करे, ए लक्षण अमृतानुष्ठानना जाणवा ॥ २७ ॥ ए पाच अनुष्ठानमा छेल्ला बे अनुष्ठान ए रुडा छे अने प्रथमना त्रण अनुष्ठान ते रुडा नथी, तेमा पण सर्वथा

श्रेष्ठ तो अमृतानुष्ठान जाणवुं; केमके मोह के० अज्ञान तेनुं आकरुं जे विष ते ए अनुष्ठानवडे नाश पामे छे ॥ २८ ॥

आदरः करणे प्रीतिरविघ्नसंपदागमः ॥
जिज्ञासातज्ज्ञसेवा च सदनुष्ठानलक्षणं ॥ २९ ॥
भेदैर्भिन्नं भवेदिच्छाप्रवृत्तिस्थिरसिद्धिभिः ॥
चतुर्विधमिदं मोक्षयोजनाद्योगसंज्ञितं ॥ ३० ॥

अर्थ—क्रियाये आदर करतां राग धरे, तथा आगमने अति मोटी संपदानुं माने, वली जाणवानी इच्छा करे, जाणनो संग करे, ए शुद्ध क्रियानां लक्षण छे ॥ २९ ॥ तेना पण जुदा जुदा भेद छे. १ इच्छा, २ प्रवृत्ति, ३ स्थिरता, ४ सिद्धियोग. ए चार योग मोक्षने जोडे (मोक्ष आपे) माटे योग कहिये ॥३०॥

इच्छा तद्वत्कथा प्रीतिर्युक्ता विपरिणामिनी ॥
प्रवृत्तिः पालनं सम्यक् सर्वत्रोपसमान्वितं ॥ ३१ ॥
सत्क्षयोपशमोत्कर्षादतिचारादिचिंतया ॥
रहितं तु स्थिरं सिद्धिः परेषामर्थसाधकं ॥ ३२ ॥

अर्थ—जे गुरुनो उपदेश सांभली गुरु उपर अने कथा उपर परम प्रीति धरे—गुण परिणमे तेने पहेलो इच्छायोग कहियें. पछी गुरुना कह्या प्रमाणे समताये सहित व्रत पाले, क्रियाये सहित प्रवर्त्ते, ते बीजो प्रवृत्तियोग कहिये ॥ ३१ ॥ जे रुडा क्षयोपशमना उत्कर्षथी अतिचार न लगाडे अने मनस्थिरपणे प्रवर्त्ते ए त्रीजो स्थिरयोग कह्यो, अने निरतिचार शुद्ध क्रियामां बीजा जीवोने भेलवीने तेनो पण अर्थ सधावे ते चोथो सिद्धियोग जाणवो ॥ ३२ ॥

भेदा इमे विचित्राः स्यु. क्षयोपशमभेदतः ॥
श्रद्धाप्रीत्यादियोगेन भव्यानां मार्गगामिनाम् ॥३३

अनुकंपा च निर्वेदः संवेगः प्रशमस्तथा ॥
एतेषामनुभावाः स्युरिच्छादीनां यथाक्रमम् ॥३४॥

अर्थः—ए इच्छादिक योगना वली विचित्र भेद छे, ते क्षयोपशम भावना भेदथी छे ते श्रद्धा प्रीति प्रमुख योगे करीने मुक्तिमार्ग पामनार भव्यजीवने होय ॥ ३३ ॥ १ करुणा, २ वैराग्य, ३ संवेग, ४ उपशम ए अनुक्रमे इच्छादिकना चार प्रकार छे ॥ ३४ ॥

कायोत्सर्गादिसूत्राणां श्रद्धामेधादिभावतः ॥
इच्छादियोगसाफल्यं देशसर्वव्रतस्पृशाम् ॥ ३५ ॥
गुडखंडादिमाधुर्यभेदवत् पुरुषांतरे ॥
भेदेऽपीच्छादिभावानां दोषो नार्थान्वयादिह॥३६॥

अर्थ—कायोत्सर्गादिक आवश्यक सूत्रनु श्रद्धापणु जो भावथी थाय तो श्रावक तथा साधुने इच्छादिक योग सफल थाय ॥३५॥ कोइने गोल मीठो लागे छे अने कोइने खांड मीठी लागे छे ए रीते मीठाशना स्वादमा जेम भिन्नता छे तेम ज पुरुषोनी प्रकृति भिन्न भिन्न, माटे इच्छादिक योगना जे भाव तेना पण भेद छे, तो पण तमां काइ दूषण नथी, केमके जेम शर्करादिकनी मीठाश जुदी जुदी छे तो पण मीठाशनो अर्थ एकज छे, मिठाश गम तेनी होय, पण तेथी मीठाशनो अर्थ सर छे, तेमज इच्छादिक योगना भेद छे, तो पण ते थकी अर्थ जे फल ते एकज मले छे, माटे दूषण नथी एम जाणवु ॥ ३६ ॥

येषां नेच्छादिलेशोऽपि तेषां त्वेतत्समर्पणे ॥
स्फुटो महामृषावाद इत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ३७ ॥
उन्मार्गोत्थापनं बाढमसमंजसकारणे ॥
भावनीयमिदं तत्त्वं जानानैर्योगविंशिकाम् ॥३८॥
त्रिधा तत्सदनुष्ठानमादेयं शुद्धचेतसा ॥
ज्ञात्वा समयसद्भावं लोकसंज्ञां विहाय च ॥ ३९ ॥

अर्थ—पण जेने शुद्ध अनुष्ठानने विषे इच्छादि योगनो लेश पण नथी, तेवा अयोग्य नरने जे इच्छादि योग आपे तेने प्रगट मृषावादनुं पाप लागे छे, एवुं पूर्वाचार्य कहे छे ॥ ३७ ॥ जे अति असमंजस कारण छे, तेने विषे उन्मार्ग स्थापन थाय छे; माटे योगविंशिका ग्रंथना जाण पुरुषे ए तत्त्व चिंतवीने सद्-अनुष्ठान करवुं, एटले जेम तेम करीये तो उन्मार्गनुं स्थापन थइ जाय ॥ ३८ ॥ माटे शुद्ध चेतनाये, मन–वचन–कायाये करीने सदनुष्ठान सेववां, सिद्धांतना सद्भाव जाणी लोकसंज्ञा तजीने शुद्ध क्रिया करवी । ३९ ॥

इति सदनुष्ठानाधिकारः दशमः ॥



मनशुद्धिअधिकार.

उचितमाचरण शुभमिच्छता
प्रथमतो मनस. खलु शोधन ॥
गदवतामह्यकृते मलशोधने
कमुपयोगमुपैतु रसायन ॥ १ ॥

अर्थ—अध्यात्मनी शुद्धि करवा माटे प्रथमथी उचितपणे शुभ आचरणनी इच्छा करवी ने मननी शुद्धता करवी जेम रोगग्रस्त प्राणी मल–शोधन करवाने रेच लीधा विना रसायन खाय तो, तेथी तेने काइ गुण थाय नही, केमके मल जाय तेवार पछी रसायण खाय तो गुण करे, तेम प्रथम मनशुद्धि थइ होय तोन अध्यात्मनी शुद्धि थाय ॥ १ ॥

परजने प्रसभ किमु रज्यते
द्विपति वा स्वमनो यदि निर्मल ॥
विरहिणामरतेर्जगतो रते–
रपि च का विकृतिर्विमले विधौ ॥ २ ॥

अर्थ—हे चेतन ! जो तारु मन निर्मल छे तो लोक ताहरा उपर राग धरशे अथवा द्वेष करशे ते थकी ताहरे शुं बगाड थवानो छे ? जेम चद्रमा निर्मल छे, पण तेना उदयथी विरही जीवो अथवा चोर लोकोने अरति उपजे छे, अने जगतना बीजा जीवोने तेथी आनद थाय छे, पण तेथी चंद्रमाने गुण अथवा अवगुण काइन थता नथी ॥ २ ॥

स्वचितमाकलयन्ननुपस्थित
स्वमनसंन हि शोचति मानवः ॥

उपनते स्मयमानमुखः पुन-
भवति तत्र परस्य किमुच्यतां ॥ ३ ॥

अर्थ—रुडी वस्तु मनमां चिंतवी मनोरथ कीधो, अने ते मनोरथ निपनो नहीं, तेवारे ते प्राणी पोताना मनमां शोक धरे छे, अने जेवारे ते धारेली वस्तु मले छे तेवारे खुशी थाय छे; ए हर्ष-शोकनो कर्त्ता आत्मा ने एक मनज छे; तो बीजाये म्हारुं सारुं-नरसुं कर्युं एम शुं कहेवुं ? ॥ ३ ॥

चरणयोगघटान्प्रविलोठयन्
शमरसं सकलं विकिरत्यधः ॥
चपल एष मनः कपिरुच्चकै
रसवणिग् विदधातु मुनिस्तु किं ॥ ४ ॥

अर्थ—मन मांकडा जेवुं छे केमके ते चारित्रना योग-रूप घृतना घडाने ऊंधा वाले छे, तथा समतारूपी अमृतरसना घडाने ढोली नाखे छे; एवुं ए चपल मन ते खरेखरुं वांदरुं छे. तेनी आगल मुनिरूप रस वाणिज्यनो करनार वाणीयो विचारो शुं करे ? ४ ॥

सततकुट्टितसंयमभूतलो-
त्थितरजोनिकरैः प्रथयंस्तमः ॥
अतिदृढैश्च मनस्तुरगोगुणै-
रपि नियंत्रित एष न तिष्टति ॥ ५ ॥

अर्थ—वली मुनिये चारित्रे करी कर्मरूपी धूलने दाबी नाखी हती, पण मनरूपी घोडाये नित्य कुदी कुदीने संयमरूप भूमिनुं तलियुं उखेडयुं; तेथी कलुषतारूप रज ऊडी, तेहना समूहे

करी अज्ञानरूप अंधकार थयो, एवो अति आकरो ए मनरूप घोडो छे, ते श्रुतरूपी दोरडे बंधायो छतो तोफान करे छे, पण समो रहेतो नथी ॥ ५ ॥

जिनवचोधनसारमलिम्लुच,
कुसुमसायकपावकदीपकः ॥
अहह कोपि मनःपवनो बली
शुभमतिद्रुमसंततिभंगकृत् ॥ ६ ॥

अर्थ—एक कौतुक जुओ के मनरूपी वायु महाबलवान् छे, केमके रुडी बुद्धिरूप वृक्षने भांगी नाखे छे तथा जिन वचनरूप धनमनो चोर छे, वली कदर्परूप अग्निनो दीपावनार छे ॥६॥

चरणगोपुरभंगपरः स्फुर-
त्समयबोधतरूनपि पातयन् ॥
भ्रमति यद्यतिमत्तमनोगजः
क कुशलं शिवराजपथे तदा ॥ ७ ॥

अर्थ—वली मनरूप हाथी छे, ते चारित्ररूप नगरना दरवाजा भांगतो थको प्रसरे छे, सिद्धांतना बोधरूपी वृक्षने पण पाडतो थको भमे छे, एवो मदोन्मत्त मनरूपी हाथी दोडादोड करे छे, तेवारे साधुने मोक्षमार्गे जतां कुशलता ते क्याथी होय ? ॥ ७ ॥

व्रततरून् प्रगुणीकुरुते जनो
दहति दुष्टमनोदहनः पुनः ॥
ननु परिश्रम एष विशेषवान्।
क भविता सुगुणोपवनोदये ॥ ७ ॥

अर्थ--जे साधु छे ते व्रतरूपी वृक्ष फली वाडीने चेतन ज्ञान अमृतरसवडे सींचीने नवपल्लव करे छे; पण दुष्ट मनरूप जे अग्नि ते वली वाडीने बाली नांखे छे; तो रुडा गुणरूप वाडीमां गुणरूप वायराने उदयें मुनिनी महेनत ते केम करीने सफल थाय ? ॥ ८ ॥

अनिगृहीतमना विदधत्परां
न वपुषा वचसा च शुभक्रियां ॥
गुणमुपैति विराधनयाऽनया
बत दुरंतभवभ्रममंचति ॥ ९ ॥

अर्थ—एक मननो निग्रह कर्या विना वचने तथा कायाये जेटली शुभ क्रिया करे ते उपयोगशून्यताये—अविधिये करे, अने ते अविधिनो करनारो तो आवश्यकसूत्रने विषे छकायनो विराधक कह्यो छे; माटे ते गुण न करे. जे शून्य मने क्रिया करनारो ते विराधक छे, माटे शून्य क्रिया करतो विराधकपणे संसारने विषे घणा भव भमशे ॥ ९ ॥

अनिगृहीतमनाः कुविकल्पतो
नरकमृच्छति तंदुलमत्स्यवत् ॥
इयमभक्षणजा नहि जीर्णता-
ऽनुपनतार्थविकल्पकदर्थना ॥ १० ॥

अर्थः—मन वश कीधा विना जे तप–जप करे, वळी मनमां कुविकल्प घणा थाय तेथी ते तंदुलमच्छनी परे नरके पडे, ए कुविकल्प करतो थको जो उपवास करे, तप करे, तेथी तेने मात्र अजीर्ण थाय; केमके अणपाम्या अर्थनो विकल्प करे तेनी कदर्थना अजीर्णनुं कारण छे ॥ १० ॥

मनसि लोलतरे विपरीतता
वचननेत्रकरेंगितगोपना ॥
व्रजति धूर्त्ततया ह्यनयाखिल
निबिडदंभपरैर्मुषितं जगत् ॥ ११ ॥

अर्थ—जो मन चपळ छे तो वचनगुप्ति करे तथा नेत्रने गोपवे, इंगितआकार चेष्टा विना काउस्सग्ग करे, ते सर्व विपरीत जाणवु ते सर्व धूर्त्ततापणाने पामे, अने एवी रीते धूर्त्तपणे कपट क्रियाना करनारा ते मोटा चोर छे जगत्‌ने लुटनारा छे ॥११॥

मनस एव ततः परिशोधनं
नियमतो विदधीत महामतिः ॥
इदमभेषजसंवननं मुने
परपुमर्थरतस्य शिवश्रियः ॥ १२ ॥

अर्थ—ते माटे मनने भली रीते निश्चयथकी शोधन करे तत्त्व पंडितने मनोशुद्धिरूप चूर्ण छे, अने परम पुरुषार्थने विषे राता जे मुनि तेने मुक्ति स्त्रीने वश करवानु औषध छे ॥१२॥

प्रवचनाब्जविलासरविप्रभा
प्रशमनीरतरंगतरंगिणी ॥
हृदयशुद्धिरुदीर्णमदज्वर-
प्रसरनाशविधौ परमौषधं ॥ १३ ॥

अर्थ—सिद्धांतरूप कमलने विकसित करवाने मनशुद्धि ते सूर्यना प्रकाशरूप छे, उपशमरूप जलकल्लोल वधारवाने मनशुद्धि ते नदीरूप छे, वली प्रसरतो थको एहवो मदरूप जे

ताप तेने टालवाने मनशुद्धि ते परम सुन्दर (जडीबुट्टी) औषध छे ॥ १३ ॥

अनुभवामृतकुंडमनुत्तर
व्रतमरालविलासपयोजिनी ॥
सकलकर्मकलंकविनाशिनी
मनस एव हि शुद्धिरुदाहृता ॥ १४ ॥

अर्थ—वली मनशुद्धि अनुभवनो मोटो अमृतकुंड छे; तथा चारित्ररूप हंसने रमवाने कमलिनी छे, अने सर्व कर्मकलंक हरवाने अग्नि समान मन शुद्धिने कही छे ॥ १४ ॥

प्रथमतो व्यवहारनयस्थितोऽ–
शुभविकल्पनिवृत्तिपरो भवेत् ॥
शुभविकल्पमयव्रतसेवया
हरति कंटक एव हि कंटकं ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रथमथी व्यवहारनये रह्यो एहवो जे पुरुष ते अशुभ विकल्पनी निवृत्ति जे नाश करवुं तेने विषे तत्पर थईने शुभ विकल्पमय जे व्रत तेनी सेवा करे; तेथी अशुभपणुं टली जाय. जेम कांटा वडे कांटो नीकळी जाय छे तेनी परे ॥ १५ ॥

विषमधीत्य पदानि शनैः शनै–
र्हरति मंत्रपदावधि मांत्रिकः ॥
भवति देशनिवृत्तिरपि स्फुटा
गुणकरी प्रथमं मनसस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—जेम मंत्रवादी पुरुष मंत्रपद समाप्ति सुधी मंत्रना शब्द धीमे धीमे मनमां भणे, पण विषने टाले; तेम जे

देशथी निवृत्ति करे ते पण प्रगटपणे प्रथम मनने गुणकारी थाय ॥ १६ ॥

स्फुटमसद्विषयव्यवसायतो
लगति यत्र मनोऽधिकसौष्ठवात् ॥
प्रतिकृतिः पदमात्मवदेव वा
तदवलम्बनमत्र शुभं मतं ॥ १७ ॥

अर्थ—जे देखताज नरळो अने भुंडो एहवो जे विषय तेना व्यापारथी जे वस्तु चित्त घणी चतुराईथी जे वस्तुने विषे लागे ते वस्तु आत्माने साथे जोटीये तेनारे तेनु प्रतिबिंब भासे, पण ते आत्मधर्म नहीं, तोपण अध्यात्म रीतें तेनुज अवलंबन रुडु कह्यु छे ॥ १७ ॥

तदनु काचन निश्चयकल्पना
विगलितव्यवहारपदावधिः ॥
न किमपीति विवेचनसम्मुखी
भवति सर्वनिवृत्तिसमाधये ॥ १८ ॥

अर्थ—पछी काईक निश्चय कल्पना थइ, अने व्यवहार पदनी मर्यादा गलित थई "एगोहं नत्थि मे कोई" एवी वहेंचण चेतना सन्मुख थई तेनार सर्वनिवृत्तिरूप समाधि थाय ॥ १८ ॥

इह हि सर्वबहिर्विषयच्युतं
हृदयमात्मनि केवलमागतं ॥
चरणदर्शनयोरपरम्परा-
परिचितं प्रसरत्यविकल्पकम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जेवारे सर्व बाह्य विषयथी हृदय खस्युं तेवारे पोताना आत्माने विषे केवल एकज ज्ञान, दर्शन, चारित्रना बोधनी परंपरा जे आत्मकुटुंब छे, तेनो मिलाप ते निर्विकल्पपणे प्रसरे, ओलखाण थाय एम जाणवुं ॥ १९ ॥

तदिदमन्यदुपैत्यधुनापि नो
नियतवस्तुविलास्यपि निश्चयात् ॥
क्षणमसंगमुदीतनिसर्गधी—
हतबहिर्ग्रहमंतरुदाहृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—निश्चयनयथकी ए आत्मा ते खरी शुद्ध वस्तुनो विलासी छे, ते माटे हमणां अन्य जे रागद्वेषादि भाव तेने न पामे; वली क्षणमात्र पण जे परपुद्गलादिकनो संग न करे, एवी स्वाभाविक बुद्धि थई तेथी बाह्य भाव हण्यो, अने अंतरंग उत्कृष्टभावने पाम्यो ॥ २० ॥

कृतकषायजयः सगभीरिम,
प्रकृतिशांतमुदात्तमुदारधीः ॥
स्वमनुगृह्य मनोऽनुभवत्यहो
गलितमोहतमः परमं महः ॥ २१ ॥

अर्थ—एहवो जे गंभीर स्वभाववालो, जेणे कषायनो जय मेलव्यो छे अने जेनी बुद्धि मोटी छे, अने स्वभावे शांत छे, ते जो सम्यक्प्रकारे मननो निग्रह करे तो तेथी मोहांधकारने गालीने परम महातेजस्विपणानो ते प्राणी जरूर अनुभव पामे ॥ २१ ॥

गलितदुष्टविकल्पपरंपरं
धृतविशुद्धि मनो भवतीदृशं ॥

धृतिमुपेत्य ततश्च महामतिः
समधिगच्छति शुभ्रयशः श्रियं ॥ २२ ॥

अर्थ—जेणे माठा विकल्पनी श्रेणि टाली छे अने विशुद्धवानु ग्रहण कीधु छे ते मनोशुद्धिने पामे, अने वली संतोषीपणाने पामीने ते पंडित पुरुष उज्ज्वल यशरूप लक्ष्मी अथवा यशशोभाने पामे ॥ २२ ॥ इति मनशुद्धिनामाएकादशोधिकारः समाप्तः ॥

इतिश्री पंडित यशोविजयेन विरचितेऽध्यात्मसारप्रकरणे
तृतीय प्रबंधः ॥



सम्यक्त्वाधिकारः

मनःशुद्धिश्च सम्यक्त्वे सत्येव परमार्थतः ॥
तद्विना मोहगर्भा सा प्रत्यपायानुबंधिनी ॥१॥

सम्यक्त्वसहिता एव शुद्धा दानादिकाः क्रियाः ॥
तासां मोक्षफले प्रोक्ता यदस्य सहकारिता ॥२॥

अर्थ—ए पूर्वे मनशुद्धि कही ते जो सम्यक्त्व गुण होय तो निश्चे मनशुद्धि कहेवाय, पण सम्यक्त्व विना जे मनशुद्धि माने ते मोहगर्भित होय एटले अज्ञान सहित होय, ते तो उलटी कष्टबंधन करनारी छे माटे हवे सम्यक्त्वनो अधिकार कहे छे ॥ १ ॥ दानादिक क्रिया पण सम्यक्त्व सहित होय तोज शुद्ध छे; ते क्रिया मोक्षफल लेवाने सहायकारक छे ॥ २ ॥

कुर्वाणोऽपि क्रियां ज्ञातिधनभोगांस्त्यजन्नपि ॥
दुःखस्योरो ददानोऽपि नांधो जयति वैरिणं ॥ ३ ॥

कुर्वन्निर्वृत्तिमप्येवं कामभोगास्त्यजन्नपि ॥
दुःखस्योरो ददानोऽपि मिथ्यादृष्टिर्न सिध्यति ॥४॥

अर्थ—जेम आंधलो वैरीने जीती शकतो नथी तेम क्रिया करे छे, न्याति धननो भोग तजे छे, दुःख सहे छे, कायाने कष्ट आपे छे; पण ए सर्व सम्यक्त्व विना व्यर्थ जाय छे ॥ ३ ॥ जो संतोष धरे, कामभोग छोडे, कायाने कष्ट आपे, तो पण मिथ्यात्वी थको मुक्तिने पामे नही ॥ ४ ॥

कनीनिकेव नेत्रस्य कुसुमस्येव सौरभं ॥
सम्यक्त्वमुच्यते सारः सर्वेषां धर्म्मकर्म्मणां ॥५॥

तत्त्वश्रद्धानमेतच्च गदितं जिनशासने ॥
सर्वे जीवा न हन्तव्याः सूत्रे तत्त्वमितीष्यते ॥६॥

अर्थ—जेम आंखमां कीकी सारभूत छे, फूलमां सुगंध सारभूत छे तेम सर्व धर्मक्रियामां सम्यक्त्व ते सारभूत कह्युं छे ॥ ५ ॥ जिनशासनने विषे जे तत्त्वनी श्रद्धा करवी तेहने सम्यक्त्व कह्युं छे, अने कोई पण जीवने हणवो नही तेने सूत्रमां तत्त्व कह्युं छे ॥ ६ ॥

शुद्धो धर्मोऽयमित्येतद्धर्मरुच्यात्मकं स्थितं ॥
शुद्धानामिदमन्यासां रुचीनामुपलक्षणं ॥ ७ ॥
अथवेदं यथा तत्त्वमाज्ञयैव तथाऽखिलं ॥
नवानामपि तत्त्वानामिति श्रद्धोदितार्थतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे शुद्ध धर्म ते ए धर्मरुची नामा सम्यक्त्वनेज कहिये अने ए मध्ये उपलक्षणथी बीजी पण शुद्ध पदार्थनी रुचीओ प्रगटे छे ॥ ७ ॥ अथवा ए सम्यक्त्व ते प्रभु आज्ञारूप तत्त्वे प्रगटे छे ते तत्त्व तो जीवादिक नव प्रकारे छे, तेनी जे श्रद्धा ते सम्यक्त्व जाणवुं ॥ ८ ॥

इहैव प्रोच्यते शुद्धाऽहिंसा वा तत्त्वमित्यतः ॥
सम्यक्त्वं दर्शितं सूत्रप्रामाण्योपगमात्मकं ॥ ९ ॥
शुद्धाऽहिंसोक्तितः सूत्रप्रामाण्यं ततएव च ॥
अहिंसाशुद्धधीरेवमन्योऽन्याश्रयभीर्न तु ॥ १० ॥

अर्थ—वली इहां तत्त्व ते अहिंसारूप शुद्ध तत्त्व छे ते तत्त्व सुद्धाचार प्रमाणे विचारीए, तेथी आत्माने अभिन्नरूपे सम्यक्त्व देखाडयुं छे ॥ ९ ॥ अने शुद्ध अहिंसा कही ते

सूत्र प्रमाण छे; ए बेहुनी मात्र वचनेज जुदाई छे. ते माटे एक अहिंसा तथा बीजी तत्त्वशुद्धि ए बेहुने मांहोमांहे मेलवतां दूषण नथी; एक स्वरूपे छे ॥ १० ॥

नैव यस्मादहिंसायां सर्वेषामेकवाक्यता ॥
तच्छुक्लतावबोधश्च संभवादिविचारणात ॥ ११ ॥
यथाऽहिंसादयः पंच व्रतधर्मयमादिभिः ॥
पदैः कुशलधर्माद्यैः कथ्यंते स्वस्वदर्शने ॥ १२ ॥

अर्थः—केमके अहिंसाने विषे सर्वनी एकवाक्यता नथी, तो पण विचारी जोतां शुद्ध अवबोध जणाय छे ॥ ११ ॥ जेम अहिंसादिक पांच व्रत ते धर्म छे तेम सर्व पोतपोताना दर्शनने विषे कुशलथका धर्म आदे देइ यमादिक पदे करीने व्रत कहे छे ॥ १२ ॥

प्राहुर्भागवतास्तत्र व्रतोपव्रतपंचकम् ॥
यमांश्च नियमान् पाशुपतान् धर्मान् दशाभ्यधुः ॥१३॥
अहिंसा सत्यवचनमस्तैन्यं चाप्यकल्पना ॥
ब्रह्मचर्यं तथाऽक्रोधो ह्यार्जवं शौचमेव च ॥ १४ ॥

अर्थः—तेमां भागवत मतवाला एम बोले छे, के पांच व्रत अने पांच उपव्रत मलीने दश छे. एम पाशुपतमतवाला दश प्रकारे धर्मदिशा माने छे. ते यम-नियमादिक दश कही बतावे छे ॥ १३ ॥ दया, सत्य वचन, अचोरी, अकल्पना अने ब्रह्मचर्य ए पांच यम तथा अक्रोध, सरलता, शौच, संतोष अने गुरुसेवा, ए पांच नियम जाणवा ॥ १४ ॥

संतोषो गुरुशुश्रूषा इत्येते दश कीर्तिताः ॥
निगद्यंते यमाःसांख्यै रपिव्यासानुसारिभिः ॥१५॥

अहिंसा सत्यमस्तैन्य ब्रह्मचर्य तुरीयक ॥
पचमो व्यवहारश्चेत्येते पच यमाः स्मृताः ॥ १६ ॥

अर्थः—ए दश धर्मदशा कहेवाय. हवे वेदव्यासना मतानुसारी सारयमतवाला पण यम नियम एम कहे छे ॥ १५ ॥ दया, सत्य,अचोरी,ब्रह्मचर्य, व्यवहार ए पाच यम जाणवा ॥१६॥

अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघव ॥
अप्रमादश्च पचैते नियमाः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥
बौद्धै' कुशलधर्माश्च दशेष्यते यदुच्यते ॥
हिसास्तेयान्ययाकाम पैशुन्य परुषान्टत ॥ १८ ॥

अर्थ —अक्रोध, गुरुसेवा, शौच, अल्पाहार, अप्रमाद-ए पाच नियम कह्या छे ॥ १७ ॥ अने बौद्धदर्शनमा जे कुशल छे ते धर्मवाला पण दश प्रकारे कहे छे, तेम कहिये छीए, हिंसा, चौरी, कदर्प, चाडी, कठोर वचन अने जूठु बोलवु ॥ १८ ।

सभिन्नालापव्यापाद मभिध्यादृगविपर्यय ॥
पापकर्मेति दशधा कायवाग्मनसैस्त्यजेत् ॥१९॥
ब्रह्मादिपदवाच्यानि तान्याहुर्वैदिकादयः ॥
अतः सर्वैकवाक्यत्वाद्धर्मशास्त्रमदोऽर्थक ॥ २० ॥

अर्थः—जेमतेम बकवु, मारवु, अब्रह्म सेववु,-दृष्टिविपर्यास, ए दश प्रकारे पापकर्म ते मन, वचन अने काया ए त्रणे योगे करी त्यजवा ॥ १९ ॥ अने वैदिकादिक मतवाला पण ब्रह्मादिक पद बोले छे, जे सर्वत्र ब्रह्मपद छे, एथी ए सर्व धर्म-वालाना एकवचन छे, माटे सार्थकपण सर्वने धर्मशास्त्र कहिये ॥ २० ॥

क चैतत्संभवो युक्त इति चिंत्यं महात्मना॥
शास्त्रं परीक्षमाणेना व्याकुलेनांतरात्मना॥ २१ ॥।

प्रमाणलक्षणादेस्तु नोपयोगोत्रऽकश्चन॥
तन्निश्चयेऽनवस्थानादन्यथार्थेस्थितेर्यतः ॥ २२ ॥

अर्थः—ते माटे ए सर्वदर्शननो संभव किहां ठेकाणे छे, एम मोटा पुरुषे चिंतववुं, ते शास्त्रनी परीक्षावालाए विचारवुं, ते वली अव्याकुलपणे अंतरात्मावडे विचारवुं ॥ २१ ॥ इहां प्रमाणलक्षणादिकथकी कशोए उपयोग कार्यकारी नथी, जिहां अन्यथा अर्थ उपजे एटले ते धर्म जुदो थइ जाय अने धर्म तो एक स्वभावरूप छे ॥ २२ ॥

प्रसिद्धानि प्रमाणानि व्यवहारश्च तत्कृतः॥
प्रमाणलक्षणस्योक्तौ ज्ञायते न प्रयोजनं ॥ २३ ॥

तत्रात्मा नित्य एवेति येषामेकांतदर्शनं॥
हिंसादयः कथं तेषां कथमप्यात्मनोव्ययात्॥ २४ ॥

अर्थः—अने चार प्रमाण तो प्रसिद्ध छे, व्यवहार पण तेज कह्यो छे; माटे प्रमाण तथा लक्षणनी युक्ति विषे प्रयोजन जणातुं नथी॥ २३ ॥ ते मध्ये वे नये करी आत्मा नित्यज छे, एवुं एकांत मतवालानुं कहेवुं छे. तेने मते तो हिंसादिक नथी. केमके आत्मा अविनाशी छे, ते कोइवारे मरे नहीं, अने मरे नही तेवारे हिंसा पण शानी ? ॥ २४ ॥

मनोयोगविशेषस्य ध्वंसो मरणमात्मनः॥
हिंसा तच्चेन्न तत्त्वस्य सिद्धेरार्थसमाजतः ॥ २५ ॥

नैति बुद्धिगता दुःखोत्पादरूपेयमौचितिम्॥
पुंसि भेदाग्रहाचास्याः परमार्थोऽव्यवस्थितः ॥२६॥

अर्थः—सवळे मरणे मनोयोग नाश पामछे तेवारे लोक कहे छे के जीव मुवो, पण आत्मा तो मरतो नथी, माटे तत्त्वथकी आत्मानी हिंसा नथी ए अर्थ घटमान छे एम कहे छे ॥ २५ ॥ कोई जाणशे जे आगल दुःख उपजाववानी जे बुद्धि तेहने हिंसा कहिये, पण ए वात योग्य नथी, केमके तमे बुद्धिने तो पुरुषभेद आग्रहथकी आत्माथी भिन्न मानो छो, तेथी पण आत्मानी हिंसा न थई केमके परमार्थे बुद्धिने आत्मा साथे व्यवस्था नथी ॥ २६ ॥

न च हिंसापदं नाशपर्याय कथमप्यहो ॥
जीवस्यैकांतनित्यत्वेऽनुभवाबाधकं भवेत् ॥ २७ ॥
शरीरेणापि संबंधो न तद्योगाविवेचनात् ॥
विभुत्वेनैव संसारः कल्पितः स्यादसंशयं ॥ २८ ॥

अर्थ —एकांते नित्यपणे जीवनो नाश थवानो जे पर्याय ते हिंसा पद कहवाय, तेहने अहो इति आश्चर्ये ! अनुभव अबाधकपणे न होय शुं ? होयज इति काकोक्ति ॥ २७ ॥ नित्यपणे शरीर करीने पण संबंध नथी, केमके तेना योगनी वहेचण नथी, माटे सर्वव्यापकपणे ईश्वरादि करीने ईश्वरकृत्य इत्यादिक संसार कल्प्यो छे ॥ २८ ॥

आत्मक्रिया विना च स्यान्मितानुग्रहणं कथं ? ॥
कथं संयोगभेदादिकल्पना चापि युज्यते ॥ २९ ॥
अदृष्टादेहसंयोगः स्यादन्यतरकर्मजः ॥
इत्थं जन्मोपपत्तिश्चेन्न तद्योगाविवेचनात् ॥ ३० ॥

अर्थ —एम आत्मक्रिया विना एटले आत्माना व्या-

पार विना-परिमित परमाणुनुं ग्रहण केम थाय ? वली संयोग-वियोगादिकनी कल्पना पण केम घटे ? ॥ २९ ॥ एम सांभलीने कोई बोल्यो के- हरकोई कर्मथी पूर्व संस्कार दिठा विना शरीरनो संयोग थाय छे, तेनो उत्तर आपे छे. एम जन्मनी उत्पत्ति ते जीवना व्यापार विना-चेंचण विना थाय नही, इति भावार्थः ॥ ३० ॥

कथंचिन्मूर्त्ततापत्तिर्विना वपुरसंक्रमात् ॥
व्यापारयोगतश्चैव यत्किंचित्तदिदं जगुः ॥ ३१ ॥
निःक्रियोऽसौ ततो हंति हन्यते वा न जातुचित् ॥
किंचित्केनचिदित्येवं न हिंसाऽस्योपपद्यते ॥ ३२ ॥

अर्थः—शरीरने संयोगे तो जीव कांईक रूपीपणुं पामे छे. जो शरीरनो संक्रम न होय तो जे कांई छे ते इहां कहे छे ॥ ३१ ॥ जेणे आत्मा त्यागी कीधो छे ते एम कहे छे के आत्मा क्रिया रहित छे, माटे कोइने हणतो नथी तेम कोइ काले कोइथी हणातो पण नथी; एवुं जेना चित्तमां छे ते हिंसा नहीं माने ॥ ३२ ॥

अनित्यैकांतपक्षेऽपि हिंसादीनामसंभवः ।
नाशहेतोरयोगेन क्षणिकत्वस्य साधनात् ॥ ३३ ॥
न च संतानभेदस्य जनको हिंसको भवेत् ॥
सांवृतत्वादजन्यत्वाद् भावत्वनियतं हि तत् ।३४।

अर्थः—एम एकांते अनित्यवादीने पक्षे हिंसा नथी मनाती, केमके ते सर्व पदार्थ क्षणरूप माने छे; माटे आत्मा क्षणमां नाशरूप छे, ते पोतानी मेलेज मरे छे तेवारे मारनार

हेतु कोई नथी माटे हिंसा नथीज ॥ ३३ ॥ पुत्र-पुत्री प्रमुखनो कोइ बाप नथी तेम कोइ मारनार पण नथी, ए जगत सर्व क्षणिक भावनो नियम छे, अनित्य छे, माटे कोइ प्रगट करनार नथी तेथारे पिता कोनो अने पुत्र कोनो ? ॥ ३४ ॥

नरादिः क्षणहेतुश्च शूकरादेर्न हिंसकः ॥
शूकरात्यक्षणेनैव व्यभिचारप्रसंगतः ॥ ३५ ॥
अनंतरक्षणोत्पादे बुद्धलुब्धकयोस्तुला ॥
नैव तद्विरतिः क्वापि ततः शास्त्राद्यसंगतिः ॥ ३६ ॥

अर्थः—मनुष्य क्षणमात्र छे अने पछी सुअरना मरणने अंतकालना क्षणमा ते मनुष्य नथी, माटे सुअरने मारनार कोण छे ? एहवा बोलनारने पण प्रसंगथी व्यभिचार आवे छे ॥ ३५ ॥ तथा सुअरने मार्युं अने मरणने बीजे समये ज्ञानी तथा आहेडी ए बे सरिखा छे सुअर मरण पाम्यु ते ए बे जणे जाण्यु, माटे हवे ए नेमाथी कोइने मारवानी मति नथी. ते माटे मारनार तथा मरनार सर्वना क्षणे क्षणे उत्पत्ति तथा मरण छे, पण कोइ क्षणे काइ विरति नथी, एम कहे छे ए मतवालाना शास्त्र पण जूठा छे ॥ ३६ ॥

घटन्ते न विनाऽहिंसा सत्यादीन्यपि तत्त्वतः ॥
एतस्याः वृत्तिभूतानि तानि यद्भगवान् जगौ ॥३७॥
मौनीन्द्रे च प्रवचने युज्यते सर्वमेव हि ॥
नित्यानित्ये स्फुटं देहाद्भिन्नाभिन्ने तथात्मनि ॥३८॥

अर्थः—केमके अहिंसा विना सत्यादिक धर्म पण घटे नहीं अने सत्यादिक धर्म जे छे ते जीवदयारूप क्षेत्रनी वाड

छे, एवुं केवली कहे छे ॥ ३७ ॥ जिनशासनने विषे तो ए सर्व घटमान छे, शरीरथी प्रगटपणे नित्य छे, वळी अनित्य पण छे; तेमज भिन्नाभिन्नपणुं छे; तथा एकपणुं छे अने अनेकपणुं पण छे: वली आत्माने विषे पण तेमज कहेवुं ॥ ३८ ॥

आत्मा द्रव्यार्थतो नित्यः पर्यायार्थाद्विनश्वरः ॥
हिनस्ति हन्यते तत्तत्फलान्यप्याधिगच्छति ॥ ३९ ॥
इह चानुभवः साक्षी व्यावृत्यान्वयगोचरः ॥
एकांतपक्षपातिन्यो युक्तयस्तु मिथो हताः ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मा द्रव्यार्थिकनये नित्य छे अने पर्यायार्थिकनये अनित्य छे; ए जीव कोइने हणे छे, अथवा कोइ ए जीवने हणे छे, तेनां फल परभवमां आत्मा भोगवे छे ॥ ३९ ॥ ए जैननी शैलीये अन्वय अने व्यतिरेक ए वे गुणे सहित एवो जे अनुभव ते साक्षी करतां थकां एकांत मतवालानी युक्तियो माहोमांहे हणाइ जाय छे ॥ ४० ॥

पीडाकर्तृत्वतो देहव्यापत्त्या दुष्टभावतः ॥
त्रिधा हिंसागमे प्रोक्ता न हीत्यमपहेतुका ॥ ४१ ॥
हंतुर्जायति को दोषो हिंसनीयस्य कर्म्मणि ॥
प्रसक्तिस्तदभावे चान्यत्रापीति मुधा वचः ॥ ४२ ॥

अर्थ—पीडा करवाथी, देहपीडाथी, दुष्टभावथी, एवा त्रण प्रकारनी हिंसा सिद्धांतमां कही छे, ते कांइ जूठी नथी ॥ ४१ ॥ जे प्राणीनुं स्वकृत कर्मनो उदय थये थके मृत्यु थयुं तो तेना हणनारने शो दोष छे? एटले हिंसा न थइ; अने जे हणाणो तेनां कर्म उदय आव्यां, ते तेणे भोगव्यां तो तेमां शी

हिंसा छे? केमके जे जीवने मरणनो उदय हाल नथी तेने मारिये तो पण ते काइ मरतो नथी, माटे हिंसा कोइनी थती नथी, एवु जे माने छे ते मिथ्या छे ॥ ४२ ॥

हिंस्यकर्म्मविपाकस्य दुष्टाशयनिमित्तता ॥
हिंसकत्व न तेनेद वैद्यस्य स्याद्रिपोरिव ॥ ४३ ॥

इत्थ सदुपदेशादेस्तन्निवृत्तिरपि स्फुटा ॥
सोपक्रमस्य पापस्य नाशात्स्वाशयवृद्धितः ॥४४॥

अर्थ—केमके जे प्राणीना मनमा दुष्ट आशयनु निमित्त छे तेने ए हिंसा छे, अने हिंसाना कर्मविपाक पण तेनेज छे. जो वैद्यने औषध करता दुष्ट चित्त होय तो ते औषध शत्रु सरखु थाय, अने ते वैद्यने पण हिंसकपणु लागे. अने जो वैद्यनु मन निर्मल छे तो वैद्यने हिंसकपणु न लागे ॥ ४३ ॥ एवा सद्गुरुना उपदेश सामलवाथी हिंसानी निवृत्ति प्रगटपणे थाय. निर्मल चित्तना आशयनी वृद्धिथकी सोपक्रमी जे अनिकाचित बाधेला पाप तेनो नाश थाय छे ॥ ४४ ॥

अपवर्गतरोर्बीज मुख्याऽहिंसेयमुच्यते ॥
सत्यादीनि व्रतान्यत्र जायते पल्लवा नवा॰ ॥ ४५ ॥
अहिंसासभवश्चेत्थ दृश्यतेऽत्रैव शासने ॥
अनुबन्धादिसशुद्धिरप्यत्रैवास्ति वास्तवी ॥ ४६ ॥

अर्थ॰—जे अहिंसा ते मोक्षरूप वृक्षनु बीज कहिये, अने सत्यादिक जे व्रत छे ते मोक्षरूप वृक्षना नवपल्लव अङ्कुरा छे ॥ ४५ ॥ व तो आ जिनशासनमा जीवदयानो, अहिंसकपणानो सभव जोवामा आव छे अने वली अनुबधहिंसा व रा हतुहिंसा

अने स्वरूपहिंसा ए त्रण जातनी जे हिंसा तेनी शुद्धि ते पण आ जिनशासनमांज वसी रही छे ॥ ४६ ॥

हिंसाया ज्ञानयोगेन सम्यग्दृष्टेर्महात्मनः ॥
तप्तलोहपदन्यासतुल्यायां नानुबंधनं ॥ ४७ ॥
सतामस्याश्च कस्याश्चिद् यतनाभक्तिशालिनां ॥
अनुबंधो ह्यहिंसाया जिनपूजादिकर्म्मणि ॥ ४८ ॥

अर्थः—मोटा प्राणी जे सम्यग्दृष्टि ते ज्ञानयोगे करी वर्ते छे, तेने पण अविरतिथी हिंसा लागे छे, ते केवी छे? जेम तपाव्युं एवुं जे लोढुं ते उपर पग मूकी कोई चाले, पण बलवाने भये निःशंकपणे पग ठरावे नहीं, तेम समकिती पण निःशंकपणे हिंसा न करे, अने ते माटेज नरकनो बंध पण करे नहीं ॥४७॥ तेम रुडा जयणावंत जीवने ज्ञानयोगे करी जिनपूजा करतां अहिंसा जे दया तेनो अनुबंध छे; केमके ए पूजा ते परंपराये मुक्तिफलनी आपनारी छे ॥ ४८ ॥

हिंसानुबंधिनी हिंसा मिथ्यादृष्टेस्तु दुर्मतेः ॥
अज्ञानशक्तियोगेन तस्याहिंसापि तादृशी ॥४९॥
येन स्यान्निह्नवादीनां दिविषद्दुर्गतिः क्रमात् ॥
हिंसैव महती तिर्यङ्नरकादिभवांतरे ॥ ५० ॥

अर्थः—पण नरकगतिनो बंध पडे एवी जे हिंसा ते मिथ्यात्वी दुर्मतिने होय, अज्ञानने योगे करी ते मिथ्यात्वी जो जीवदया पाले तो ते पण हिंसा जेवीज जाणवी ॥ ४९ ॥ जे कारण माटे निन्हवादिक जमाली प्रमुखे पण जीवदया पाली छे, तोपण अज्ञानोदयना योगे स्वर्गमां पण दुर्गति पाम्या छे,

अने ढेडरूप छे, माटे निन्हवनी जे अहिंसा ते परमार्थे हिंसाना ज फल आपे, केमके भवांतरे तेमने तिर्यंच् नरकादिकनी गति प्रगटे छे ॥ ५० ॥

साधूनामप्रमत्तानां सा चाहिंसानुबंधिनी ॥
हिंसानुबंधविच्छेदाद्गुणोत्कर्षो यतस्ततः ॥५१॥
मुग्धानामियमज्ञत्वात् सानुबंधा न कर्हिचित् ॥
ज्ञानोद्रेकाप्रमादाभ्यामस्या यदनुबंधनं ॥ ५२ ॥

अर्थः—अप्रमत्त साधु जे सातमा गुणठाणावाला तेने जे हिंसा छे ते अहिंसानुबंधी छे, केमके हिंसानो अनुबंध विच्छेद थया थकी जिहां तिहां थकी गुणनो उत्कर्ष थाय छे ॥ ५१ ॥ पण ए अहिंसा ते अज्ञानपणे भोला प्राणीने कदापि काले सुखदायक नथी, एटले ए अनुबंध सहित न थाय, पण अप्रमत्त साधुने ज्ञान सहित जे अहिंसा अथवा हिंसा ते अनुबंधे अहिंसाज कहिये, केमके ए परंपराए मोक्षसुखनुं कारण छे माटे ॥ ५२ ॥

एकस्यामपि हिंसायामुक्तं सुमहदंतरं ॥
भाववीर्यादिवैचित्र्यादहिंसाया च तत्तथा ॥ ५३ ॥
सद्य कालांतरे चैतद्विपाकेनापि भिन्नता ॥
प्रतिपक्षांतरालेन तद्वा शक्तिनियोगतः ॥ ५४ ॥

अर्थ—एकली हिंसाने विषे पण जेम मोटो अंतर देखाड्यो छे तेम भाव वीर्यना विचित्रपणाथकी अहिंसाने विषे पण तेमज जाणवुं ॥ ५३ ॥ प्रतिपक्षपण अंतराले करी अथवा ते शक्तिने योगे करी तत्काल अथवा कालांतर विपाके करीने पण भिन्नता छे ॥ ५४ ॥

हिंसाप्युत्तरकालीनविशिष्टगुणसंक्रमात् ॥
त्यक्ताविध्यनुबंधत्वादहिंसैवातिभक्तितः ॥ ५५ ॥

ईदृग्भंगशतोपेताऽहिंसा यत्रोपवर्ण्यते ॥
सर्वांशपरिशुद्धं तत्प्रमाणं जिनशासनं ॥ ५६ ॥

अर्थः—जे हिंसा छे ते पण जो उत्तरकाले विशिष्टगुण प्रगटे, तथा अविधिनो अनुबंध तज्याथी अने अत्यंत भक्तिथकी प्राणीने अहिंसारूपज फलदायक थाय छे ॥ ५५ ॥ ए रीते सेंकडो गमे भंगजाल सहित जिहां अहिंसाने वर्णविये ते तो सर्वांशे शुद्ध एवुं जे जिनशासन तेमांज प्रमाण छे ॥ ५६ ॥

अर्थोऽयमपरोऽनर्थ इति निर्धारणं हृदि ॥
आस्तिक्यं परमं चिन्हं सम्यक्त्वस्य जगुर्जिनाः ॥५७॥

शमसंवेगनिर्वेदानुकंपाभिः परिष्कृतं ॥
दधतामेतदविच्छिन्नं सम्यक्त्वं स्थिरतां व्रजेत् ॥५८॥

अर्थः—अहिंसा तेज अर्थ छे अने बीजा सर्व अनर्थ छे, ए प्रकारे जेना मनमां धारणा छे एहवी परम आस्था प्रगटे ते आस्था श्रद्धारूप समकितनुं चिह्न छे, एवुं प्रभुए कहुं छे ॥५७॥ समता, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा ए लक्षणो रुडी रीते अविच्छिन्नपणे धरतां थकां समकित जे छे ते स्थिरत्तापणाने पामे ॥ ५८ ॥

इति सम्यक्त्वाधिकारः द्वादशः समाप्तः ॥

॥ मिथ्यात्व त्यागाधिकार ॥

मिथ्यात्वत्यागतः शुद्ध सम्यक्त्व जायतेऽङ्गिना ।
अतस्तत्परिहाराय यतितव्य महात्मना ॥ १ ॥

नास्ति नित्यो न कर्त्ता च न भोक्तात्मा न निर्वृतः ।
तदुपायश्च नेत्याहुर्मिथ्यात्वस्य पदानि षट् ॥ २ ॥

अर्थः—वे जे वार मिथ्यात्वनो नाश थाय ते वारे जीवने सम्यक्त्व प्रगटे, माटे मिथ्यात्व टालवानो रुडा प्राणीय उद्यम करवो ॥ १ ॥ आत्मा नथी, आत्मा नित्य नथी, कर्त्ता नथी, भोक्ता नथी, सिद्ध नथी, व सिद्धता प्रगट करवानो उपाय नथी ए छ पद मिथ्यात्वना छे ॥ २ ॥

एतैर्यस्माद्भवेद्दूरद्व्यवहारविलघन ।
अयमेव च मिथ्यात्वध्वसी सदुपदेशतः ॥ ३ ॥

नास्तित्वादिग्रहैर्नैवोपदेशो नोपदेशक ।
तत. कस्योपकार स्यात्सदेहादिव्युदासत. ॥४॥

अर्थ —ए पदवड करी पूर्वाचार्यना व्यवहार उलवाय छे, लोपाय छे, एज मिथ्यात्व छे, अने ते सद्गुरुना उपदेशथकी नाश पामे छे ॥ ३ ॥ ए छ पदरूपी कुग्रह नव्यायका जे उपदेश आपे ते उपदेश न कहिये, तेथी कोइने उपकार न थाय, मिथ्यात्वीना उपदेशे सदेह टले नही ॥ ४ ॥

येषा निश्चय एवेष्टो व्यवहारस्तु सगत ।
विप्राणा म्लेच्छभाषेव स्वार्थमात्रोपदेशनात् ॥५॥

यथा केवलमात्मानं जानानः श्रुतकेवली ।
श्रुतेन निश्चयात्सर्वं श्रुतं च व्यवहारतः ॥ ६ ॥

अर्थः—जेम ब्राह्मणने म्लेच्छ भाषा बोलवानी मनाई छे, माटे पोताना स्वार्थ जेटलीज बोले; तेमज जेहने एक निश्चय नयज इष्ट छे तेहने व्यवहार नय तो ब्राह्मणने म्लेच्छनी भाषाना उपदेशनी परे स्वार्थ माटे संगत मात्र छे ॥ ५ ॥ जेम श्रुतकेवली व्यवहारथी श्रुत जाणे; अने सर्व निश्चय नयवडे श्रुतज्ञाने करी श्रुतकेवली केवल आत्माने जाणे ॥ ६ ॥

निश्चयार्थोऽत्र नो साक्षाद्वक्तुं केनापि पार्यते ।
व्यवहारो गुणद्वारा तदर्थावगमक्षयः ॥ ७ ॥

प्राधान्यं व्यवहारे चेत्तत्तेषां निश्चये कथं ?
परार्थस्वार्थते तुल्ये शब्दज्ञानात्मनोर्द्वयोः ॥ ८ ॥

अर्थः—इहां निश्चय अर्थ प्रगटपणे कहेवाने कोई समर्थ नथी. देखीतो गुण प्रगटे ते रूप द्वारे निश्चय अर्थनी प्राप्ति क्षयरूप व्यवहार कहेवाय ॥ ७ ॥ जेने केवल व्यवहारने विषेज प्रधानपणुं छे तो तेने निश्चयनयमां केम होय ? वली शब्दनय अने ज्ञाननयरूप प्राणीने स्वअर्थ ने परअर्थ बे तुल्य छे. जे शब्द ते व्यवहार छे अने ज्ञान ते निश्चय छे । ८ ॥

प्राधान्याद्व्यवहारस्य तत्त्वसमुच्छेदकारिणां ।
मिथ्यात्वरूपतैतेषां पदानां परिकीर्त्तिता ॥ ९ ॥

नास्त्येवात्मेति चार्वाकः प्रत्यक्षानुपलंभतः ।
अहंताव्यपदेशस्य शरीरेणोपपत्तितः ॥ १० ॥

अर्थ —जे व्यवहारना प्रधानपणाथकी सर्वनो उच्छेद थाय तेवा प्राणीने मिथ्यात्वरूप छ पदमा मिथ्यात्वभाव थयो एम जाणवु ॥ ९ ॥ चार्वाक दर्शनवाला कहे छे के आत्मा नथी; केमके जो आत्मा होय तो प्रत्यक्ष जणाय, ते तो काई जणातो नथी, अने अहकार एटले आ कार्य हु करु छु तेनो जे व्यपदेश छे ते तो शरीरे करीने जणाय छे ॥ १० ॥

मद्यागेभ्यो मदव्यक्ति प्रत्येकमसती यथा ।
मिलितेभ्यो हि भूतेभ्यो ज्ञानव्यक्तिस्तथा मता ॥११॥
राजरकादिवैचित्र्यमपि नात्मबला हितम् ।
स्वाभाविकस्य भेदस्य ग्रावादिष्वपि दर्शनात् ॥१२॥

अर्थ—जेम महुडा तथा पाणीप्रमुख मदिराना अग छे, पण ते प्रत्येकमा मदिरानी शक्ति नथी, जे वारे भेगा मले ते वारेज शक्ति प्रगटे, तेम पचभूत भेगा मले ते वारे ज्ञानशक्ति प्रगट थाय छे ॥ ११ ॥ जेम एक शिला अथवा एक काकरी ए सर्व पथराना भेद छे तेम आ राना छे, आ राक छे एवु विचित्रपणु ते आत्मा नथी, ए तो स्वभावे भेद पड्या छे ॥१२॥

वाक्यैर्न गम्यते चात्मा परस्परविरोधिभि ।
दृष्टवान्न च कोऽप्येन प्रमाण यद्वचो भवेत् ॥१३॥
आत्मानं परलोक च क्रिया च विविधा वदन् ।
भोगेभ्यो भ्रशयत्युच्चैर्लोकश्चित्त प्रतारक. ॥ १४ ॥

अर्थ.—वली सर्व मतवालाना माहोमाह विरोधी वचन होवाथी आत्मानी प्रतीति थती नथी, केमके कोइये आत्मा दीठो नथी के जे थकी एकेनु वचन प्रमाण थाय ॥ १३ ॥ आत्माने

सूक्ष्म स्थितिमां स्थिरदर्शन न संभवे ॥ २१ ॥ जेम मदिराना अंगथकी मदशक्ति प्रगटपणे नथी, पण भेगे मलवे थाय छे, अथवा पीधा पछी आत्माने संयोगे थाय छे तेम ज्ञाननी प्रगटता पण आत्माने योगे थाय छे; नहीं तो सदाय एकलुं ज्ञान रहेवुं जोइए ॥ २२ ॥

राजरंकादिवैचित्र्यमप्यात्मकृतकर्मजं ॥
सुखदुःखादिसंवित्तिविशेषो नान्यथा भवेत् ॥२३॥
आगमाद्गम्यते चात्मा दृष्टेष्टार्थाविरोधिनः ॥
तद्वक्ता सर्ववित्चैनं दृष्टवान्वीतकश्मलः ॥ २४ ॥

अर्थः—आ राजा छे अने आ रांक छे, एवो जीवने विचित्र भाव उपजे छे एवी लोकवाणी छे; ते सर्व पोतानां कीधेलां कर्मथकी जाणवी. सुखदुःख सर्व कर्मथकी प्रगट थाय छे, अन्यथा वीजुं विशेष कारण कांई नथी ॥ २३ ॥ जे दृष्टिये दीठुं ते प्रत्यक्षप्रमाण अने इष्टार्थ ते अनुमान प्रमाण, तथा उपमाप्रमाण ते अनुमानमां भले छे; माटे ए त्रण प्रमाणने अविरोधी एहवुं जे आगमप्रमाण तेणे करी आत्माने जाण्यो जाय छे. ते आगम तो जेनां सर्व पाप गयां छे एहवा सर्वज्ञ देवे देखाड्युं छे ॥ २४ ॥

अभ्रांतानां च विफला नामुष्मिक्यः प्रवृत्तयः ॥
परवंधनहेतोः कः स्वात्मानमवसादयेत् ॥ २५ ॥
सिद्धिः स्थाण्वादिवद्व्यक्ता संशयादेव चात्मनः ॥
असौ खराविषाणादौ व्यस्तार्थविषयः पुनः ॥२६॥

अर्थः—अभ्रांत जे ज्ञानी पुरुष तेने हमणानी प्रवृत्ति ते

नि फलता न होय, माटे परनधनना हतुए करी पोताना आत्माने कोण खेदमा नाखे ? ॥ २५ ॥ आत्मानी प्रगटपणे सशयथी सिद्धि छे, एवी वात तो वगडामा झाडना ठुठा जेवी देखाय, पण सशय करता थका जे खरु वृक्ष ते न जणाय. तेमज सशयवडे आत्माने न जाणिये अने जे विपरीत अर्थे आत्माने माने तेने गधेडाने शिंगडा माननार जेवो समजवो ॥ २६ ॥

अजीव इति शब्दस्य जीवसत्तानियन्त्रितः ॥
अमतो न निषेधो यत्सयोगादिनिषेधनात् ॥२७॥

मयोग· समवायश्च सामान्य च विशिष्टता ॥
निषिध्यते पदार्थाना त एव न तु सर्वथा ॥ २८ ॥

अर्थ·—अजीव शब्दमा जीव शब्दनी मत्ता नलगेली छे, पण निषेध अछतो छे जेथी नास्तिक मतवाला मयोग, समवाय अने सामान्य तथा विशेषने निषध छे, त पण सर्वथा-पणे वस्तुस्वरूपने निषधी शकता नथी, कारणके सयोग, समवाय अने सामान्य नहीं माननाथकी पण अजीव शब्द बोलवो ते यद्यपि अजीव पदार्थ सत छे, तथापि शब्द असत् मानीए तो ते असत् पदार्थनो निषध देखातो नथी ॥ २७ ॥ माटे मयोग, समवाय, मामान्य इत्यादिक पदार्थनु विशेषपणु ते नास्तिक मत-वाला निषध करे छे, पण त सर्वथा निषेध थाय नहीं ॥ २८ ॥

शुद्ध व्युत्पत्तिमज्जीवपद सार्थ घटादिवत् ॥
तदर्थस्य शरीर नो पर्यायपदभेदत ॥ २९ ॥

आत्मव्यवस्थितेस्त्याज्य तनश्चार्वाकदर्शनम् ॥
पापा किलैतदालापा सद्व्यापारविरोधिन ॥३०॥

अर्थः—शामाटे ? शुद्ध निर्मल एवी व्युत्पत्ति ते जीव प्राण धारणे एवे अर्थे युक्त एवुं जीव पद साचुं छे, घटादिकनी पेरे छतुं छे; पण नवा नवा पर्यायना भेदथकी जीवने मूल अर्थे शरीर नथी ॥ २९ ॥ ए रीते आत्मानुं स्थापन करीने चार्वाक दर्शनने छांडवुं, ए दर्शनी साथे आलाप करवो ते पण पापरूप छे, केमके ते सत्यवादी साथे विरोधकारक छे; तेथी तजवुं ॥३०॥

ज्ञानक्षणावलीरूपो नित्यो नात्मेति सौगताः ॥
क्रमाक्रमाभ्यां नित्यत्वे युज्यतेऽर्थक्रिया न हि ॥३१॥
स्वभावहानितोऽध्रौव्यं क्रमेणार्थक्रियाकृतौ ॥
अक्रमेण च तद्भावे युगपत्सर्वसंभवः ॥ ३२ ॥

अर्थः—हवे बौद्धमतवाला बोल्या के—आत्मा ज्ञानरूप छे, पण क्षण—आवलिका प्रमाणे स्थिति छे; माटे आत्मा नित्य नथी. एटले जीव ते क्षणमां क्रोध करे, क्षणमां मान करे, एम भिन्न अवस्था थाय छे; एक अवस्था नित्य रहेती नथी. परंपराये क्रम अक्रमपणे जो नित्य आत्मा कोइ वेलाये होय, तो अर्थक्रियाकलाप घटे नही; माटे नित्य आत्मा नथी ॥ ३१ ॥ एनो स्वभाव हणाय ते वारे ध्रुवपणुं पामे, अनुक्रमे अर्थक्रिया आकृतिने विषे अक्रम करीने ते भावने विषे समकाले विचारतां सर्व संभव होय, माटे अमारो क्षणिक मत साचो ठर्यो ॥ ३२ ॥

क्षणिके तु न दोषोऽस्मिन् कुर्वद्रूपविशेषिते ॥
ध्रुवेक्षणोत्थतृष्णाया निवृत्तेश्च गुणो महान् ॥ ३३ ॥
मिथ्यात्ववृद्धिकृन्नूनं तदेतदपि दर्शनं ॥
क्षणिके कृतहानिर्यत्तयात्मन्यकृतागमः ॥ ३४ ॥

अर्थः—वळी आ क्षणिक मतमा दोष नथी, केमके नव-नवा रूप करे छे, पण जे समये जे रूप होय ते समये ते रूपना लक्षणे करी युत छे तेमा तृष्णानो अने निवृत्तिनो मोटो गुण छे जेथी ध्रुवतारूप महागुण पामिये, एम बौद्ध कहे छे ॥ ३३ ॥ ए उपरथी खरेखरु ए दर्शन मिथ्यात्वनी वृद्धि करनारु छे, केमके आत्माने क्षणिक माननारना सुकृतनी हानि थाय छे जो कदी पाप न करे, तोपण जूठा बोलानु पाप तो परभवे भोगवधु पडे, माटे अकृतागम कहिये ॥ ३४ ॥

एकद्रव्यान्वयाभावाद्वासनासंक्रमश्च न ॥
पौर्वापर्यं हि भावाना सर्वत्रातिप्रसक्तिमत् ॥ ३५ ॥
कुर्वद्रूपविशेषे च न प्रवृत्तिर्न वाऽनुमा ॥
अनिश्चयान्न वाऽध्यक्ष तयाचोदयतो जगौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—जेम एक द्रव्यनो सापेक्षपणे एक भाव नथी, माटे वासनानु संक्रमण न थाय अने भावनु पूर्वापरपणु सर्वत्र शक्तिरूपे परिणम छे ॥ ३५ ॥ रूप विशेष करता छता प्रवृत्ति करवी अथवा वारवी ते तो नहीं, पण क्षणिक मतवालाए तो अनिश्चयथकी आत्माने उदयथी क्षणिकपणु कह्यु छे ॥ ३६ ॥

न वैजात्य विना तत् स्यान्न तस्मिन्ननुमा भवेत् ॥
विना तेन न तत्सिद्धिर्नाध्यक्ष निश्चय विना ॥३७॥
एकताप्रत्यभिज्ञान क्षणिकत्व च बाधते ॥
योऽहमन्वभव सोऽह स्मरामीत्यवधारणात् ॥३८॥

अर्थ—विजाति विना ते न होय, एमा काई अनुमान घटतु नथी, केमके ते विना तेनी सिद्धि पण नथी निश्चय विना

प्रत्यक्ष ज्ञान पण नथी थतुं ॥ ३७ ॥ तथा हुं आ अनुभवुं छुं, ते हुं संभारुं छुं—ए अवधारणथकी आत्माने त्रैकालिक एकताज्ञान ते क्षणिकपणे बाधकारी थाय छे ॥ ३८ ॥

नास्मिन्विपर्ययबाधो यत् क्षणिकेऽपि यथैकता ॥
नानाज्ञानान्वये तद्वत् स्थिरे नानाक्षणान्वये ॥३९॥

नानाकार्यैक्यकरणस्वाभाव्ये च विरुध्यते ॥
स्याद्वादसन्निवेशेन नित्यत्वेऽर्थक्रिया न हि ॥४०॥

अर्थः—ए नित्यात्माना मतवडे विपर्ययबाधकपणुं न होय, क्षणिक मतने विषे पण एमज जेम ज्ञानान्वये एकत्वपणुं छे तेम स्थिर आत्माने विषे नाना क्षणने संयोगे एकता जाणवी ॥३९॥ बहु कार्यना एकीकरण स्वभावने अंगीकार करे छते विरोध पडे छे अने स्याद्वाद शैली स्थापना करवाथी नित्यापेक्षपणे अर्थक्रिया विरोध पामती नथी; केमके बहु नये प्रकृति अर्थ अनुसरे छे; माटे ॥ ४० ॥

नीलादावप्यतद्भेदशक्तयः सुवचाः कथं ? ॥
परेणापि हि नानैकस्वभावोपगमं विना ॥ ४१ ॥

ध्रुवे क्षणेऽपि न प्रेम निवृत्तमनुपप्लवात् ॥
ग्राह्याकार इव ज्ञाने गुणस्तन्नात्र दर्शने ॥ ४२ ॥

अर्थः—नीलादि वर्णने विषे भेदशक्ति न होय, एम सुखे केम कहेवाय ? पर पुद्गलवडे करीने पण एक स्वभावने टाल्या विना नानाविधपणुं संभवे नही ॥ ४१ ॥ ध्रुवतापणाने विषे इक्षणने विषे पण एटले लोचनने विषे पण उपप्लव माटे निवृत्तपणे प्रेम न जोइये. जेम ग्राह्याकार ज्ञानने विषे गुण छे तेम आ दर्शनमां गुण नथी ॥ ४२ ॥

प्रत्युतानित्यभावे हि स्वत' क्षणजबुधिया ॥
हेत्वनादरत. मर्व क्रियाविफलता भवेत् ॥ ४३ ॥

तस्मादिदमपि त्याज्यमनित्यत्वस्य दर्शन ॥
नित्यसत्यचिदानदपदससर्गमिच्छता ॥ ४४ ॥

अर्थ·—ऊलटो अनित्यभावने विषे पण पोताथी क्षणनी बुद्धिये करी हेतुना अनादर थकी सघळी क्रिया निष्फल थाय ॥ ४३ ॥ ते माटे ए अनित्य दर्शन पण छोडवु सदैव नित्य सत्यपणे मुक्तिपदना ससर्गने इच्छता प्राणीये जरूर त्यजवु ॥४४॥

न कर्त्ता नापि भोक्तात्मा कापिलाना तु दर्शने ॥
जन्मधर्माश्रयो नाय प्रकृति· परिणामिनी ॥ ४५ ॥

प्रथम· परिणामोऽस्या बुद्धिर्धर्माष्टकाऽन्विता ॥
ततोऽहकारतन्मात्रेंद्रियभतोदय· क्रमात् ॥ ४६ ॥

अर्थ.—हवे कपिल दर्शनवाला बोल्या के—आत्मा कर्त्ता नथी तेम भोक्ता पण नथी आत्मा प्रगट धर्माश्रयवालो नथी, माया परिणाम वर्त्ते छे ॥ ४५ ॥ ए मायानो प्रथम परिणाम शुश्रूषा, श्रवण, चैतग्रहण इत्यादिक आठ प्रकारनी बुद्धिरूप धर्मे करी सहित छे अथवा तेथी अहकार, तन्मात्र, इंद्रिय, पाच भूतोदय—ए अनुक्रमे जाणवु ॥ ४६ ॥

चिद्रूप,पुरुषो बुद्धे· सिद्धये चैतन्यमानत ॥
सिद्धिस्तस्या अविषयाऽवच्छेदनियमान्वित. ॥४७॥

हेतुत्वेषु प्रकृत्यर्थेन्द्रियणामत्र निर्वृत्ति ॥
दृष्टादृष्टविभागाश्च व्यामगश्च न युज्यते ॥ ४८ ॥

अर्थः—बुद्धिनी सिद्धिने अर्थे आत्मा चिद्रूप छे, वली चैतन्य छे; तो पण निश्चय सहित अविच्छेदपणे ते बुद्धिनी जे सिद्धि ते अविषयी छे ॥ ४७ ॥ हेतुत्वे करी आत्माने प्रकृति अर्थने विषे इंद्रियोना निवृत्तिपणानो दीठा–अणदीठाना विभागथी प्रसंग घटतो नथी ॥ ४८ ॥

स्वप्ने व्याघ्रादिसंकल्पान्नरत्वानभिमानतः ॥
अहंकारश्च नियतव्यापारः परिकल्प्यते ॥ ४९ ॥
तन्मात्रादिक्रमस्तस्मात्प्रपंचोत्पत्तिहेतवे ॥
इत्थंबुद्धिर्जगत्कर्त्री पुरुषो न विकारभाक् ॥ ५० ॥

अर्थः—जेम स्वप्नने विषे व्याघ्रादिकना संकल्पथी अने पुरुषार्थना निराभिमानथी अहंकारने निश्चये व्यापाररूप कल्पिये छीये ॥ ४९ ॥ ते प्रपंचनी उत्पत्तिना हेतुने अर्थे तन्मात्रादिकनो क्रम छे. ए रीते जगतनी करनारी बुद्धि ठरे छे; माटे विकारनो भजनार आत्मा नथी ॥ ५० ॥

पुरुषार्थोपरागौ द्वौ व्यापारावेश एव च ॥
अत्रांशो वेद्म्यहं वस्तु करोमीति च धीस्ततः ॥५१॥
चेतनोऽहं करोमीति बुद्धेर्भेदाग्रहात्स्मयः ॥
एतन्नाशेऽनवच्छिन्नं चैतन्यं मोक्ष इष्यते ॥ ५२ ॥

अर्थः—सर्व प्रवृत्ति व्यापारने विषे एक पुरुषार्थ अने बीजो उपराग ए बे व्यापार भले छे. ते वारे हुं अंशे जाणुं छुं, हुं वस्तु करुं छुं- एवी कदाग्रही बुद्धि थाय छे ॥ ५१ ॥ हुं चेतन छुं, हुं करुं छुं एवो गर्व बुद्धिना हेतुथी प्रगटे छे. एवा गर्वनो नाश करी स्वभावे रह्युं चैतन्यपणुं मुक्तिने पामे छे ॥५२॥

कर्तृबुद्धिगते दु स्वसुखे पुंस्युपचारतः ॥
नरनाथे यथा भृत्यगतौ जयपराजयौ ॥ ५३ ॥
कर्त्ता भोक्ता च नो तस्मादात्मा नित्यो निरंजन. ॥
अध्यात्मादन्यथाबुद्धिस्तदा चोक्त महात्मना ॥५४॥

अर्थः—आत्माने विषे दुःख-सुख पामवु, एहनी कर्त्तापणानी बुद्धि जे थाय छे ते उपचारथी छे जेम सेवकनो जय अथवा पराजय ते राजा होवाथी जणाय छे ॥ ५३ ॥ इत्यादिक माटे आत्मा कर्त्ता भोक्ता नथी पण नित्य निरंजन छे, अने जे बुद्धि छे ते तो अध्यात्मथी जुदी छे एवु महात्मा कपिल मुनिए कहलु छे ॥ ५४ ॥

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वथा ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥ ५५ ॥
विचार्यमाण नो चारु तदेतदपि दर्शन ॥
प्रकृतिचैतन्ययोर्व्यक्त सामानाधिकरण्यत. ॥ ५६ ॥

अर्थ.—प्रकृतिना गुणे करी क्रियमाण जे कर्म तेनो हुं कर्त्ता छु, एम मने प्रकारे अहंकारे मूढ आत्मा माने छे ॥ ५५ ॥ एनो विचार करतां ए दर्शन पण रुडु नथी, केमके प्रगट बुद्धि प्रकृति अने चैतन्यनो सामानाधिकरणे विचार करता रुडु नथी जणातु ॥ ५६ ॥

बुद्धिः कर्त्री च भोक्त्री च नित्या चेन्नास्ति निर्वृत्तिः ॥
अनित्या चेन्न ससारः प्राग्धर्मादेरयोगत ॥५७॥
प्रकृतावेव धर्मादिस्वीकारे बुद्धिरेव का ॥
सुवचश्च घटादौ स्यादीदृग्धर्म्मान्वयस्तथा ॥५८॥

अर्थः—वळी तमे जो कर्त्ता, भोक्तापणे बुद्धि मानशो; पण जो ते बुद्धि नित्य छे तो मोक्ष नथी एटले मोक्ष ठरशे नहीं, अने जो बुद्धिने अनित्य मानशो तो पूर्व धर्मना अयोग्य थकी संसार ठरशे नही ॥ ५७ ॥ प्रकृतिने विषे धर्मादिकने अंगीकार कीधाथी बुद्धिने शुं कहेवी जोइये ? अने घटादिकने विषे एवा धर्मनो अन्वय ते सुखे कहेवो. इति तर्कवादः ॥ ५८ ॥

कृतिभोगौ च बुद्धेश्चेद्बंधो मोक्षश्च नात्मनः ॥

ततश्चात्मानमुद्दिश्य कूटमेतद्यदुच्यते ॥ ५९ ॥

पञ्चविंशतितत्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे रतः ॥

जटी मुंडी शिखी चापि मुच्यते नात्र संशयः॥६०॥

अर्थः—जो करवुं, भोगववुं बुद्धिने छे तो बंधमोक्ष आत्माने नथी, ते पण बुद्धिनेज जोइये; माटे आत्माने उद्देशीने नहीं समजवामां आवे तेने कूट वचन कवि कहे छे॥ ५९ ॥ पंचविंशतत्त्वनो जाण जे पुरुष छे ते कोई पण आश्रममां रत होय एटले जटाधर होय, अथवा मुंडावे, अथवा चोटी रखावे, तो पण ते संदेह विना संसारथी मूकाय एवुं कपिल मतवाला कहे छे ॥ ६० ॥

एतस्य चोपचारत्वे मोक्षशास्त्रं वृथाऽखिलं ॥

अन्यस्य हि विमोक्षार्थे न कोऽप्यन्यः प्रवर्त्तते ॥६१॥

कपिलानां मते तस्मादस्मिन्नैवोचिता रतिः ॥

यत्रानुभवसंसिद्धः कर्त्ता भोक्ता च लुप्यते ॥६२॥

अर्थः—ए रीते ए आत्माने विषे मोक्षने उपचारिपणे अंगीकार करे छे, तेनुं सकल मोक्षशास्त्र फोगट थाय छे; केमके

कोईने मोक्ष आपवा कोइ बीजो प्रवृत्त थाय नहीं ॥ ६१ ॥ जिहां अनुभवसिद्ध आत्मानु कर्त्तापणु तथा भोक्तापणु लोपे छे एटले मानता नथी, ते माटे एहवा कपिलना मतमां प्रीति करवी ते ठीक नथी ॥ ६२ ॥

नास्ति निर्वाणमित्याहुरात्मन. केऽप्यवधत ॥
प्राक् पश्चाद्युगपद्वापि कर्म्मसंधान्यवस्थिते. ॥ ६३ ॥

अनादिर्यदि संबंध इष्यते जीवकर्मणो· ॥
तदानंत्यान्न मोक्षः स्यात्सदात्माकाशयोगवत् ॥ ६४ ॥

अर्थ —केटलाक अबध मतवाला छे ते एम कहे छे के- आत्माने मोक्ष–निर्वाण नथी, केमके प्रथम के अथवा पछी समकाले आत्माने कर्मबंध नथी, तो मुक्ति शेनी होय ? ॥ ६३ ॥ जो जीवने तथा कर्मने अनादि संबंध मानिये तो आदि नही, तिहां अंत पण केम थाय ? माटे अनंतपणाना प्रसंगथी कोई काले मोक्ष न थाय, जेम आत्माथकी आकाश योग कदापि भिन्न न थाय ॥ ६४ ॥

तदेतदत्यसंबद्ध यन्मिथो हेतुकार्ययो ॥
मतानानादिता बीजाङ्कुरवत देहकर्मणो ॥ ६५ ॥

कर्त्ता कर्मान्वितो देहे जीव कर्माणि देहयुक् ॥
क्रियाफलोपभुक्त्वे दंडान्वितकुलालवत् ॥ ६६ ॥

अर्थ —एहवु बोले छे, ए वचन पण जूठु छे, केमके कारण कार्यने माहोमाह संबंध छे–जेम पुत्र पोत्रादिकनो अनादि संबंध थाय छे ते बीजना अंकुरनी परे छे, तेमज शरीर तथा कर्मनो पण अनादि संबंध छे ॥ ६५ ॥ कर्मे सहित जीव कर्त्ता-

पणे देहमां रह्यो छे, एवुं जे कहे छे ते पण जूठुं छे, जेम दंड सहित कुंभारनी परे क्रियानुं फल भोगवे ते पण असंबंध छे तेनी परे ॥ ६६ ॥

अनादिसंततेर्नाशः स्याद्बीजांकुरयोरिव ॥
कुक्कुट्यंडकयोः स्वर्णमलयोरिव वानयोः ॥ ६७ ॥
भव्येषु च व्यवस्थेयं संबंधो जीवकर्मणोः ॥
अनाद्यनंतोऽभव्यानां स्यादात्माकाशयोगवत् ॥६८॥

अर्थः—तमे कहो छो के अनादि संतति नाश न थाय तेनो तो नाश थतो देखीये छीयेः जेम बीज बळ्ये अंकुर न थाय अने अंकुरा नाश थये बीज नहीं थाय. कुकडी नाश थये इंडुं नाश पामे अने इंडानो नाश थये कुकडी नाश पामे. वळी अनादिनो सुवर्णथी मेल जुदो थाय छे. तेम आत्माथकी कर्म जुदां थाय छे ॥ ६७ ॥ ए रीते अनादि संतति जीवकर्मनो जे संबंध ते नाश थाय छे. ते भव्य जीवो आश्रयी छे. अने जेहने अनादि संतति टळती नथी ते अभव्य जीवो आश्रयी छे. आत्मा तो आकाशना योगनी परे छे ॥ ६८ ॥

द्रव्यभावे समानेऽपि जीवाजीवत्वभेदवत् ॥
जीवभावे समानेऽपि भव्याभव्यत्वयोर्भिदा ॥६९॥
स्वाभाविकं च भव्यत्वं कलशप्रागभावत: ॥
नाशकारणसाम्राज्याद्विनश्यन्न विरुध्यते ॥ ७० ॥

अर्थः—जेम द्रव्यनी रीते तो सर्वद्रव्य एकद्रव्यपणे तुल्य छे, पण ते द्रव्यमां भेद करीए तो जीव अजीव ए बे थाय; तेमज जीवपणे तो सर्व जीव सरिखा छे, पण भेद करतां भव्य

तथा अभव्य ए बे भेद थाय छे ॥ ६९ ॥ जेम घट उत्पत्ति पहेला माटी द्रव्य स्वाभाविकपणे छे अने माटीना नाशथी घट प्रगटे छे ते निरुद्ध नथी तेम स्वाभाविक भव्यपणे कर्मनी अनादि संततिना नाशरूप कारणना सामर्थ्यथी परमात्मापणु प्रगटे ते पण निरुद्ध नथी ॥ ७० ॥

भव्योच्छेदो न चैव स्याद्गुर्वानन्त्यान्नभोंशवत् ॥
प्रतिमादलवत् क्वापि फलभावेऽपि योग्यता ॥ ७१ ॥
नैतद्भूय वदामो यद्भव्य सर्वोऽपि सिध्यति ॥
यस्तु सिध्यति सोऽवश्य भव्य एवेति नो मत ॥७२॥

अर्थः—ए रीते भव्यपणानो उच्छेद न थाय, मोटा अनंतपणाथकी आकाशना अंशनी परे घट आरे आकाश पण आखु अने घट भागे आकाश खंड थयो, पण आकाश काई घट्युं नही, तेम कर्मना नाशथकी आत्मा अधिक थतो नथी जेम कोई ठेकाणे प्रतिमाना दलनी पेरे प्रतिमादल पाषाणथी निरूप फल उपजे तेम मोक्षनु उपजवु थाय ॥ ७१ ॥ अम एम कहेता नथी के सघला भव्य जीवो सिद्धि पामे, पण जे सिद्धि वरे तने निश्चय भव्य कहीए ए अमारो मत छे ॥ ७२ ॥

ननु मोक्षेऽपि जन्यत्वाद्विनाशिनी भवस्थितिः ॥
नैव प्रध्वसवत्तस्यानिधनत्वव्यवस्थितेः ॥ ७३ ॥
आकाशस्येव वैविक्त्या मुद्गरादेर्घटक्षये ॥
ज्ञानादे कर्मणो नाशे नात्मनो जायतेऽधिक ॥७४॥

अर्थः—मोक्षने विषे प्रगटथवापणु नथी अने भवनी स्थिति नाशवती छे, पण मोक्षमा अनंतपणानी स्थिति छे

माटे मुक्तिनो नाश नथी ॥ ७३ ॥ जेम मोगरे करी घडो भांग्यो, अने घडाने क्षये आकाश जुदुं थयुं, पण वध्युं नही तेम ज्ञानथी कर्मनो नाश थाय, पण आत्मा अधिक थाय नहीं ॥ ७४ ॥

न च कर्माणुसंबंधान्मुक्तस्यापि न मुक्तता ॥
योगानां बंधहेतूनामपुनर्भवसंभवात् ॥ ७५ ॥
सुखस्य तारतम्येन प्रकर्षस्यापि संभवात् ॥
अनंतसुखसंवित्तिर्मोक्षः सिध्यति निर्भयः ॥ ७६ ॥

अर्थः—जिहां मूलथीज कर्मपरमाणुनो संबंध नथी, अने जे मुकाणा तेने कांइ मुकावापणुं नथी तथा मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ए चार बंधहेतुना योग छे, तेनुं फरी थवापणुं नथी, तेहने सिद्धि कहिये ॥ ७५ ॥ सुखनुं तारतम्य तथा ज्ञाननी उत्कृष्टता प्रगट थयेथी एटले अनंत सुख जाणवाथी निर्भयपणे जे सिद्धि तेनुं नाम मोक्ष छे एम कहीये ॥ ७६ ॥

वचनं नास्तिकाभानां मात्मसत्तानिषेधकम् ॥
भ्रांतानां तेन नादेयं परमार्थगवेषिणा ॥ ७७ ॥
न मोक्षोपाय इत्याहुरपरेनास्तिकोपमाः ॥
कार्यमस्ति न हेतुश्चेत्येषा तेषां कदर्थना ॥ ७८ ॥

अर्थः—माटे नास्तिक मतवालानां वचन आत्मसत्तानां निषेधक छे, ते भ्रम चित्तवालाये आदरवां नही. अथवा नास्तिक मतवालानां भयनां वचन छे, एम जाणी आदरवां नही. जे परमार्थनो गवेषक होय तेणे छांडवां ॥ ७७ ॥ हवे वली बीजा नास्तिक मतने मलताज मतवाला छे. तेनुं कहेवुं एम छे के मोक्षनो उपाय नथी. एटले कार्य जे मोक्ष ते तो छे, पण तेनुं कारण जे उपाय ते नथी. एम माने छे तेमने पण विटंवना छे॥ ७८॥

अकस्मादेव भवतीत्यलीक नियतावधेः ॥
कदाचित्कस्य दृष्टत्वाद्भापे तार्किकोऽप्यद.॥७९॥
हेतुभूतनिषेधाना स्वानुपाख्यविधिर्न च ॥
स्वभाववर्णना नैवमवधेर्नियतत्वतः ॥ ८० ॥

अर्थः—कोइक तो मणचिंतव्यो अकस्मात् मोक्ष थाय छे एम कहे छे ए पण जूठ्ठ छे नियत अनधिमर्यादाज छे. जे माटीना पिंडथी घट निपजे छे, ते कदाचित् दीठुं छे तेहने तार्किकशास्त्रवाला कहे छे जे अमुक वखतमाज पूरु थाशे एवो काई नियम नथी ॥ ७९ ॥ हेतुभूत मोक्षनो निषेध नथी पोतानो अनुपकथनीय एटले पोताने बोलवु नही एहवो जे विधि ते पण नथी, अने स्वभाव वर्णन करवु, स्तुति करवी ते नथी, केमके ए सर्वनी अवधि छे एटले अवधिएज मोक्ष थाशे, ते माटे मोक्षनु साधन करवु ते जूठ्ठ छे, एम कहे छे ॥ ८० ॥

न च सार्वत्रिको मोक्ष. ससारस्यापि दर्शनात् ॥
न चेदानी न तद्व्यक्तिर्व्यंजको हेतुरेव यत् ॥ ८१ ॥
मोक्षोपायोऽस्तु किं त्वस्य निश्चयो नेति चेन्मत ॥
तत्र रत्नत्रयस्यैव तथाभावविनिश्चयात् ॥ ८२ ॥

अर्थः—सर्वत्रमोक्ष नथी, केमके जे हमणा नथी तेनी प्रगटता पण नथी, अने ससार तो प्रत्यक्ष देखाय छे, माटे जेहनो जे हेतु छे तेज प्रगट नथी, तो तेहनो सशय छे ॥८१॥ मोक्षनो उपाय छे किंवा नथी ? ए वातनो निश्चय नथी, माटे ए मत पण जूठो छे मोक्षनो हेतु तो रत्नत्रयनी परे, तेमज भावे निश्चयथी जाणिये ॥ ८२ ॥

भवकारणरागादिप्रतिपक्षमदः खलु ॥
तद्विपक्षस्य मोक्षस्य कारणं घटतेतरां ॥ ८३ ॥
अथ रत्नत्रयप्राप्तेः प्राक्कर्म्मलघुता यथा ॥
परतोऽपि तथैव स्यादिति किं तदपेक्षया ॥ ८४ ॥

अर्थः—रत्नत्रयी जे छे ते संसारनुं कारण जे रागादिक तेहना शत्रु छे, अने संसाररूप कार्यनो शत्रु मोक्ष छे, माटे मोक्षनुं कारण जे उपाय, ते घटे छे; ॥ ८३ ॥ केमके रत्नत्रयनी प्राप्ति थयाथकी पूर्वभवना कर्मनी जेवी लघुता थाय तो बीजाथकी पण तेमज थाय, ए अपेक्षाये जो अवधि नथी तोपण शुं थयुं ? ॥ ८४ ॥

नैवं यत्पूर्वसेवातो मृद्वीतो साधनक्रिया ॥
सम्यक्त्वादिक्रिया तस्माद् दृढैव शिवसाधने ॥८५॥
गुणाः प्रादुर्भवंत्युच्चैरथवा कर्मलाघवात् ॥
तथाभव्यतया तेषां कुतोऽपेक्षानिवारणं ॥ ८६ ॥

अर्थः—जे पूर्वसेवाथकी ते वंचनाबोलनारूपथी, रुजुताथी, साधनक्रियामंदरूप तेवी न होय, माटे समकितादिकक्रिया ते मोक्षसाधनमां दढ छे ॥ ८५ ॥ अथवा कर्मना लघुतापणाथकी मोटा जे गुण ते प्रगट थाय छे; ते प्रकारे तेनो भव्यतापणे करीने मोक्ष छे; पण मोक्षनी अपेक्षा वारी नथी. ॥ ८६ ॥

तथाभव्यतयाक्षेपाद्गुणा न च न हेतवः ॥
अन्योऽन्यसहकारित्वाद् दंडचक्रभ्रमादिवत् ॥८७॥
ज्ञानदर्शनचारित्राण्युपायास्तद् भवक्षये ॥
एतन्निषेधकं वाक्यं त्याज्यं मिथ्यात्ववृद्धिकृत् ॥८८॥

अर्थः—तेम भव्यपणाना तिरस्कारथकी पुनर्हेतुभूत

गुण न होय, केमके परस्पर सहकारी छे माटे दड, चक्र, भ्रमणनी पेरे भव्यतापणे ज्ञानादिक गुण प्रगट थाय ते गुण मोक्षनो हेतु छे, ए उत्तर कह्यो छे ॥ ८७ ॥ माटे ससारना क्षयरूप जे उपाय ते ज्ञान, दर्शन अने चारित्र छे तेनो जे निषेध करे अने मिथ्यात्वनी वृद्धि करे तेनु वचन त्याग करवु ॥ ८८ ॥

मिथ्यात्वस्य पदान्येतान्युत्सृज्योत्तमधीधन· ॥
भावयेत्प्रातिलोम्येन सम्यक्त्वस्य पदानि षट् ॥ ८९ ॥

अर्थः—ए पूर्वे कह्या जे सर्व शास्त्रना मतवाद ते मिथ्यातना ठेकाणा छे तेने छाडीने बुद्धिरूप धनतु ग्रहण करीने मिथ्यात्वने प्रतिकूलपणे जे समकितना छ पद छे तेने भावना ॥ ८९॥

इति मिथ्यात्वत्यागाधिकार त्रयोदश समाप्त ॥



कदाग्रहत्यागाधिकार-

मिथ्यात्वदावानलनी रवाहम-
सद्ग्रहत्यागमुदाहरंति ॥
अतो रतिस्तत्र बुधैर्विधेया,
विशुद्धभावैः श्रुतसारवद्भिः ॥ १ ॥

अर्थः—मिथ्यात्वरूप जे दावानल तेने शमाववाने मेघ समान एवा मिथ्यात्व कदाग्रहरूप प्रसारनो त्याग पंडिते कह्यो छे. जे कदाग्रहना त्यागने विषे रति करवी ते तो जे पंडित होय, वली शुद्ध भाववालो होय अने सिद्धांतना सारनो जाण होय तेणे कदाग्रहने छांडवो ॥ १ ॥

असद् ग्रहाग्निज्वलितं यदंतः,
क तत्र तत्त्वव्यवसायवल्लिः ॥
प्रशांतिपुष्पाणि हितोपदेशं-
फलानि चान्यत्र गवेषयंतु ॥ २ ॥

अर्थः—जेनुं अंतःकरण अछता पदार्थना कदाग्रहरूप अग्नियें बल्युं छे तेना हृदयमां तत्त्व—व्यापाररूप वेली केम करी ऊगे ? अने समतारूप फूल केम फूटे ? तथा हित उपदेशरूप फल क्यांथी होय ? ते माटे कदाग्रहने तजीने बीजे ठेकाणे तत्त्वनी खोज करवी ॥ २ ॥

अधीत्य किंचिच्च निशम्य किंचिद्-
सद्ग्रहात्पंडितमानिनो ये ॥
मुखं मुखं चुंबितमस्तु वाचो,
लीलारहस्यं तु न तैर्जगाहे ॥ ३ ॥

अर्थ.—काइक भणीने तथा काइक शास्त्र सामळीने आत्माने पंडितपणु मानता एवा मूर्ख कदाग्रहना धरनार ते पोतानु मुखचुंबित जे वाचा तेने सुख माने, पण ते मुखे करी लीलारूप रहस्य जे ज्ञान त अवगाहे नही ॥ ३ ॥

असद्ग्रहोत्सर्पदतुच्छदर्पै-
र्बोधाशताधीकृतमुग्धलोकै. ॥
विडंबिता हत जडैर्वितडा-
पांडित्यकडूलतया त्रिलोकी ॥ ४ ॥

अर्थ.—जेने कदाग्रहथकी घणो गर्व वध्यो छे, अने स्वकल्पित ज्ञानने अशे करी भनिक जीवोने जेणे आधळा कीधा छे, एहवा जड प्राणीये पडिताइनी खरजे करीने हत इति खेदे पांडुमहारयकी त्रण लोकने वितडा कहता डाकडमाले विटबना करी छे ॥ ४ ॥

विधोर्विवेकस्य न यत्र दृष्टि-
स्तमोघन तत्त्वरविर्विलीन. ॥
अशुक्लपक्ष स्थितिरेव नूनम-
सद्ग्रहास्थूलमतिर्मनुष्य· ॥ ५ ॥

अर्थ —जेना हृदयमा विवेकरूप चद्रनी दृष्टि नथी तथी घणो अधकार छे, अने तत्त्वरूप सूर्य अस्त पाम्यो छे तेथी त कृष्णपक्षनी निश्चयत स्थितिमा छे, केमके तन कदाग्रह छल्यो छे ॥ ५ ॥

कुतर्कदात्रेण लुनाति तत्त्ववल्ली-
रसानमिचति दोषवृक्ष ॥

क्षिपत्यधः स्वादुफलं समाख्य-
　　मसद्‌ग्रहः कोऽपि कुहूविलासः ॥ ६ ॥

अर्थः—जे कदाग्रही छे ते कुविचाररूप दातरडे करी तत्त्वरूप वेलीने छेदे छे, अने पापरूप वृक्षने पाणी पाय छे; तथा समतारूप अमृत फलने हेठुं धूळमां नाखे छे; एवो कोई कदाग्रह-रूप अमावास्यानी रात्रीनो विलास छे ॥ ६ ॥

असद्‌ग्रहग्रावमये हि चित्ते,
　न क्वापि सद्‌भावरसप्रवेशः ॥
इहांकुरश्चित्तविशुद्धबोधः
　　सिद्धांतवाचां बत कोऽपराधः ॥ ७ ॥

अर्थः—ते कदाग्रही माणसनुं चित्त पथ्थर जेवुं छे. जेम पथ्थरने पाणी भेदे नही तेम जिनवाणीरूप रस ते कदाग्रही माणसमां प्रवेश करे नही, तेथी तेना चित्तरूप वृक्षमां शुद्ध बोध-रूप अंकुर प्रगटे नही; तो तेमां सिद्धांतनी वाणीनो शो वांक? ॥७॥

व्रतानि चीर्णानि तपोऽपि तप्तं,
　　कृता प्रयत्नेन च पिंडशुद्धिः ॥
अभूत्फलं यत्तु न निन्हवानाम-
　　सद्‌ग्रहस्यैव हि सोऽपराधः ॥ ८ ॥

अर्थः—जो पंचमहाव्रत पाळ्यां, उग्र तप कीधां, उद्यमे करी बेंतालीस दोष रहित आहार लीधो, तेम छतां पण जे निन्हवादिक मुक्तिरूप फळ न पाम्या ते अपराध सर्व कदा-ग्रहनोज छे ॥ ८ ॥

स्थालं स्वबुद्धिः सुगुरोश्च दातु-
　　रुपस्थिता काचन मोदकाली ॥

असद्ग्रहः कोऽपि गले ग्रहीता
तथापि भोक्तु न ददाति दुष्टः ॥ ९ ॥

अर्थ.—पोतानी बुद्धिरूप थालमा काइक शुद्ध ज्ञानरूप मोदकने गुरु पीरसता उभ्या, पण कदाग्रहे आवी गळुं पकडयु, तेथी जमाय्रु नही, एवो कदाग्रह दुष्ट छे ॥ ९ ॥

गुरुप्रसादीक्रियमाणमर्थ
गृह्णाति नासद्ग्रहवास्ततः किं ? ॥
द्राक्षा हि साक्षादुपनीयमानाः,
क्रमेलकः कटकभुङ् न भुक्ते ॥ १० ॥

अर्थ.—जो गुरु प्रसन्न थइने अर्थ–उपदेश आपे छे, तोपण कदाग्रही पुरुष ते उपदेशने ग्रहतो नथी, तेथी शु थयु ? उपदेश तो काई खोटो नथी ए तो जेम प्रगटपणे मीठी द्राक्ष उट आगल मुकिये, तोपण तेने तजीने उट काटाने खाय छे॥१०॥

असद्ग्रहात्पामरसगति ये,
कुर्वति तेषा न रतिर्बुधेषु ॥
विष्टासु पुष्टा किल वायसा नो
मिष्टान्ननिष्ठा प्रसभ भवति ॥ ११ ॥

अर्थ.—जे प्राणी कदाग्रह करी मूर्खनी सगत करे छे तेने पडितनी सोबत गमती नथी जेम कागडा विष्टाभोगी छे, तेने मधुर आहारनी इच्छा थती नथी तेनी पेरे ॥ ११ ॥

नियोजयत्येव मति न युक्तौ,
युक्ति मतौ यः प्रसभ नियुक्ते ॥

असद्ग्रहादेव न कस्य हास्योऽ-
जले घटारोपणमादधानः ॥ १२ ॥

अर्थः—जेम कोई मूर्ख नदीना जल उपर घडो भरीने मूके, तेने जोईने कोण हसे नहीं ? केमके अगाध निर्मल जलना विस्तार आगल एक तुच्छ मात्र जले भरेलो घडो ते शी गण-त्रीमां छे ? तेम गुरुना मुखथी शास्त्रयुक्ति सांभलीने तेमां पोतानी मति जोडे नही अने पोतानी युक्तिवडे ऊलटुं बोले, जे तमारी युक्तिने नमस्कार होजो ! एवा कदाग्रहीने देखी कोण हांसी न करे ? इहां गुरुनो उपदेश ते नदीना जल तुल्य छे. तेना आगल कदाग्रही घट केम नीभे ? ॥ १२ ॥

असद्ग्रहो यस्य गतो न नाशं,
न दीयमानं श्रुतमस्य शस्यम् ॥
न नाम वैकल्यकलंकितस्य,
प्रौढा प्रदातुं घटते नृपश्रीः ॥ १३ ॥

अर्थः—जेम कोइ घेला आदमीने महोटी राज्यलक्ष्मी आपवी घटे नही, तेम जेहने कदाग्रह गयो नथी तेवा प्राणीने धर्मोपदेश आपवो योग्य नथी ॥ १३ ॥

आमे घटे वारि धृतं यथा सद्विनाशयेत्स्वं च घटं च सद्यः॥
असद्ग्रहग्रस्तमतेस्तथैव श्रुतात्प्रदत्तादुभयोर्विनाशः ॥

अर्थः—जेम काचा घडामां पाणी भरवाथी घडानो तेमज पाणीनो नाश थाय छे, तेमज कदाग्रही माणसने शास्त्र शीखवतां शास्त्रनो तेमज तेनो पोतानो बंनेनो विनाश थाय छे ॥ १४॥

असद्ग्रहग्रस्तमतेः प्रदत्ते हितोपदेशं खलु यो विमूढः ॥
शुनी शरीरे स महोपकारी कस्तूरिकालेपनमादधाति ॥

अर्थः—जेम विष्टाये भर्युं मुख देखी कुतरीने उपकार करवा कस्तूरीनो लेप करे ते मूर्ख जाणवो, तेम कदाग्रही प्राणीने उपकार करवाने हितोपदेश आपे ते पण मूर्ख जाणवो ॥ १५ ॥

कष्टेन लब्ध विशदागमार्थं ददाति योऽसदग्रहदूषिताय।
स खिद्यते यत्नशतोपनीत बीज वपन्नूषरभूमिदेशे१६

अर्थः—जेम घणा उद्यमे मनाजना बीज भेगा करी उखर जमीनमा वावे, ते आगल जतां सदाय खेद पामे छे, तेम पंडित प्राणी गुरुनो विनय करी कष्टे करी निर्मल आगम सिद्धांतना अर्थने पाम्यो होय, ते जो कदाग्रहे करी दुषित प्राणीने तेहनो अर्थ शीखववानो उद्योग करे तो तेथी अंते खेद पामे छे ॥ १६ ॥

शृणोति शास्त्राणि गुरोस्तदाज्ञा,
करोति नासद्ग्रहवान्‌ कदाचित्‌ ॥
विवेचकत्व मनुते च सार
ग्राही भुवि स्वस्य च चालनीवत्‌ ॥ १७ ॥

अर्थः—जो गुरु पासेथी शास्त्र सामले तो पण कदाग्रही जे होय ते कोई काले ते गुरुनी आज्ञा न माने. ते पोतानी मळे पोते एहवु माने, जे हुं सर्व पदार्थनी बराबर वहेंचण करुं छुं, पण ते तो जेम पृथ्वीमा चालणीमाथी चाळीने सारभूत वस्तु कहाडी लेइने बाकी असार धान्य रह छे तेहनो ते ग्राही छे ॥ १७ ॥

दमाय धातुर्यमथाय शास्त्र प्रतारणाय प्रतिभापटुत्व॥
गरीय धीरस्यमहोगुणानाम सद्ग्रहस्य विपरीतसृष्टि

अर्थ —माट अहो इति आश्चर्य । विधाताये कदाग्रही

माणसमां विपरीत गुण सृज्या छे! जेवा देव तेवी पात्री, अने मेघजल सर्पना मुखमां जेम विषतुल्य थइ जाय छे, ए कहेवतने विधाताये खरी पाडी छे, केमके जे कदाग्रहीनी चतुराइ ते कपटने अर्थे थाय, अने शास्त्र भणवुं ते मदने अर्थे थाय, तथा बुद्धि, डहापण अने उपदेश ते लोकने ठगवाना साधनने अर्थे थाय अने धैर्यपणुं ते गर्व करवाने अर्थे थाय ॥ १८ ॥

असदृग्रहस्थेन समं समंता-
त्सौहार्दभृद्दुःखमवैति तादृग् ।
उपैति यादक्कदली कुवृक्ष-
स्फुटत्त्रुटत्कंटककोटिकीर्णा ॥ १९ ॥

अर्थः—जेम केलनुं वृक्ष ते कंथेरादिक वृक्षने संगे कांटाये करी कोराय छे तेम जे प्राणी कदाग्रही साथे मित्राई करे ते अंते दुःखनो विपाक पामे छे ॥ १९ ॥

विद्या विवेको विनयो विशुद्धिः,
सिद्धांतवाल्लभ्यमुदारता च ॥
असदृग्रहाद्यान्ति विनाशमेते,
गुणास्तृणानीव कणाद्दवाग्नेः ॥ २० ॥

अर्थः—जेम अग्निथी वासना समूह भस्मीभूत थाय छे तेम विद्या, विनय, विवेक, विशुद्धि अने सिद्धांत उपर वलभतापणु अने उदारता ए सर्व कदाग्रहथी नाश पामे छे ॥ २० ॥

स्वार्थः प्रियो नो गुणवांस्तु कश्चिन्-
मूढेषु मैत्री न तु तत्त्ववित्सु ॥
असदृग्रहापादितविश्रमाणां
स्थितिः किलासावधमाधमानां ॥ २१ ॥

अर्थ:—जे कदाग्रहीनी सोबते रह्या तेने स्वार्थ प्रिय छे ते प्राणी अवगुणवंत, मूर्ख साथे मित्राई करे अने पंडित साथे मित्राइ करे नहीं, एवा कदाग्रहीनी सोबते रह्या, जे अधममा अधम नीच प्राणी तेहनी ए स्थिति छे, ते कही ॥ २१ ॥

इद विदस्तत्त्वमुदारबुद्धि-
रसद्ग्रह यस्तृणवज्जहाति ।
जहाति नैन कुलजेव योषिद्-
गुणानुरक्ता दयिता यशःश्री ॥ २२ ॥

अर्थः—एम जाणीने तत्त्वने ओळखनार मोटी बुद्धि-वाला प्राणी कदाग्रहने तृणखलानी पेठे छांडे, तेने जेम कुलवती स्त्री भरतारने तजती नथी तेम गुणरागी एवी जे यश-कीर्ति-रूप लक्ष्मी स्त्री छांडती नथी ॥ २२ ॥

इति कदाग्रहत्यागाधिकार चतुर्दश ॥
इति महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिविरचिते
अध्यात्मसारप्रकरणे चतुर्थ प्रबंध ॥



योगाधिकारः

असद्‍ग्रहव्ययाद्वांतमिथ्यात्वविषयीप्रुषः ॥
सम्यक्त्वशालिनोऽध्यात्मशुद्धेर्योगः प्रसिध्यति ॥१॥
कर्मज्ञानविभेदेन स द्विधा तत्र चादिमः ॥
आवश्यकादिविहितः क्रियारूपः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥

अर्थः—हवे कदाग्रहना नाशथी मिथ्यात्वरूप अंधकारनो विषय गयो छे जेमांथी एहवा समकिते करी उज्ज्वल अंतःकरण थयां छे जेहना एवा जे प्राणी तेमने अध्यातमनी शुद्धिथकी योग प्रसिद्ध रीते प्रगटे॥ १ ॥ ते योगना बे भेद छे. एक कर्मयोग अने बीजो ज्ञानयोग. तेमां कर्मयोग ते आवश्यकादिक जे क्रिया करवी ते रूप कह्यो छे ॥ २ ॥

शारीरस्पंदकर्मात्मा यदयं पुण्यलक्षणं ॥
कर्मातनोति सद्रोगात्कर्मयोगस्ततः स्मृतः ॥ ३ ॥
आवश्यकादिरागेण वात्सल्याद्भगवद्‍गिरां ॥
प्राप्नोति स्वर्गसौख्यानि न यांति परमं पदं ॥ ४ ॥

अर्थः—शरीरचेष्टारूप ते कर्मात्मा कहिये, ए योग पुण्यरूप छे. ते रुडा भोग थकी कर्मने विस्तारे छे. ते माटे एने कर्मयोग कहिये ॥ ३ ॥ आवश्यकादिक क्रियाने रागे तथा जिनवाणीने विलासे करीने स्वर्गना सुखने पामे; पण ए योगे मुक्तिपदने न पामे ॥ ४ ॥

ज्ञानयोगस्तपः शुद्धमात्मरत्येकलक्षणं ॥
इंद्रियार्थोन्मनीभावात्स मोक्षसुखसाधकः ॥ ५ ॥
न परप्रतिबंधोऽस्मिन्नल्पोऽप्येकात्मवेदनात् ॥
शुभं कर्मापि नैवात्र व्याक्षेपायोपजायते ॥ ६ ॥

अर्थः—बीनो ज्ञानयोग तेहने कहिये, जे तप शुद्धिपणे आत्माने विषे रति पामे, ते एक लक्षण अने इंद्रियोना विषयथी दूर रहेवु ते बीजुं, एवा लक्षणे युक्त जे योग तेने पामेलो पुरुष ते मोक्षसुखने साधे ॥ ५ ॥ एक आत्मज्ञानयोगना ज्ञानमा बीजो प्रतिबंध नथी, अने जे कर्मथी मोक्षमा जता वार लागे ते शुभ कर्म पण नथी ॥ ६ ॥

न ह्यप्रमत्तसाधूना क्रियाप्यावश्यकादिका ॥
नियता ध्यानशुद्धत्वाद्यदन्यैरप्यद: स्मृत ॥ ७ ॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—अप्रमत्तसाधुने आवश्यक प्रमुख जे क्रिया तेने पण करवाने विषे प्रतिबंध नथी, केमके तेने ध्यानरूप शुद्धि छे; माटे ॥ ७ ॥ वलि अन्य दर्शनमा पण श्रीकृष्ण कहे छे के–ह अर्जुन ! जे आत्मसुखमा तृप्त छे तेने आत्माने विषे ज रति छे, अने सतोष छे जे आत्म सुखमा सतुष्ट छे, एवो जे जीव तेने काई पण कर्तव्य नथी ॥ ८ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय: ॥ ९ ॥
अवकाशो निषिद्धोऽस्मिन्नरत्यानदयोरपि ॥
ध्यानावष्टभत क्वास्तु तत्क्रियाणा विकल्पन ॥१०॥

अर्थ:—ते प्राणीने कार्य करवे अर्थ नथी, तेमज न करवाथी खोट पण नथी; तेने सर्व भूतने विषे काई प्रयोजन नथी ॥ ९ ॥ ए ठकाणे अरतिनो अने आनदनो अवकाश नथी, केमके ध्याननी स्थिरताथी ते क्रियानो विकल्प पण केम होय ? ॥ १० ॥

देहनिर्वाहमात्रार्था याऽपि भिक्षाटनादिका ॥
क्रिया सा ज्ञानिनोऽसंगान्नैव ध्यानविघातिनी ॥११॥
रत्नशिक्षादृगन्या हि तन्नियोजनदृग्यथा ॥
फलभेदात्तथाचारक्रियाप्यस्य विभिद्यते ॥ १२ ॥

अर्थः—देह-निर्वाहरूपे मुनिने गोचरी प्रमुख जे क्रिया ते क्रिया ज्ञानीना असंगानुष्ठानथी ध्यानमां विघ्न करे नहीं ॥ ११ ॥ रत्नमाणिक्यपरीक्षाना ग्रंथ जुदा अने नजर-परीक्षा पण जुदी. ग्रंथ भणीने जेम नजर-परीक्षामां फलभेदथी प्रवर्त्ते छे, तेम आचारक्रिया पण फलभेदे करी भिन्न भिन्न छे, एटले भेदवंती छे ॥ १२ ॥

ध्यानार्था हि क्रिया सेयं प्रत्याहृत्य निजं मनः ॥
प्रारब्धजन्मसंकल्पादात्मज्ञानाय कल्पते ॥१३॥
स्थिरीभूतमपि स्वांतं रजसा चलतां व्रजेत् ॥
प्रत्याहृत्य निगृह्णाति ज्ञानी यदिदमुच्यते ॥१४॥

अर्थः—जो पोताना मनने पाछुं वाळीने जन्मसंकल्पथी मांडीने आत्मज्ञान भणी कल्पिये तो ते क्रिया ध्यानरूप छे॥१३॥ स्थिर थयेलुं जे मन ते पण रजोगुणे करी चपलताने पामे. तेहने पाछुं वाली तेनो निग्रह करे तेने ज्ञानी कहेवो ॥ १४ ॥

शनैः शनैरुपशमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ।१५
यतो यतो निःसरति मनश्चंचलमस्थिरं ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ १६ ॥

अर्थः—हे अर्जुन ! मनने धीरे धीरे धीरजवडे अने बुद्धिवडे स्थिर करवुं, पछी ते मन जेवारे आत्माना स्वरूपने

निप जाय तेवारे काइ बीजु चिंतन करवानी जरूर नथी ॥ १५ ॥ मन चचल ने अस्थिर छे तेने ज्या ज्या जाय त्या त्याथी पाछु वाळीने आत्मानी साथे वश करी राखवु ॥ १६ ॥

अत एवादृढस्वात कुर्याच्छास्त्रादिना क्रिया ॥
सकला विषयप्रत्याहरणाय महामति. ॥ १७ ॥
श्रुत्वा पैशाचिकी वार्त्ता कुलवध्वाश्च रक्षण ॥
नित्य सयमयोगेषु व्यापृतात्मा भवेद्यति· ॥ १८ ॥

अर्थ'—एम परदर्शनमा पण कह्यु छे, माटे ज्या सुधी मन स्थिर न होय त्या सुधी शास्त्रोक्त क्रिया जेटली करिये तेटली सर्व सफल न थाय जेवारे विषयत्याग थाय तेवारज सफल थाय, माटे जे प्राणी मनने विषयथी वाळवामा उजमाल रहे ते महामतिवाळा जाणवा ॥ १७ ॥ जेम एक शेठना पुत्र देशा-तर गयो तेना घरनी सामेना एक वृक्ष उपर एक भूत रहतो हतो ते छल पामी, पुत्रनु रूप धारण करी तेनी स्त्री साथे लागु पड्यो एम करता ते शेठनो दीकरो पोताने घर आव्यो तेवारे घरमा लडाई चालवा लागी पछी रानदरबार इन्सा-फने वास्ते गया तिहाथी भूतने घरमाथी काढवानु ठर्यु, पण ते नीकळ्यो नहीं ने कहेवा लाग्यो के हु जवानो नथी, हु पण पुत्र छु ए वात सामळी वहुने लाज लागी छेल्ले शेठने भूतने वैरी साथे युद्ध करवानु काम भळाव्यु, अने वहुने घरनो धधो भळाव्यो, ए रीत अनाचार टाळ्या अने वहुने राखी, तम मुनिये पण निरतर सयमना योगे आत्माने राखवा ॥ १८ ॥

या निश्चयैकलीनाना क्रिया नातिप्रयोजना· ॥
व्यवहारदशास्थाना ता एवातिगुणावहा· ॥ १९ ॥

कर्मणोऽपि हि शुद्धस्य श्रद्धामेधादियोगतः ॥
अक्षतं मुक्तिहेतुत्वं ज्ञानयोगानतिक्रमात् ॥ २० ॥

अर्थः—जेनुं मन निश्चयमां लीन छे तेने क्रियानुं प्रयोजन नथी. व्यवहारदशावालाने क्रिया ते अतिगुणकारी छे ॥ १९ ॥ शुभ कर्मथी अने श्रद्धाबुद्धिना योगथी अखंडपणे जे ज्ञानयोगने उल्लंघे नहीं तो तेने मुक्तिनो हेतु प्रगट थाय ॥२०॥

अभ्यासे सत्क्रियापेक्षा योगिनां चित्तशुद्धये ॥
ज्ञानपाके शमस्यैव यत्परैरप्यदः स्मृतं ॥ २१ ॥
आरुरुक्षो मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—जे रुडी क्रियानी अपेक्षाये अभ्यास करे छे ते योगीश्वरने चित्तशुद्धिने अर्थे ज्ञान परिपक्व करवाने उपशम कह्युं छे एम अन्य दर्शनीओ पण कहे छे ॥ २१ ॥ हे अर्जुन ! योग पामवाने इच्छता जे योगी छे तेहने कर्म तो एक कारण छे. ज्यारे सर्व संकल्प शमी जाय त्यारे तेने ज्ञानयोगी कहियें. ते माटे ज्ञानारुढने समता तेज कारण छे ॥ २२ ॥

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्म्मस्वनुषज्यते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ २३ ॥
ज्ञानं क्रियाविहीनं न क्रिया वा ज्ञानवर्जिता ॥
गुणप्रधानभावेन दशाभेदः किलैनयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—ज्यारे विषयथी विरमे, कर्मने विषे संलग्न न थाय, ज्यारे सर्व संकल्प शमी जाय त्यारे तेहने योगारूढ कहियें ॥ २३ ॥ क्रिया विना ज्ञान नथी, अने ज्ञान विना क्रिया नथी.

ए बेमा क्रिया ते गौण छे अने ज्ञान ते मुरय छे, एवो ए बेनो दिशीभेद कह्यो छे ॥ २४ ॥

ज्ञानिना कर्मयोगेन चित्तशुद्धिमुपेयुपा ॥
निरवद्यप्रवृत्तीना ज्ञानयोगौचिती तत• ॥ २५ ॥
अत एव हि सुश्रद्धाचरणस्पर्शनोत्तरम् ॥
दु पालश्रमणाचारग्रहण विहित जिनै. ॥ २६ ॥

अर्थः—कर्मयोगे करीने मनशुद्धि पामेला अने निर्दोप विहारी एहवा जे ज्ञानी तेने ज्ञानयोग मुरूयपणे सेवनो उचित छे एवो वीतरागनो मत छे ॥ २५ ॥ ए माटे रुडी श्रद्धाये देश-विरतिरूप चारित्रनो स्पर्श कीधा पछी दु खे पाली शकिये एवा मुनिनो आचार जे सर्वविरतिपणु छे ते तेनो एटले प्रभुये पछी सयम लेवु कह्यु छे ॥ २६ ॥

एकोद्देशेन सवृत्त कर्म यत्पौर्वभूमिक ॥
दोपोच्छेदकर तत्स्यादज्ञानयोगप्रवृद्धये ॥ २७ ॥
अज्ञानिना तु यत्कर्म न ततश्चित्तशोधन ॥
योगादेरतथाभावान म्लेच्छादिकृतकर्मवत् ॥ २८ ॥

अर्थ —कोइएक देश आश्रीने पूर्वभूमि ते पूर्वभवरूप सवृत्तपणे उद्देशीने एटले देशथकी जे पहला वृत्त आदर्या एहवी जे क्रिया ते पण दु खने टालनारी छे वली ज्ञानयोगनी वृद्धि-कर्ता थाय छे ॥ २७ ॥ अने अज्ञानीनी जे क्रिया ते चित्तशुद्धि करवाने अर्थे नहीं थाय, केमके तेहने ज्ञानयोगनो अभाव छे, माटे म्लेच्छना करेला कार्य सरखी ते जाणवी ॥ २८ ॥

न च तत्कर्मयोगेऽपि फल सकल्पवर्जनात् ॥
सन्यासो ब्रह्मबोधाद्वा सावद्यत्वात्स्वरूपतः ॥२९॥

नो चेदित्थं भवेबुद्धिर्गोहिंसादेरपि स्फुटा ॥
श्येनाद्वा वेदविहिताद्विशेषानुपलक्षणात् ॥ ३० ॥

अर्थः—तो तेवा कर्मयोगे पण फल नथी. फल तो संकल्प वर्जे तेवारेज थाय छे. आत्मज्ञान विना त्याग पण नथी, अने एनुं स्वरूप सावद्य छे, माटे ब्रह्म जे ज्ञान तेना बोधथकी फल प्रगटे ॥ २९ ॥ जो कदापि एम बुद्धि न होय तेवारे तो गोहिंसादिकथकी म्लेच्छादिकने पण प्रगट शुद्धि होय, तथा सिंचाणाना वधथी वेदमां पशुयाग कह्या, ते थकी हिंसक कर्मना योगे वेदीयानां अने म्लेच्छनां एक सरखां ज लक्षण छे; कांई विशेष नथी ॥ ३० ॥

सावद्यकर्म नो तस्मादादेयं बुद्धिविप्लवात् ॥
कर्मोदयागते तस्मिन्नसंकल्पादबंधनं ॥ ३१ ॥
कर्माप्याचारतो ज्ञातुर्मुक्तिभावो न हीयते ॥
तत्र संकल्पजो बंधो गीयते यत्परैरपि ॥ ३२ ॥

अर्थः—एटला माटे बुद्धिना विपर्यासपणाथी सावद्यकर्म आदरवुं नही, अने जो दैवयोगे तेवा कर्म करवानुं उदय आव्युं तेवारे ते कर्म करवानो जो संकल्प नथी, तो ते कर्मनुं बंधन पण नथी ॥ ३१ ॥ सांसारिक क्रियानो जो आचार छे, तोपण ज्ञानीने मुक्तिभावनी हाण नथी, केमके संकल्पथी बंधन छे, एवुं अन्य दर्शनवालानुं पण कहेवुं छे, ते जुओ आगल कहे छे ॥ ३२ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृतकर्म्मकृत् ॥ ३३ ॥
कर्मण्यकर्म वाकर्म कर्म्मण्यस्मिन्नुभे अपि ॥
नोभे वा भंगवैचित्र्यादकर्मण्यपि नो मते ॥ ३४ ॥

अर्थः—जे कर्मने विसर्जे, अकर्मपणु देखे छे, अने कर्म नथी करतो, अने जाणे छे जे हु करु छु, तेने माणसमा बुद्धिवत कहिये ते करवापणाना कर्मने अकरवापणु देखे छे ते पोते पोताने स्वरूपे छे, एम घणी भगजाल प्रगटे छे ॥ ३३ ॥ नि'कर्म मार्गने विषे नहीं माण्यु, ते अकरवु थयु, अने अकरवापणे जे कर छे तेना बे भागा छे. एम कववाना विचित्र भागा छे ॥ ३४ ॥

कर्मनैः कर्मवैषम्यमुदासीनो विभावयन् ॥
ज्ञानी न लिप्यते भोगैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ३५ ॥
पापाकरणमात्राद्धि न मौन विचिकित्सया ॥
अनन्यपरमात्मा स्यात् ज्ञानयोगी भवेन्मुनि. ॥३६॥

अर्थ —उदासी भाववालो विचित्रपणे कर्मनु विषमपणु चितवे जेम कमलपत्र जलमा लेपातु नथी तेम ज्ञानी पुरुष भोगमा लेपातो नथी ॥ ३५ ॥ पाप न करवाथी काइ मुनिपणु आवतु नथी सशय रहितपणे पोतज ज्ञानयोगमय परमात्मा थाय तेने मुनि कहिये ॥ ३६ ॥

विषयेषु न रागी वा द्वेषी वा मौनमश्नुते ॥
सम रूप विदस्तेषु ज्ञानयोगी न लिप्यते ॥ ३७ ॥
सतत्त्वचितया यस्याभिसमन्वागता इमे ॥
आत्मवान ज्ञानवान्वेदधर्मब्रह्ममयो हि स ॥३८॥

अर्थ'—विषयने विषे जेने राग नथी तेम द्वेष पण नथी तेने मुनि कहिये मध्यस्थपणे रुपादिकने जाणतो जे ज्ञानी योगी तेने लेप लागतो नथी ॥ ३७ ॥ जेणे तत्त्वनी ओलखाण-वडे समता धारण कीधी, तेनेज आत्मानी ओलखाण थई, अने तेज ज्ञानी तथा तेज धर्ममय तथा ब्रह्ममय कहवाय ॥ ३८ ॥

वैषम्यबीजमज्ञानं निघ्नंति ज्ञानयोगिन: ॥
विषयांस्ते परिज्ञाय लोकं जानंति तत्त्वत: ॥ ३९ ॥
इतश्चापूर्वविज्ञानाच्चिदानंदविनोदत: ॥
ज्योतिष्मंतो भवंत्येते ज्ञाननिर्धूतकल्मषा: ॥४०॥

अर्थ:—संसारनुं विषम बीज जे अज्ञान छे ते बीजने ज्ञानयोगी बाली नांखे छे; तथा विषयादिकने ओलखीने तत्त्वथी लोकना स्वरूपने जाणे छे ॥ ३९ ॥ ते अपूर्व अनुभवथी अने ज्ञानना आनंदमय विनोदथी महाज्योतिवंत थाय अने तेना पाप ज्ञाने करी बली जाय ॥ ४० ॥

तेजोलेश्याविवृद्धिर्या पर्यायक्रमवृद्धित: ॥
भाषिता भगवत्यादौ सेत्थंभूतस्य जायते ॥४१॥
विषमेऽपि समेक्षी य: स ज्ञानी स च पंडित: ॥
जीवन्मुक्त: स्थिरं ब्रह्म तथा चोक्तं परैरपि ॥४२॥

अर्थ—दीक्षापर्यायनी वृद्धिथी तेजोलेश्यानी वृद्धि थाय छे, एम भगवती आदि सूत्रोमां कह्युं छे. ते एवा प्राणीने प्रगट थाय ॥ ४१॥ जे विषमने विषे समभावे जुए, तेवा ज्ञानीने पंडित कहियें. वली जीवनमुक्त अने स्थिर तथा ब्रह्म पण तेने ज कहियें ॥ ४२ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिता: समदर्शिन: ॥४३॥
इहैव तैर्जित: सर्गो येषां साम्ये स्थितं मन: ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता:॥४४॥

अर्थ—तेमज परदर्शनने विषे पण कह्युं छे के, हे अर्जुन ! विद्या, विनय सहित ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुतरुं, चंडाल

ए सर्वने समदृष्टिये जुए छे तेने पंडित कहिये ॥ ४३ ॥ एहवा जीवे हहा बेठे थकेज जगत्सृष्टिने जीती लीधी ने तेनु मन समता पाम्यु. ते निर्दोषपणे सम्यक् जे आत्मस्वरूप तेने पाम्यो, ते ब्रह्मज्ञाने रह्यो एम जाणवु ॥ ४४ ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियं ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ ४५ ॥
अर्वाग्दशाया दोषाय वैषम्ये साम्यदर्शनं ॥
निरपेक्षमुनीनां तु रागद्वेषक्षयाय तत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—जे रुडुं मले हर्ष न करे अने भुंडु प्राप्त थये शोक न धरे, ते स्थिर बुद्धिवालो चतुर प्राणी ब्रह्मनो जाण ब्रह्मज्ञाने रह्यो छे एम जाणवु ॥ ४५ ॥ हेठली दशावालाने ता जे विषमने विषे समपणे जोवु ते दोषनु कारण छे, अने जे निरपेक्षी मुनि तेने तो विषमने समपणे जोवु ते रागद्वेषनो क्षय करनार थाय छे ॥ ४६ ॥

रागद्वेषक्षयादेति ज्ञानी विषयशून्यतां ॥
छिद्यते भिद्यते वाऽस्य हन्यते वा न जातुचित् ॥४७॥
अनुस्मरति नातीतं नैव कांक्षत्यनागतं ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु समो मानापमानयोः ॥ ४८ ॥

अर्थ—रागद्वेषना क्षयथी ज्ञानी मुनि विषयनी शून्यतापणाने पामे छे तेने कोइ छेदी शके नही, कोइ भेदी शके नही, कोई हणी शके नही, एमके ते पोतानो आत्मा आत्मस्वरूपे माने छे ॥ ४७ ॥ ते ज्ञानी पुरुष गई वस्तुने संभारे नहीं अने अनागत वस्तुने इच्छे नही, शीत अने उष्ण तथा सुख अने दुःख, वली मान अने अपमान ए सर्वने समपणे माने छे ॥ ४८ ॥

जितेंद्रियो जितक्रोधो मानमायानुपद्रुत: ॥
लोभसंस्पर्शरहितो वेदखेदविवर्जित: ॥ ४९ ॥
संनिरुध्यात्मनात्मानं स्थित: स्वकृतकर्मभित् ॥
हठप्रयत्नोपरत: सहजाचारसेवनात् ॥ ५० ॥

अर्थ—जे क्रोध रहित, मान–मायाना उपद्रवे रहित, लोभना स्पर्श रहित, वेदोदय रहित, अने खेद रहित होय तेने जितेंद्रिय कहियें ॥ ४९ ॥ ते आत्माए करी आत्माने रोधी रह्यो, पोताना कर्या कर्मने भेदतो कदाग्रहथी विरम्यो, स्वाभाविक आचारने सेवतो ॥ ५० ॥

लोकसंज्ञाविनिर्मुक्तो मिथ्याचारप्रपंचहृत् ॥
उल्लसत्कंडकस्थान: परेण परमाश्रित: ॥ ५१ ॥
श्रद्धावानाज्ञया युक्त: शस्त्रातीतो ह्यशस्त्रवान् ॥
गतो दृष्टेषु निर्वेदमनिन्हुतपराक्रम: ॥ ५२ ॥

अर्थ—लोकसंज्ञाथी मूकाणो, मिथ्यात्व आचारनो टालनार, योगस्थानके उल्लसित थयो छे, एवो जे उत्कृष्ट भावे आत्मानो आश्रित थयो छे ॥ ५१ ॥ तथा श्रद्धावंत, आज्ञायुक्त अने माठा अध्यवसायरूप जे शस्त्र तेथी वेगलो रहेलो, अने बाह्य शस्त्रथी रहित, देखीता पदार्थने विषे वैराग्यवान्, वली बल–वीर्यने अणगोपवनार । ५२ ॥

निक्षिप्तदंडो ध्यानाग्निदग्धपापेन्धनव्रज: ॥
प्रतिस्रोतोऽनुगत्वेन लोकोत्तरचरित्रभृत् ॥ ५३ ॥
लब्धान् कामान्बहि:कुर्वन्नकुर्वन्बहुरूपतां ॥
स्फारीकुर्वन् परं चक्षुरपरं च निमीलयन् ॥ ५४ ॥

अर्थ—अने त्रण दंड रहित, जेणे ध्यानरूप अग्निए करी

पापरूप काष्टना समूहने बाल्यो छे, जे सामे प्रवाहे चालवे करीने लोकोत्तर चारित्रनो धरनार ॥ ५३ ॥ तथा विषयसुख पामीने ते सुख दूर करनार तथा माया–कपट अने क्रोधादिकने अणकरतो-थको ते ज्ञानचक्षुने विकस्वर करतो अज्ञानरूप चक्षुने वध करतो थको ॥ ५४ ॥

पश्यन्नन्तर्गतान् भावान् पूर्णभावमुपागतः ॥
भुञ्जानोऽध्यात्मसाम्राज्यमवशिष्टं न पश्यति॥५५॥
श्रेष्ठो हि ज्ञानयोगोऽयमध्यात्मन्येव यज्जगौ ॥
बधप्रमोक्ष भगवान् लोकसारे सुनिश्चितम् ॥५६॥

अर्थ—वली जे अध्यात्मभावने देखतो थको पूर्णभावने पामेलो, अध्यात्मनी ठकुराइने भोगवतो थको अन्य पदार्थने नथी जोतो ॥ ५५ ॥ ए उपर कह्यो ते उत्कृष्ट ज्ञानयोग छे ए अध्यात्म ग्रंथने विषे बंध–मोक्ष पण भगवंते निश्चये आचारांगना लोकसार अध्ययने कह्यो छे ॥ ५६ ॥

उपयोगैकसारत्वादाश्वसंमोहबोधतः ॥
मोक्षाप्तेर्युज्यते चैव तथा चोक्तं परैरपि ॥ ५७ ॥
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽप्यधिको मतः ॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ! ॥५८॥

अर्थ—मोक्षप्राप्तिने विषे उपर कहलो ज्ञानयोग घटे छे, केमके शीघ्रपणे ज्ञानजागृत रहेवो उपयोगज मात्र एक सार छे, अने अन्यदर्शनीए पण एमज कह्यु छे ॥ ५७ ॥ तपसीथी योगी अधिक छे, ज्ञानीथी अने राजाथी पण योगीने मोटो

कह्यो छे; ते माटे श्रीकृष्णे अर्जुनने कह्युं छे के–हे अर्जुन ! तमे पण योगी थाओ ॥ ५८ ॥

समापत्तिरिह व्यक्तमात्मनः परमात्मनि: ॥
अभेदोपासनारूपस्ततः श्रेष्ठतरो ह्ययं ॥ ५९ ॥
उपासना भागवती सर्वेभ्योऽपि गरीयसी ॥
महापापक्षयंकारी तथा चोक्तं परैरपि ॥ ६० ॥

अर्थः—माटे इहां आत्मानी समाधि प्रगटे छे. आत्मा तथा परमात्मा ए बेउने विषे अभेदपणे सेवनरूप जे योग ते घणोज श्रेष्ठ छे ॥ ५९ ॥ माटे सर्वथी मोटी अने मोटा पापने टाले एवी प्रभुनी सेवा छे, अने परदर्शनमां पण एवुंज कह्युं छे ॥ ६० ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥६१॥
उपास्ते ज्ञानवान् देवं यो निरंजनमव्ययं ॥
स तु तन्मयतां याति ध्याननिर्धूत कल्मषः ॥ ६२ ॥

अर्थः—सर्वयोगीमां पण अंतरआत्माये भल्यो एवो श्रद्धावंत प्राणी तो तेहने कहिये, जे मुजने सेवे, ते मुज सरखो पुरुषोत्तम थाय, एम श्रीकृष्ण अर्जुनने कहे छे ॥ ६१ ॥ ज्ञानवंत, निरंजन अने अविनाशी देव जाणीने, जे पुरुष मने सेवे छे ते तन्मयीपणे थाय छे, अने जेणे महारा ध्यानथी पाप टाली नाख्यां छे, हे अर्जुन ! ते पुरुष महारारूपे थाय छे ॥ ६२ ॥

विशेषमप्यजानानो यः कुग्रहाविवर्जितः ॥
सर्वज्ञं सेवते सोऽपि सामान्यं योगमास्थितः ॥६३॥

सर्वज्ञो मुख्य एकस्तत्प्रतिपत्तिश्च यावताम् ॥
सर्वेऽपि ते तमापन्ना मुख्य सामान्यतो बुधा' ॥६४॥

अर्थः—जे विशेषपने अणजाणतो छे, तोपण जे कदाग्रहे रहित छे अने जे सर्वज्ञने सेवे छे ते पण सामान्य योगे आश्रित छे ॥ ६३ ॥ सर्व प्रमाणमा एक सर्वज्ञ तो मुख्य छे, तेहनी सेवाना करनार जेटला छे ते सर्वे तेहिज सर्वज्ञना भावने पामे, पण सर्वज्ञनु मुख्यपणु पडितो सामान्यथकी कहे छे ॥ ६४ ॥

न ज्ञायते विशेषस्तु सर्वथाऽसर्वदर्शिभिः ।
अतो न ते तमापन्ना विशिष्य भुवि केचन ॥६५॥
सर्वज्ञप्रतिपत्यशात्तुल्यता सर्वयोगिना ॥
दूरासन्नादिभेदस्तु तद्भृत्यत्व निहति न ॥ ६६ ॥

अर्थ.—ते सर्वथा प्रकारे सर्वज्ञ सर्वदर्शी तेवडे पण विशेष तो जाणतो नथी, तेथी ते कोई विशेष भूमिकाने पाम्या नथी, एटले पृथ्वीमा कोई विशेष जाणपणे सर्वज्ञपणु पाम्या नथी ॥ ६५ ॥ सर्वज्ञपणाना जे प्रत्येक अश छे ते सर्व योगीने सरिखा छे, माटे ढुकडा अने वेगलापणाना भेदथी तेहनु सेवकपणु काइ हणातु नथी ॥ ६६ ॥

माध्यस्थमवलम्ब्यैव देवतातिशयस्य हि ॥
सेवा सर्वैर्बुधैरिष्टा कालातीतोऽपि यज्जगौ ॥ ६७ ॥
अन्येषामप्ययं मार्गो मुक्ताविद्यादिवादिना ॥
अभिधानादिभेदेन तत्त्वरीत्या व्यवस्थित' ॥६८॥

अर्थः—माध्यस्थपणु अवलबीने एटले देवताना अतिशयनु माध्यस्थपणु धारीने सर्व पडिते सेवा मानी छे कालथी अतीत छे, तोपण एम कहे छे ॥ ६७ ॥ बीजा पण मुक्तवादीनो

अने अविद्यादिकवादी जे परदर्शनी तेनो पण आ मार्ग छे, एटले पूर्वे कह्यो ते मार्ग छे. जो के नामादिक भेदे करी कदापि जुदा छे; तोपण तत्त्व रीते जोतां एकज व्यवस्था छे ॥ ६८ ॥

मुक्तोबुद्धोऽर्हंश्चापि यदैश्वर्येण समन्वितः ॥
तदीश्वरः स एव स्यात्संज्ञाभेदोऽत्र केवलं ॥ ६९ ॥
अनादिशुद्ध इत्यादिर्यो भेदो यस्य कल्प्यते ॥
तत्तत्तंत्रानुसारेण मन्ये सोऽपि निरर्थकः ॥ ७० ॥

अर्थः—ते व्यवस्था कही देखाडे छे. कोई दर्शनी मुक्त कहे छे; कोई बुद्ध कहे छे, कोइक अर्हत् कहे छे; कोइक ऐश्वर्ययुक्त एटले ईश्वर कहे छे, ए सर्व सर्वज्ञनी संज्ञाना भेद छे, बीजुं नथी ॥ ६९ ॥ तेमज वळी अनादिशुद्ध ईश्वर छे इत्यादिक भेद जे परदर्शनीओ कल्पे छे, ते भेद सिद्धांतने अनुसारे विचारीए तो मानवा पण निरर्थक छे ॥ ७० ॥

विशेषस्यापरिज्ञानाद् युक्तीनां जातिवादिनः ॥
प्रायो विरोधतश्चैव फलाभेदाच्च भावतः ॥ ७१ ॥
अविद्याक्लेशकर्मादि यतश्च भवकारणं ॥
ततः प्रधानमेवैतत्संज्ञाभेदमुपागतं ॥ ७२ ॥

अर्थः—केमके जे विशेषपने नहि जाणवाथी, उक्तियुक्तिना जातिवचनथी अने प्राये विरोधथकी भावथी फलनो अभेद छे, ए हेतु माटे ॥ ७१ ॥ जे अविद्या, क्लेश अने कर्म इत्यादिक जे संसारना कारण प्रगटे, ते केटलाएक दर्शनीओ जुदा जुदा कहे छे. एटले कोई अविद्या, कोई क्लेश, कोई कर्म, एम संज्ञाये करी भेद कहे छे, पण ए त्रणे प्रधानपणे एकज छे ॥ ७२ ॥

यस्यापि योऽपरो भेदश्चित्रोपाधिस्तथा तथा ॥
गीयतेऽतीतहेतुभ्यो धीमता सोऽप्यपार्थकः ॥ ७३॥
ततः स्थानप्रयासोऽयं यत्तद्भेदनिरूपणं ॥
सामान्यमनुमानस्य यतश्च विषयो मतः ॥ ७४ ॥

अर्थ—ए अविद्यादिक गणना वली बीना भेद कल्पनाये अनेक थाय छे, तेथी अनेक प्रकारनी उपाधी निपजे, तेम तेम जाणिये जे हेतुनो अभाव थाय छे, पण ते उपाधिभेद पंडितने निरर्थक छे एम जाणवु ॥ ७३ ॥ तेथी आ स्थाननो जे प्रयास ते भेदनु निरूपण करवाने अनुमाननो विषय ते सामान्य जाणवो, केमके ज्या अनुमान प्रमाण करिये त्या सामान्यपणे उपयोगी होय तेवारे अनुमान विषयनो अभाव थाय ॥ ७४ ॥

संक्षिप्तरुचिजिज्ञासोर्विशेषान् चलनलम् ॥
चारिसंजीविनीचारज्ञातादत्रोपयुज्यते ॥ ७५ ॥
जिज्ञासापि सता न्याय्या यत्परेऽपि वदंत्यदः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ७६ ॥

अर्थ—जेम संजीवनी नामा चारो जे घासबुटी तेने ओलखनारी मोटी स्त्रीये ते बुटीने योगे भर्त्तारने पशु अवस्था माथी पुरुष बनाव्यो, तेम संक्षेप रुचिवालो विशेष बलवान क्यारे कहवाय ? जेवार तेनी प्रीति साचे साची होय तेवारे कहेवाय पण साची प्रीति विनानु विशेष बल ते बलमा न गणाय ॥ ७५ ॥ माटे ए त्रण जे कामादि योग तेने विषे सत्पुरुषे जाणपणु रारवु उचित छे परदर्शनीनु कहवु पण एवु ज छे हे अर्जुन ! जे पुरुष ज्ञानयोगने जाणवा इच्छे ते पुरुष परमात्मानी दिशाने पामे ॥ ७६ ॥

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चेति चतुर्विधाः ॥
उपासकास्त्रयस्तत्र धन्या वस्तुविशेषतः ॥ ७७ ॥
ज्ञानी तु शांतविक्षेपो नित्यभक्तिर्विशिष्यते ॥
अत्यासन्नो ह्यसौ भर्तुरंतरात्मा सदाशयः ॥ ७८ ॥

अर्थ—एक दुःखी, बीजो जाणवानी इच्छावालो, त्रीजो धननो अर्थी अने चोथो ज्ञानी—ए चार प्रकारना हे अर्जुन ! मारा सेवको छे; पण ते मध्ये एक धनार्थी विना जे बीजा त्रण जातना सेवक ते वस्तुतत्त्वना जाण छे माटे धन्य छे-वखाणवा योग्य छे ॥ ७७ ॥ ए त्रणने धन्य कह्या तेमां पण जेनो विक्षेप शम्यो छे, अने नित्य भक्तिवंत एहवो ज्ञानी पुरुष जे चोथो ते मोटो जाणवो. ते ज्ञानी अमारी पासे अत्यंत नजीक रहे छे माटे श्रेष्ठ छे, केमके अंतरात्माए वर्त्ते छे, अने तेना आसय निर्मल छे; ते माटे ॥ ७८ ॥

कर्मयोगविशुद्धस्तद्ज्ञाने युंजीत मानसं ॥
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥ ७९ ॥
निर्भयः स्थिरनासाग्रदत्तदृष्टिर्व्रते स्थितः ॥
सुखासनः प्रसन्नास्यो दिशश्चानवलोकयन् ॥ ८० ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! कर्मयोगे विशुद्ध थको ते प्राणी ज्ञानमां पोतानुं मन जोडे छे, अने हे अर्जुन ! एक मूर्ख, बीजो श्रद्धा रहित अने त्रीजो संशयभरेलो माणस ए त्रणे विनाश पामे छे ॥ ७९ ॥ निर्भय, नासिकाना अग्रभागने विषे दृष्टि राखीने स्थिर रहेनार, तथा निरंतर व्रतमां रहेनार, एहवो सुखासने बेठो, वली प्रसन्न मुख छे जेहनुं अने एकदृष्टि राखनार, आडुंअवळुं नही जोनार ॥ ८० ॥

देहमध्यशिरोग्रीवमवक्रं धारयन्बुधः ॥
दंतैरसस्पृशन् दंतान् सुश्लिष्टाधरपल्लवः ॥ ८१ ॥
आर्त्तरौद्रे परित्यज्य धर्मे शुक्ले च दत्तधी ॥
अप्रमत्तो रतो ध्याने ज्ञानयोगी भवेन्मुनिः ॥८२॥

अर्थ—केड, मस्तक अने कोट तेने पाधरा धरतो, एटले शरीरनी चपलाइ-वांकाइ रहित एहवो डाह्यो, दांते करी दांतने अणफरसतो एटले स्पर्श करतो नथी अने जेना होठ पल्लव नेड रुडी रीते मलेला होय ॥ ८१ ॥ तथा आर्त्त रौद्रध्यान छांडीने धर्म शुक्लध्यानमां बुद्धि दीधी छे अने भारे अप्रमत्तपणे ध्यानमां रत थको एवो जे मुनि तेने ज्ञानयोगी कहेवो ॥८२॥

कर्मयोगं समभ्यस्य ज्ञानयोगसमाहितः ।
ध्यानयोगं समारुह्य मुक्तियोगं प्रपद्यते ॥ ८३ ॥

अर्थ—ते मुनि कर्मयोगनो अभ्यास करी, चढवाने उजमाल थई, ज्ञानयोगरूप दोरडुं झाली, समाधिपणे ध्यानयोग नीसरणीए चडीने मुक्तियोगरूप मंदिरने पामे ॥ ८३ ॥

॥ इति योगाधिकारः पंचदशमो समाप्तः ॥



अथ ध्यानाधिकारः

स्थिरमध्यवसानं यत्तद्ध्यानं चित्तमस्थिरं ॥
भावना चाप्यनुप्रेक्षा चिंता वा तत्रिधा मतं ॥१॥
मुहूर्त्तांतर्भवेद्ध्यानमेकार्थे मनसः स्थितिः ॥
वह्वर्थसंक्रमे दीर्घाप्यच्छिन्ना ध्यानसंततिः ॥ २ ॥

अर्थ—चित्त चपल छे, पण ते चित्तने जे स्थिरपणे चित्तना अध्यवसायने प्रगट करे तेवारे तेने ध्यानयोगी कहिये. एक भावना, बीजी अनुप्रेक्षा, अने त्रीजु चितानुं ध्यान—ए त्रण प्रकारे चित्त चपल थाय छे ॥ १ ॥ अंतर्मुहूर्त्त ध्यान होय, पण जिहां एक ठामे एक अर्थने विषे घणा अर्थनुं संक्रमण थाय, एवी मननी स्थिति होय तिहां ध्याननी अविच्छिन्न दीर्घपणे परंपरा थाय. तिहां कांई अंतर्मुहूर्त्तनो नियम नथी ॥ २ ॥

आर्त्तं रौद्रं च धर्म्मं च शुक्लं चेति चतुर्विधं ॥
तत्स्याद्भेदाविह द्वौ द्वौ कारणं भवमोक्षयोः ॥३॥
शब्दादीनामनिष्टानां वियोगासंप्रयोगयोः ॥
चिंतनं वेदनायाश्च व्याकुलत्वमुपेयुषः ॥ ४ ॥

अर्थ—आर्त्त, रौद्र, धर्म ने शुक्ल—ए चार ध्यानना भेद छे. ते मध्ये प्रथमनां वे ध्यान ते संसारनां कारणिक छे, अने पाछलां वे ध्यान ते मुक्तिनां कारणवाची छे ॥ ३ ॥ तेमां प्रथम आर्त्तध्यानना चार भेद कहे छे. प्रथम अनिष्ट जे शब्दादिक, तेनो वियोग वांछे के रखे अनिष्टनो संयोग थने तेम अनिष्ट मले जे पीडा थाय तेनुं चितन करे तेथी व्याकुल थाय ॥ ४ ॥

इष्टाना प्रणिधान च सप्रयोगवियोगयोः ॥
निदानचिंतन पापमार्त्तमित्थ चतुर्विधम् ॥ ५ ॥

कापोतनीलकृष्णाना लेश्यानामत्र सभवः ॥
अनतिक्लिष्टभावाना कर्म्मणा परिणामतः ॥ ६ ॥

अर्थ—त्रीजो भेद इष्टनु चिंतन करे, एटले रखे इष्ट वस्तुना सयोगनो वियोग थई जाय, त्रीजो नियाणु करे, चोथो रोगना औषधनी चिंता करे. ए चार आर्त्तध्यानना प्रकार छे ॥ ५ ॥ ए मध्ये कापोत, नील, कृष्ण ए त्रण लेश्यानो सभव छे, केमके जेमा अति क्लिष्ट भावना नथी एवी कर्मनी परिणतिना परिणामे करी ए त्रण लेश्यानो सभव छे ॥ ६ ॥

क्रदन रुदन प्रोचैः शोचन परिदेवन ॥
ताडन लुंचन चेति लिंगान्यस्य विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥

मोघ निंदन्निज कृत्यं प्रशसन् परसपदः ॥
विस्मितः प्रार्थयन्नेता. प्रसक्तश्चैव दुर्जनः ॥ ८ ॥

अर्थ—नकोर करवो, ऊचे स्वरे रडवु, शोचना करवी, नाम दइने रडवु, मारवु, माथाना वाल तोडवा इत्यादिकने पंडित आर्त्तध्यानना लक्षण कहे छे ॥ ७ ॥ अम मदबुद्धि छीए एम कहीने पोतानु कार्य निंदे, अम शु पालीशु ? मुक्तिमार्ग तो महोटो छे, एम प्रशसा करे, एम विस्मित थको लोक पासे मागतो फरे इत्यादिक दुर्जननी रीत छे ॥ ८ ॥

प्रमत्तश्चेंद्रियार्थेषु गृद्धो धर्म्मपराङ्मुखः ॥
जिनोक्तमपुरस्कुर्वन्नार्त्तध्याने प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥

प्रमत्तांतगुणस्थानानुगमेतन्महात्मना ॥
सर्वप्रमादमूलत्वात्त्याज्यं तिर्य्यग्गतिप्रदं ॥ १० ॥

अर्थ—जे प्रमादी होय, विषयमां लीन होय, धर्मथी ऊलटो होय, जिनवाणीने गोपवे तेवो पुरुष आर्त्तध्यानमां प्रवर्त्ते ॥ ९ ॥ ए ध्यान उपलां गुणठाणां पामतां थकां प्रमादमां पाडे अने छठ्ठा गुणठाणा लगे रहे; माटे मोटा मुनिये सर्व प्रमादनुं मूळ तथा तिर्यंच् गति पमाडे एवुं जाणीने ए ध्याननेे छोडवुं ॥१०॥

निर्दयं वधबंधादिचिंतनं निबिडक्रुधा ॥
पिशुनासत्यमिथ्यावाक् प्रणिधानं च मायया ॥११॥

चौर्य्यधीर्निरपेक्षस्य तीव्रक्रोधानलस्य च ॥
सर्वाभिशंकाकलुषं चित्तं च धनरक्षणे ॥ १२ ॥

अर्थः—हवे जे निर्दय होय, जीवनो वध-बंधनादिक चिंतवे, आकरो क्रोधी होय, चाडीओ होय, जूठुं बोले, मिथ्यात्वनुं वचन बोले, माया-कपट धरे ॥ ११ ॥ चोरी करनार, परमार्थ रहित, क्रोधरूप अग्निये धमधमतो रहे, धन संचय करनार, धनने डाटी राखे, शंकाये मेलुं मन राखनार, एटले रखेने कोई मारुं धन जुए अने लइ जाय ए रीते १ हिंसानुबंधी, २ मृषानुबंधी, ३ चौर्यानुबंधी, ४ परिग्रहरक्षणानुबंधी ए चार प्रकार रौद्रध्यानना जाणवा ॥ १२ ॥

एतत्सदोपकरणकारणानुमतिस्थिति ॥
देशाविरतिपर्यंतं रौद्रध्यानं चतुर्विधं ॥ १३ ॥

कापोतनीलकृष्णानां लेश्यानामत्र संभवः ॥
अतिसंक्लिष्टरूपाणां कर्मणां परिणामतः ॥ १४ ॥

अर्थः—ए रीते ध्यानने करवे, करावचे अने अनुमोदवानी स्थितिये करी ए ध्यान दोषनु कारण छे ए ध्यान चोथा अविरति गुणठाणा अने पाचमा देशविरति गुणठाणा सुधी होय, ए रीते रौद्रध्यानना चार भेद कह्या ॥ १३ ॥ कापोत, नील अने कृष्णा ए त्रण लेश्यानो इहा सभव छे. ए अति सक्लिष्टरूप जे कर्म तेना परिणामथी होय छे ॥ १४ ॥

उत्सन्नबहुदोषत्व नानामारणदोषता ॥
हिसादिषु प्रवृत्तिश्च कृत्वाघ स्मयमानता ॥ १५ ॥
निर्दयत्वानुशयौ बहुमानः परापदि. ॥
लिगान्यत्रेत्यदो धीरैस्त्याज्य नरकदुःखद ॥ १६ ॥

अर्थः—ए प्राये घणा दोषनु कारण छे नानाप्रकारना जीवने मारनाना दोषे करी हिंसादिकमा प्रवृत्ति थाय, पाप करीने खुशनक्तीपणु माने ॥ १५ ॥ निर्दयपणु, पश्चात्तापपणु, परआपदाये राजीपणु अने महाविषयीपणु, ए चिन्हे करी ए ध्यान नरकना दु खनु आपनारु छे, माटे ए ध्यानने छाडवु ॥ १६ ॥

अप्रशस्ते इमे ध्याने दुरन्ते चिरसस्तुते ॥
प्रशस्त तु कृताभ्यासो ध्यानमारोढुमर्हति ॥१७॥
भावना देशकाले च स्वसत्तालबनक्रमात् ॥
ध्यातव्यध्यानानुप्रेक्षा लेश्यालिंगफलानि च ॥१८॥

अर्थः—एना ए बे ध्यान वे महानिर्बल छे एनो घणो परिचय करीए, तो तेथी कडवा विपाक प्रगटे, माटे डाह्या पुरुषे अभ्यास करता उज्ज्वल ध्याने चढवु योग्य छे ॥ १७ ॥ हवे धर्मध्यान कहे छे. देशकाल जोईने शुभ- भावना करवी,

पोतानी सत्ताना आलंबनना क्रमथी ध्येय ध्याता अने ध्याननी अनुप्रेक्षा ते शुभ लेश्याना चिन्हनुं फल छे॥ १८॥

ज्ञात्वा धर्मं ततो ध्यायेच्च तस्त्रस्तत्र भावना: ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रवैराग्याख्या: प्रकीर्तिता: ॥ १९ ॥

निश्चलत्वमसंमोहो निर्जरा पूर्वकर्मणां ॥
संगाशंसा भयोच्छेद: फलान्यासां यथाक्रमात् ॥२०॥

अर्थ—ज्ञानभावना, दर्शनभावना, चारित्रभावना अने वैराग्यभावना ए चार भावनाने धर्म जाणी ध्याववी ॥ १९ ॥ तेमां ज्ञानभावनाथी निश्चलपणुं थाय अने दर्शनभावनाथी अमूढपणुं थाय. वली चारित्रभावनाथी पूर्वकर्मनी निर्जरा थाय अने वैराग्यभावनाथी स्त्रियादिकनो संग तथा पुद्गलनी इहा अने भय तेनो उच्छेद थाय. ए रीते ए चार भावनानां फल जाणवां ॥२०॥

स्थिरचित्त: किलैताभिर्याति ध्यानस्य योग्यतां ॥
योग्यतैव हि नान्यस्य तथा चोक्तं परैरपि ॥ २१ ॥

चंचलं हि मन: कृष्ण प्रमाथिबलवद्दृढं ॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करं ॥ २२ ॥

अर्थ—ए भावनामां जेनुं चित्त स्थिर होय तेने ध्यानमां स्थिरता रहे. माटे ते प्राणी ध्याननी योग्यता पामे; पण बीजो कोई न पामे. तेमज परदर्शनमां पण कह्युं छे, ते कहे छे ॥ २१ ॥ अर्जुन पूछे छे—हे कृष्ण! मन तो चंचल छे; अने शत्रुना सैन्य सरखुं दृढ छे, ते मननो निग्रह हुं शी रीते करुं? केमके पवननी पेठे मन दुष्कर अने अग्राह्य छे॥ २२ ॥

असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलं ॥
अभ्यासेन च कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ २३ ॥
असंयतात्मनो योगो दु.प्राप्य इति मे मतिः ॥
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायत. ॥२४॥

अर्थ—श्रीकृष्ण कहे छे–हे महाबाहो ! के० मोटी छे बाहु जेनी एवा हे अर्जुन ! खरेखरु मन चपल छे तेनो निग्रह करवो तो कठण छे, तो पण हे कुंतिना पुत्र ! हे अर्जुन ! अभ्यास अने वैराग्ये करीने मन वश थाय एवु छे ॥ २३ ॥ हे अर्जुन ! जेने पोतानो आत्मा वश नथी एवो जे पुरुष तेने ध्यानयोग पामवो दुष्कर छे, एवी मारी मति छे, पण जेणे आत्माने वश कीधो छे तेने उद्यमे करी अने अभ्यासे करी ध्यानयोग पामवो सुलभ छे ॥ २४ ॥

सदृशप्रत्ययावृत्त्या वैतृष्ण्याद्बहिरर्थतः ॥
एतच्च युज्यते सर्वं भावनाभावितात्मनि ॥ २५ ॥
स्त्रीपशुक्लीबदुःशीलवर्जितस्थानमागमे ॥
सदा यतीनामाज्ञप्तं ध्यानकाले विशेषतः ॥ २६ ॥

अर्थ—सरखो प्रत्यय जे विश्वास तेणे सहित अने बाह्य पदार्थनी तृष्णाये रहित तथा शुद्ध भावनाये भावीत पुरुषने ए आत्मा वश करवो सर्व प्रकारे घटे छे ॥ २५ ॥ स्त्री, पशु, नपुंसक, दुःशीलादि रहित एहवी वसती मुनिये सेववी, एम आगममा मुनिने सदाय प्रभुए आज्ञा करी छे, तेमा पण ध्यानवेलाये तो विशेषपणे कही छे एम जाणवु ॥ २६ ॥

स्थिरयोगस्य तु ग्रामे विशेष. कानने वने ॥
तेन यत्र समाधानं स देशो ध्यायतो मतः ॥२७॥

यत्र योगसमाधानं कालोऽपीष्टः स एव हि ॥
दिनरात्रिक्षणादीनां ध्यानिनो नियमस्तु न ॥२८॥

अर्थ—स्थिरयोगवालाए गाममां अने विशेषे करीने वगडामां तथा वनमां जिहां चित्त समाधीमां रहे ते स्थानके ध्यान करवुं ॥ २७ ॥ जे वखत योग स्थिर रहे ते काल रुडो समजवो; पण ध्यानवालाने दिवस अथवा रात्रीनो नियम नथी ॥ २८ ॥

यैवावस्था जिता या तु न स्याद्ध्यानोपघातिनी ॥
तया ध्यायेन्निषण्णो वा स्थितो वा शयितोऽथवा॥२९॥
सर्वासु मुनयो देशकालावस्थासु केवलं ॥
प्राप्तास्तन्नियमो नासां नियता योगसंस्थिता ॥३०॥

अर्थ—ध्यानवंत मुनिने जे अवस्थाये, जे ठेकाणे अने जे वेलाये ध्यानने व्यवघात न लागे ते ठेकाणे, ते वेलाये, ते रीते बेठा, ऊभा अथवा सूता ध्यान करवुं ॥ २९ ॥ सर्व देश-काल अवस्थाने विषे रह्या जे, मुनि तेने कांई नियम नथी, केमके ते नियतपणे योगमां स्थिर रह्या छे ॥ ३० ॥

वाचना चैव पृच्छा च परावृत्यनुचिंतनं ॥
क्रिया चालंबनानीह सद्धर्मावश्यकानि च ॥ ३१ ॥
आरोहति दृढद्रव्यालंबनो विषमं पदं ॥
तथा रोहति सद्ध्यानं सूत्राद्यालंबनाश्रितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना अने अनुप्रेक्षा ए धर्मनां आलंबन इहां कह्यां, ते अवश्यकरणी छे ॥ ३१ ॥ जे प्राणी खरी वस्तुनो आलंबक छे ते प्राणी कठण ठेकाणे पण जेम चडे तेम जे जैन सूत्रादिकनो आलंबक छे ते प्राणी रुडे ध्याने पण चढे ॥ ३२ ॥

आलम्बनादरोद्भुतप्रत्यूहक्षययोगतः ॥
ध्यानाद्यारोहणभ्रंशो योगिनां नोपजायते ॥ ३३ ॥
मनोरोधादिको ध्यानप्रतिपत्तिक्रमो जिने ॥
शेषेषु तु यथायोगसमाधानं प्रकीर्तितं ॥ ३४ ॥

अर्थ—आलंबनना आदरथी प्रगट्यो जे विघ्ननो क्षय तेना योगथी ध्यानरूप पर्वत उपर चढता, योगीश्वरने भ्रष्टपणु थतुं नथी ॥ ३३ ॥ योगनिरोध ध्यान तो केवलीने छे मन-रोधकरण इत्यादि अनुक्रम जिनमतमां छे बाकी बीजा दर्शनमां तो जेम नजरमां आवे तेम योगनुं समाधान कह्युं छे ॥ ३४ ॥

आज्ञापायविपाकानां संस्थानस्य च चिंतनात् ॥
धर्मध्यानोपयुक्तानां ध्यातव्यं स्याच्चतुर्विधं ॥ ३५ ॥
नयभंगप्रमाणाढ्यां हेतूदाहरणान्वितां ॥
आज्ञां ध्यायेज्जिनेंद्राणामप्रामाण्यकलंकितां ॥३६॥

अर्थ—आज्ञा, अपाय, विपाक अने संस्थान ए चार भेदनां चिंतनथकी धर्मध्यानवालाये धर्मध्यान करवु ॥ ३५ ॥ सातनय, सप्तभंगी, चार प्रमाण सहित तथा हेतु उदाहरणे सहित अने अप्रमाणरूप दूषणे रहित एवी जिनेश्वरनी आज्ञा ध्याववी ए प्रथम भेद ॥ ३६ ॥

रागद्वेषकषायादिपीडितानां जनुष्मतां ॥
ऐहिकामुष्मिकांस्तांस्तान्नानापायान्विचिंतयेत् ॥३७
ध्यायेत्कर्मविपाकं च तं तं योगानुभावजं ॥
प्रकृत्यादिचतुर्भेदं शुभाशुभविभागतः ॥ ३८ ॥

अर्थः—जे जीव राग, द्वेष, कषायवडे पीडाया छे, ते आ

लोक ने परलोक संबंधी कष्ट ते त्रीजे पाये चिंतवे ए त्रीजो भेद. ॥ ३७ ॥ जे योगना अनुभवथी थयो अने प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेशना बंधथी नीपज्यो एहवो जे कर्मनो विपाक तेने शुभाशुभ वहेंचणथी ध्यावे ए त्रीजो भेद ॥ ३८ ॥

उत्पादस्थितिभंगादिपर्यायैर्लक्षणैः पृथक् ॥
भेदैर्नामादिभिर्लोकसंस्थानं चिंतयेद् भृतं ॥ ३९ ॥
चिंतयेत्तत्र कर्त्तारं भोक्तारं निजकर्मणां ॥
अरूपमव्ययं जीवमुपयोगस्वलक्षणं ॥ ४० ॥

अर्थः—उत्पाद, व्यय अने ध्रुव, काल तथा भंगादि पर्याय लक्षणे करी जुदा जुदा भेदें नाम, स्थापना, द्रव्य, भावभेदे करीने चौद राजलोकनुं संस्थान धारीने चिंतवे ॥ ३९ ॥ तिहां पोताना कर्मनो कर्त्ता–भोक्ता आत्मा छे, एम चिंतवे. ए जीव अरूपी, अविनाशी अने उपयोग लक्षणे युक्त छे, एम चिंतवे ए चोथो भेद ॥ ४० ॥

तत्कर्मजनितं जन्मजरामरणवारिणा ॥
पूर्णं मोहमहावर्त्तकामौर्वानलभीषणं ॥ ४१ ॥
आशामहानिलापूर्णं कषायकलशोच्छलत् ॥
असद्विकल्पकल्लोलचक्रं दधतमुद्धतं ॥ ४२ ॥

अर्थः—हवे कर्मजनित संसारसमुद्र वखाणे छे ते जन्म, जरा अने मरणरूप जले पूर्ण भर्यो छे, तथा मोहरूप मोटा आवर्त्त, तद्रूप भमरी अने कामरूप वडवानले करी भयंकर ॥ ४१ ॥ आशारूप प्रचंडवायुवडे भरपूर, कषायरूप चार कलशाये युक्त अने माठा विकल्परूप महाउद्धत कल्लोल जिहां उछले छे एवो भवसमुद्र भयंकर छे ॥ ४२ ॥

हृदि श्रोतसिकावेलामपातदुरतिक्रमम् ॥
प्रार्थनावल्लिसतान दु.पूरविपयोदर ॥ ४३ ॥

अज्ञानदुर्दिन व्यापद्विद्युत्पातोद्भवद्भय ॥
कदाग्रहकुवातेन हृदयोत्कपकारिण ॥ ४४ ॥

अर्थ·—वली ते समुद्रमा मनमा श्रोतसिका एटले जे हर्ष तथा शोकनु भरावु ते रूपनेल एटले भरति कहिये, माटे जो एमा पड्यो तो पछी नीकळवु घणु कठण छे, अने याचनारूप सेवालनो समूह छे जेने विषे, तथा दु खे पूर्ण थाय एवो विषय रूप मध्यभाग छे जेनो ॥ ४३ ॥ जिहा अधकार व्याप्यु एवु अज्ञानरूप वादलु छे, तथा जेमा आपदारूप वीजली पडवानो भय छे, अने कदाग्रहरूप खराब पवननो उद्भव थयो छे, तेणे करीने ज्ञान नजरनाळानु तो हैयु धुजे, एहवो कर्मजनित समुद्र विहामणो छे ॥ ४४ ॥

विविधव्याधिसबधमत्स्यकच्छपसकुल ॥
चितयेच भवाभोधि चलद्दोपाद्रिदुर्गम ॥ ४५ ॥

तस्य सतरणोपाय सम्यक्त्वदृढबधन ॥
बहुशीलागफलक ज्ञाननिर्यामिकान्वित ॥ ४६ ॥

अर्थ —जे समुद्र विविध जातिना जे रोगना सबध-रूपी मच्छ अने काचबाये करी आकुल छे, तथा जेमा चचलता, शून्यता अने गर्व त रूप जे दोष तद्रूप महोटा पर्वत छे, एवा भव-रूप समुद्रने चितवे ॥ ४५ ॥ हवे एवा समुद्रथी तरवानो उपाय, ते समकितरूप दृढबधन छे जिहा, अने जेने अढार हजार

शिलांग रथरूप पाटीयां जड्यां छे, तथा ते जहाज ज्ञान-रूप चलावनार निर्यामक जे नाखुदा तेणे सहित छे ॥ ४६ ॥

संवरास्ताश्रवच्छिद्रं गुप्तिगुप्तसमंततः ॥
आचारमंडपोद्दीप्तापवादोत्सर्गभूद्वयं ॥ ४७ ॥
असंख्यैर्दुर्धरैर्योधैर्दुःप्रधृष्यं सदाशयैः ॥
सद्योगकूपस्तंभाग्रन्यस्ताध्यात्मसितांशुकं ॥ ४८ ॥

अर्थः—वली ते जहाजनां पाटीआंने विषे रह्यां जे छिद्रो तेहने संवररूपी कीचड तद्रूप तेलवडे पुर्यां छे, तथा मनोगुप्तिरूप गुप्त सुकान ते मार्ग वतावे छे, तेणे करी ते वहाण समुं चाले छे, तथा आचाररूप मंडपे शोभे छे, वली ते वहाणमां उत्सर्ग अने अपवादरूप वे जातनो माल भरेलो छे ॥ ४७ ॥ जे वहाणमां शुद्ध अध्यवसायरूप घणा वलवंत सुभटो जे राग–द्वेशादि शत्रुने दुःप्रधृष्य छे; तथा भलो जे योगरूप कुओ जे थंभ तेना उपर अध्यात्मरूप उज्वल सड खेंच्यो छे जिहां ॥ ४८ ॥

तपोऽनुकूलपवनोद्भुतसंवेगवेगतः ॥
वैराग्यमार्गपतितं चारित्रवहनं श्रिताः ॥ ४९ ॥
सद्भावनाख्यमञ्जूषान्यस्तसच्चित्तरत्नतः ॥
यथाऽविघ्नेन गच्छंति निर्वाणनगरे बुधाः ॥ ५० ॥

अर्थ—ते सढथी तपस्यारूप अनुकूळ पवन प्रगट्यो छे अने ते पवने करी संवेगगुणरूप वेग प्रगट्यो छे, तेणे करी वैराग्य मार्गमां ते वहाण चालतुं जाय छे; एहवुं चारित्ररूप जे वहाण तेमां बेठा थका ॥ ४९ ॥ रुडी भावनारूप मंजूषामां गुप्तपणे शुभ चित्तरूपी रत्न स्थाप्युं छे जेणे एवा मुनि निर्विघ्नपणे मुक्ति-रूप नगरने पामे छे ॥ ५० ॥

यथा च मोहपल्लीशे लब्धव्यतिकरे मति ॥
समारनाटकोच्छेदाशकापकाविले मुहुः ॥ ५१ ॥

सज्जीकृतस्वीयभटे नाव दुर्बुद्धिनामिका ॥
श्रिते दुर्नीतिनौवदारूढशेषभटान्विते ॥ ५२ ॥

अर्थ—ए वातनी खबर चोरनो राजा जे मोहरूपी पल्लीपति तेने पडी तेवारे ते मोह जे चोरनो राजा छे तेणे विचार्यु जे रखेने ससाररूप नाटकनो उच्छेद थई जाय, एवी शंकारूप जे कचरो तेमा लेपाणो थको ॥ ५१ ॥ ते मोहराजा पोताना सुभटोने सज्ज करीने दुर्बुद्धि नामे जे नाव तेमा पोते बेठो थको, दुष्टाचाररूप बीजा जे नाव छे तेमा वली बीजा घणा सुभटोने बेसारीने पोते भवसमुद्रमा आव्यो ॥ ५२ ॥

आगच्छत्यथ धर्मेशभटौघे रणमडप ॥
तत्त्वचिंतादिनाराच सज्जीभूते समाश्रिते ॥ ५३ ॥

मिथो लग्ने रणावेशे सम्यग्दर्शनमत्रिणा ॥
मिथ्यात्वमत्रीविषमा प्राप्यते चरमा दशा ॥५४॥

अर्थ—ते वखते धर्मराजाना सुभटोना जे थोक ते मोहना सैन्यने जोईने रणमडपभूमीमा आवी तत्त्वचिंता प्रमुख जे वहाण ते लेईने सज्ज थया थका ॥ ५३ ॥ ते पछी बेउने माहोमाह युद्ध चालवा लाग्यु तेमां सम्यग्दृष्टि जे प्रधान तेणे मिथ्यात्व प्रधानने विषम चरमदशा के० मरणदशा पमाडी, एटले मृत्यु-प्राप्त कीधो ॥ ५४ ॥

लीलयैव निरुध्यते कषायचरटा अपि ॥
प्रशमादिमहायोधैः शीलेन स्मरतस्कर ॥ ५५ ॥

हास्यादिषट्कलुंटाकवृंदं वैराग्यसेनया ॥
निद्रादयश्च ताड्यंते श्रुतयोगादिभिर्भटैः ॥ ५६ ॥

अर्थ—अने उपशमादिक महासुभटे लीलाये करीने कषायरूप चोरटाने रोक्या तथा शीलसुभटे कंदर्परूप चोरने जीत्यो ॥ ५५ ॥ वैराग्यनी सेनाये करीने हास्यादिक जे छ चोर तेने जीत्या अने ज्ञानयोगादिक जे सुभटो तेणे निद्रादिकने मारी काढ्या ॥ ५६ ॥

भटाभ्यां धर्मशुक्लाभ्यामार्तरौद्राभिधौ भटौ ॥
निग्रहेणेंद्रियाणां च जीयते द्रागसंयमः ॥ ५७ ॥

क्षयोपशमतश्चक्षुर्दर्शनावरणादयः ॥
नश्यत्यसातसैन्यं च पुण्योदयपराक्रमात् ॥ ५८ ॥

अर्थ—धर्मध्यान अने शुक्लध्यान ए बे सुभटे आर्त्त अने रौद्र ए बे सुभटने हण्या, तथा पांच इंद्रियना निग्रहरूप सुभटे उतावले करी असंयमरूप सुभटने जीत्यो ॥ ५७ ॥ दर्शनावरणीयना क्षयोपशम सुभटे चक्षुदर्शनावरणादिक योद्धाओने मार्या. वली पुण्योदयना पराक्रमथी अशातारूप सैन्य नासी गयुं ॥५८॥

सह द्वेषगजेंद्रेण रागकेशरिणा तथा ॥
सुतेन मोहभूपोऽपि धर्मभूपेन हन्यते ॥ ५९ ॥

ततः प्राप्तमहानंदा धर्म्मभूपप्रसादतः ॥
यथा कृतार्था जायंते साधवो व्यवहारिणः ॥६०॥

अर्थ—हवे छेवटे द्वेषरूप हाथीये वेठो तथा रागरूप सिंहे सहित एहवो मोहराजा तेने पण धर्मराजाए हण्यो ॥५९॥ तेवार

पछी साधुरूपी व्यवहारिया धर्मराजानो प्रसाद जे पसाय तेथी कृतार्थ थई, आनद पामी सुखे पोतानो व्यापार करता थया ॥६०॥

विचिंतयेत्तथा सर्वं धर्मध्याननिविष्टधीः ॥
ईदृगन्यदपि न्यस्तमर्थजात यदागमे ॥ ६१ ॥
मनसश्चेन्द्रियाणा च जयाद्यो निर्विकारधीः ॥
धर्मध्यानस्य स ध्याता शातो दातः प्रकीर्तित ॥६२॥

अर्थ—ए रीते सर्व धारी लेवु ते धर्मध्यानमा जे मुनिनी बुद्धि पेठी छे, तेणे एने तथा एना जेवा बीजा पण जे आगम-सिद्धातमा पदार्थना समूह स्थाप्या छे तेनु चितन करवुं ॥६१॥ जे मनने अने इंद्रियनो जय करीने निर्विकार बुद्धिवालो थयो तेने धर्मध्याननो ध्याता कह्यो छे वली शातदातपणु पण तहनेज होय ॥ ६२ ॥

परैरपि यदिष्ट च स्थितप्रज्ञस्य लक्षण ॥
घटते ह्यत्र तत्सर्वं तथा चेद व्यवस्थित ॥ ६३ ॥
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मनतुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—परदर्शनी पण स्थितप्रज्ञनु लक्षण एम कह छे अने ते सर्व इहा घटे छे, तेमज इहा अवस्थित होय ते जाणवु ॥ ६३ ॥ हे अर्जुन ! जेवारे कदर्पने छोडे अने मनना सर्व कामने त्यागी आत्मसतोषी थईने आत्माने विषे रहे ते प्राणीने तेवारे स्थितप्रज्ञावत कहीए ॥ ६५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ६६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं ॥
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६६ ॥

अर्थः—जेहने दुःखमां उद्वेग नथी. अने सुखनी इच्छा नथी, तथा जेहना राग, भय अने क्रोध गया छे ते मुनिने स्थितबुद्धिवालो कहिये ॥ ६५ ॥ जेने विषय उपर स्नेह नथी, जेवुं तेवुं शुभ अशुभ मले तोपण रागद्वेष नथी; हे अर्जुन ! तेनी बुद्धि रुडी छे एम जाणवुं ॥ ६६ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६७॥

शांतो दांतो भवेदीदृगात्मारामतया स्थितः ॥
सिद्धस्य हि स्वभावो यः सैव साधकयोग्यता ॥६८॥

अर्थः—हे अर्जुन ! जेम काचवो अंगने संहरी-संकोची राखे तेम इंद्रिओने विषयथी पाछी वाले तेनी बुद्धि मोटी छे ॥ ६७ ॥ ते शांत गुण अने दांतगुणी होय, तेने आत्मारामवडे आत्मामां रह्यो कहिये. सिद्धिनो स्वभाव पण एवोज छे, अने एवा जे होय तेनेज साधकतापणानी योग्यता कहिये ॥ ६८ ॥

ध्यातायमेव शुक्लस्याप्रमत्तः पादयोर्द्वयोः ॥
पूर्वविद् योग्ययोगी च केवली परयोस्तयोः ॥६९॥

अनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षा ध्यानस्योपरमेऽपि हि ॥
भावयेन्नित्यमभ्रांतः प्राणा ध्यानस्य ताः खलु ॥७०॥

अर्थः—ए धणी शुक्लध्यानना बे पायानो अप्रमत्त थको ध्यावनार थाय, पूर्वधरपणे योगी होय अथवा अयोगी होय; पण केवलीपणे होय. ते पछी शेष बे पायाने ध्यावे ॥ ६९ ॥

ध्यानने निरामकाले अनित्यत्वादि भावना छाडे नहीं, विभ्रम रहितपणे नित्य भावना भावे ते ध्यानना प्राण जाणवा ॥ ७०॥

तीव्रादिभेदभाज. स्युर्लेश्यास्तिस्र इहोत्तरा· ॥
लिंगान्यत्रागमश्रद्धा विनयः सद्गुणस्तुति· ॥ ७१ ॥
शीलसयमयुक्तस्य ध्यायतो धर्ममुत्तम ॥
स्वर्गप्राप्तिफल प्राहु· प्रौढपुण्यानुबधिनीं ॥ ९२ ॥

अर्थः—इहा पाछली त्रण लेश्याओ छे एटले तेजो, पद्म अने शुक्ल ए त्रण लेश्या जे छे ते तीव्र, तीव्रतर तीव्रत्तम ए त्रण भेदनी भजनारी छे तेना ए चिन्ह छे जे आगमनी श्रद्धा, विनय, रुडा गुणनी स्तवना करवी ॥ ७१ ॥ शील अने सयमयुक्त प्राणीने उत्तम धर्मध्यान ध्यावे थके स्वर्गप्राप्तिफल कह्यु छे ते मोटा पुण्यानुबधी पुण्यने पामे ॥ ७२ ॥

ध्यायेच्छुक्लमथ क्षान्तिमृदुत्वार्जवमुक्तिभि ॥
छद्मस्थोऽणौ मनो धृत्वा व्यपनीय मनो जिन· ॥७३॥
सवितर्क सविचार सपृथक्त्व तदादिम ॥
नानानयाश्रित तत्र वितर्कपूर्वकश्रुत ॥ ७४ ॥

अर्थ —जे समतापणे तथा निष्कपटपणे अने जीवनमुक्तपणे एवी स्थिति राखीने शुक्लध्यानने ध्याये, अने छद्मस्थपणे अणुमा मन धरीने रहे तेवारे रागद्वेषने जीते ॥ ७३ ॥ सपृथक्त्वसवितर्कसविचार, ए नामे शुक्लध्यानना पहेलो पायो तेने नानाविध नये सहित विचारपूर्वक श्रुते करी ध्यावो ॥ ७४ ॥

अर्थव्यजनयोगाना विचारोऽन्योन्यसक्रमः ॥
पृथक्त्व द्रव्यपर्यायगुणातरगति पुन. ॥ ७५ ॥

त्रियोगयोगिनः साधोर्वितर्काद्यन्वितं ह्यदः ॥
ईषच्चलत्तरंगाऽब्धेः क्षोभाभावदशानिभं ॥ ७६ ॥

अर्थः—अर्थ, अक्षर अने योग एना जे विचार तेनुं मांहोमांहे संक्रमण तेनुं नाम पृथक्त्व कहिये; ते केवुं छे? के द्रव्य, गुण अने पर्याय तेमां गति छे जेनी एवुं छे. ए पहेलो भेद ॥ ७५ ॥ त्रण योगे उपरम्या जे योगी ते साधुने वितर्कादिक थोडा चंचळ तरंग छे, जेमां एहवो जे समुद्र ते क्षोभनो जे अभाव तेवी दशा सरखुं छे ॥ ७६ ॥

एकत्वेन वितर्केण विचारेण च संयुतं ॥
निर्वातस्थप्रदीपाभं द्वितीयं त्वेकपर्ययम् ॥ ७७ ॥

सूक्ष्मक्रियानिवृत्ताख्यं तृतीयं तु जिनस्य तत् ॥
अर्धरुद्धांगयोगस्य रुद्धयोगे द्वयस्य च ॥ ७८ ॥

अर्थः—एकत्ववितर्कविचार नामे जे बीजो पायो ते पवन रहित जे दीवो ते सरखो छे. ए बीजो पायो ते एक पर्यायरूप छे ॥ ७७ ॥ सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति नामे त्रीजो पायो ते केवलीने होय. तेमां बादर जे काययोग तेने अर्द्ध रुंध्यो छे, अने मन तथा वचन ए बे योगने समस्त रुंधे तेवारे त्रीजो पायो ध्यावे ॥ ॥ ७८ ॥

तुरीयं तु समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति तत् ॥
शैलवन्निःप्रकंपस्य शैलेश्यं विश्ववेदिनः ॥ ७९ ॥

एतच्चतुर्विधं शुक्लध्यानमत्र द्वयोः फलं ॥
आद्ययोः सुरलोकाप्तिरंत्ययोस्तु महोदयः ॥ ८० ॥

अर्थः—हवे चोथा पायामां क्रिया उच्छेदी छे अने

पोते पर्वतनी पेरे अप्रतिपाति थयो छे, एहवो निश्ववेदी, जगतना सर्व भावनो जाण जे केवली ते निःप्रकंप पर्वतनी माफक घनीभूत थया शैलेशीकरण करे ॥ ७९ ॥ ए चार प्रकारनु शुक्लध्यान छे, तेनु फल कहे छे. इहा प्रथम बे पायामा जे काल करे ते स्वर्गगति पामे अने उपरना बे पायामा काल करवाथी मोक्ष पामे ॥ ८० ॥

आश्रवापायमसारानुभावभवसततीः ॥
अर्थे विपरिणाम वानुपश्येच्छुक्लविश्रमे ॥ ८१ ॥

द्वयोः शुक्ला तृतीये च लेश्या सा परमा मता ॥
चतुर्थः शुक्लभेदस्तु लेश्यातीतः प्रकीर्तितः ॥ ८२ ॥

अर्थ —शुक्लध्यानने विश्रामे आश्रवनो नाश देखे, संसारना स्वरूपने भवनी परपरा देखे अने अन्य पदार्थे आत्मानु विपरिणामपणु जुए ॥ ८१ ॥ ए शुक्लध्यानना प्रथम बे पायामा ने लेश्या तथा त्रीजे पाये तो परम उत्कृष्ट शुक्ललेश्या कही छे, अने चोथो पायो जे छे ते तो लेश्याये रहित कह्यो छे ॥८२॥

लिंग निर्मलयोगस्य शुक्लध्यानवतोऽवधः ॥
असमोहो विवेकश्च व्युत्सर्गश्चाभिधीयते ॥ ८३ ॥

अवधादुपसर्गेभ्य कपते न बिभेति च ॥
असमोहान्न सूक्ष्मार्थे मायास्वपि च मुह्यति ॥८४॥

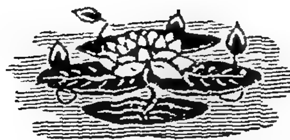
अर्थः—शुक्लध्यानवालाने निर्मल योग होय, तेना लक्षण कहे छे अहिंसक होय, मोहरहित, विवेकी होय अने त्यागबुद्धिये युक्त होय ॥ ८३ ॥ वली अवधी थयो माटे उपसर्ग अने

परिसह तेथी कंपे नही तथा बीहे पण नहीं. ए अहिंसक लक्षण होय १, तथा सूक्ष्म अर्थमां, वली मायामां मुंझाय नहीं; ए असंमोह एटले मोहरहितनुं लक्षण कह्युं २ ॥ ८४ ॥

विवेकात्सर्वसंयोगाद्भिन्नमात्मानमीक्षते ॥
देहोपकरणासंगो व्युत्सर्गाज्जायते मुनिः ॥ ८५ ॥
एतद्ध्यानक्रमं शुद्धं मत्वा भगवदाज्ञया ॥
यः कुर्यादेतदभ्यासं संपूर्णाध्यात्मविद्भवेत् ॥ ८६ ॥

अर्थः—सर्व संयोगथी आत्माने जूदो देखे, ए विवेकनुं लक्षण छे ३, देह तथा उपकरणनी त्यागबुद्धिये असंगानुष्ठान वर्त्ते छे, ए व्युत्सर्गनुं लक्षण छे ४. ए चार लक्षण ६६ मां श्लोकमां कह्यां छे. तेनो ए अर्थ विवरीने कह्यो. ए लक्षणे जे मुनि होय ते ज्ञानपणुं पामे ॥ ८५ ॥ ए रीते ध्याननो जे अनुक्रम ते शुद्ध रीते जाणीने, प्रभुनी आज्ञा प्रमाणे एनो अभ्यास जे करशे ते संपूर्ण अध्यात्मज्ञानी थाशे ॥ ८६ ॥

इति ध्यानाधिकारः षोडशः ॥



अथ ध्यानस्तुत्याधिकारः

यत्र गच्छति परं परिपाकं पाकशासनपदं तृणकल्पं ॥
स्वप्रकाशसुखबोधमयं तद्ध्यानमेव भवनाशि भजध्वं॥१

अर्थ —माटे उत्कृष्ट परिपक्व ध्यान पामे थके मुनिराज ते इन्द्रनी पदवीने पण तृण बराबर गणे, माटे जे थकी सुखे करी आत्माने प्रकाशकारी ज्ञान प्रगटे एवु संसारनु नाश करनारु ध्यान सेवनु ॥ १ ॥

आतुरैरपि जडैरपि साक्षात्
मुत्यजा हि विषया न तु रागः ॥
ध्यानवांस्तु परमद्युतिदर्शी
तृप्तिमाप्य न तमृच्छति भूयः ॥ २ ॥

अर्थ —कामातुर जे प्राणी तथा जड जे प्राणी ते पण प्रगटपणे विषयसुखने सुखे छाडे, पण रागदशा छाडवी दुर्घट छे, अने ध्यानवंत मुनि तो मात्र परमात्मानो ज दर्शनी छे ते तो ध्यानमा तृप्ति पामीने फरीथी रागद्वेषने वांछे नही ॥ २ ॥

या निशा सकलभूतगणानां
ध्यानिनो दिनमहोत्सव एषः ॥
यत्र जाग्रति च तेऽभिनिविष्टा
ध्यानिनो भवति तत्र सुषुप्तिः ॥ ३ ॥

अर्थ —सर्व प्राणीने निद्रामा जे रात्रि जाय छे ते ध्यानदशावालाने ए रात्री वे जागृत महोत्सवनो दिवस छे,

अने संसारी जीव विषयमां लीन थका जे वेलाये जागे छे ते वेला ध्यानवाला मुनिराजने शयनरूप छे ॥ ३ ॥

संप्लुतोदक इवांधुजलानां सर्वतः सकलकर्म्मफलानां ॥
सिद्धिरस्ति खलु यत्र तदुच्चैर्ध्यानमेव परमार्थनिदानं ॥४

अर्थः—जेम वपराया विनाना (अवड कुवानुं) पाणी डोहोलुं रहे छे, तेम जेमां सर्वथकी सकल कर्मना फलनी सिद्धि एहवो जे ध्यानरूप घट जे जलमां रमतो होय, (पाणी वपरातुं होय) त्यां जल निर्मल होय; माटे सकल क्रियाफलनी सिद्धि ध्यानथी छे, ध्यान ते परम अर्थनुं कारण छे ॥ ४ ॥

बध्यते न हि कषायसमुत्थैर्मानसैर्न ततभूपनमद्भिः ॥
अत्यनिष्टविषयैरपि दुःखैर्ध्यानवान्निभृतमात्मनि लीनः

अर्थ—जे ध्यानवान् पुरुष ते कषायजनित मने करी बंधातो नथी तेहने जो राजानी श्रेणी आवी नमस्कार करे, तो पण तेनुं चित्त डोहोलाय नही; अने अनिष्ट विषयनी प्राप्तिनां दुःखे करी पण निश्चलपणुं छोडे नहि, तेने आत्माने विषे लीन कहिये ॥ ५ ॥

स्पष्टदृष्टसुखसंभृतमिष्टं
ध्यानमस्तु शिवशर्मगरिष्टं ॥
नास्तिकस्तु निहतो यदि न ॥
स्यादेवमादिनयवाङ्मयदंडात् ॥ ६ ॥

अर्थ—प्रगट दीठुं अने मोक्षसुखे भर्युं एवुं जे ध्यान ते इष्ट छे, एटले मोक्षसुखथी पण ध्यान मोटुं छे, पण जिहां सुधी

शास्त्रना दृष्टथकी नास्तिकभावने अतिशयपणे हण्यो नथी तिहां सुधी नथी, पण नास्तिकभावे रहित जे ज्ञान ते मोटुं छे ॥ ६ ॥

यत्र नार्कविधुतारकदीपज्योतिषा प्रसरतामवकाश ॥
ध्यानभिन्नतमसामुदितात्मज्योतिषातदपि भाति रहस्य

अर्थ—जेनी आगल सूर्यनु तेज, तथा चंद्रमा अने तारानु तेज, वली दीपकना तेजनो प्रकाश अल्प छे, एवु जे ध्यान तेणे करीने भेदाणो छे अज्ञानरूप अंधकार जे प्राणीनो एहवा मुदित आत्मानालानु तेज ते गुप्तपणे पण आत्माने विषे शोभे छे ॥ ७ ॥

योजयत्यमितकालवियुक्ता प्रेयसीं शमरति त्वरितं यत् ॥
ध्यानमित्रमिदमेव मतं नः किं परैर्जगति कृत्रिममित्रैः ॥८॥

अर्थ—शमतारतिरूप स्त्रीनी साथे प्राणीने घणा कालथी वियोग हतो ते क्षणमा वियोग भागीने संयोग मिलावे एहवो ध्यान रूप परममित्र छे, ते ध्यानमित्र अमारे प्रमाण छे, एम ध्यान करनार प्राणी बोले छे, माटे संसारमा कृत्रिम परमित्रथी शु थाय ? ते कृत्रिम मित्रो करता तो ध्यानमित्र घणो श्रेष्ठ छे ॥ ८ ॥

वारितस्मरबलातपचारे
शीलशीतलसुगंधिनिवेशे ॥
उच्छ्रितप्रशमतल्पनिविष्टो
ध्यानधाम्नि लभते सुखमात्मा ॥ ९ ॥

अर्थ.—हवे ध्यानने रंगमंदिरनी उपमा आपे छे जिहा कामरूप ताप टल्यो छे, अने शीलरूप शीतल सुगंधी पसरी रही छे तेवी बेठकने विषे शमतारूप मोटी तलाइ छे, ते उपर आत्मा बेठो थको पूर्ण आनंद पामे छे, एवु ध्यानरूप मंदिर छे ॥ ९ ॥

शीलविष्टरदमोदकपीठं प्रातिहार्यसमतामधुपर्कैः॥
ध्यानधाम्नि भवति स्फुटमात्माहूतपूतपरमातिथिपूजा

अर्थ—ध्यानमंदिरमां शीलरूप सिंहासने इंद्रियदमन रूप जलनो बाजोट छे, अने शमतारूप पाणीओ ते एवा ध्यानघरमां पवित्रपणे आत्माने तेडीने तेनी मधुपर्के करी परोणागत करे छे ॥ १० ॥

आत्मानो हि परमात्मनि योऽ-
भूद्भेदबुद्धिकृत एव विवादः॥
ध्यानसंधिकृदमुं व्यपनीय,
द्रागभेदमनयोर्वितनोति ॥ ११ ॥

अर्थ—आत्मा अने परमात्माने विषे जे भेदबुद्धिनो विवाद हतो, एटले तेमां पंडितना विवादरूप झघडा हता तेने ध्यानरूप संधिपाले एटले ध्यानी पुरुषे ते विवादोने टाल्या अने जलदीथी ए बेउनुं अभेदपणुं करी आप्युं ॥ ११ ॥

क्वामृतं विषभृते फणिलोके ?
क्व क्षयिण्यपि विधौ त्रिदिवे वा ?।
क्वाप्सरो रतिमतां त्रिदशानां ?
ध्यान एव तदिदं बुधसेव्यं ॥ १२ ॥

अर्थ—विषथकी भरेलो जे नागलोक तिहां अमृत-क्यांथी होय ? तेम दिन दिन क्षय पामतो जे चंद्रमा तेमां अमृत किहांथी होय ? अने देवलोकमां अप्सराना योगे राता जे देवता तेमां पण अमृत किहांथी होय ? माटे ए मात्र ध्यानरूप अमृत ज सत्य छे, तेने ज पंडिते सेववुं ॥ १२ ॥

गोस्तनीपु न सितासु सुधाया नापि नापि वनिताधरबिंबे॥
त रस कमपि वेत्ति मनस्वी ध्यानसभवधृतौ प्रयते यः॥१३॥

अर्थ—गायना स्तनमा जे रस नथी, जे साकरमा रस नथी अने जे रस अमृतमा पण नथी, तेमज स्त्रीना अधर जे होठ तेमा पण जे रस नथी ते रस ध्यानथी प्रगटयो अने सतोषथी निस्तर्यो एहवो जे कोइक अपूर्व रस तेने तो कोइक पंडितज जाणे छे ॥ १३ ॥

इत्यवेत्य मनसा परिपक्वध्यानसभवफले गरिमाण ॥
तत्र यस्य रतिरेनमुपैति प्रौढधामभृतमाशु यशःश्री॥१४॥

अर्थ—ए प्रकारे मने करीने परिपक्व जे ध्यान, तेथी प्रगटयु जे फल तेहने मोटाइपणे जाणीने तेमा जे रति पाम ते महातेजवत कातिमान पुरुप छे अने तेने ज यशलक्ष्मी वरशे ॥१४॥

॥ इति श्री ध्यानस्तुत्यधिकार सप्तदश समाप्त ॥
॥ इति श्री महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिविरचिते
अध्यात्मसारप्रकरणे पचमपरिच्छेदः ॥



अथ आत्मनिश्चयाधिकारः

आत्मध्यानफलं ध्यानमात्मज्ञानं च मुक्तिदं ॥
आत्मज्ञानाय तन्नित्यं यत्नःकार्यो महात्मना ॥१॥
ज्ञाते ह्यात्मनि नो भूयो ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥
अज्ञाते पुनरेतस्मिन् ज्ञानमन्यन्निरर्थकं ॥ २ ॥

अर्थ—आत्माने ध्याननुं फल ते ध्यान छे, पण आत्मज्ञान होय तेवारेज तेने मुक्ति आपे, माटे ज्ञान ते मोटुं छे; तो मोटा पुरुषे आत्मज्ञान भणी उद्यम करवो ॥ १ ॥ जेणे आत्माने जाण्यो तेने फरी बीजुं कंइ जाणवानुं रह्युं नथी; अने जिहां सुधी आत्माने जाण्यो नथी तिहां सुधी बीजुं सर्व जाण्युं ते निरर्थक छे ॥ २ ॥

नवानामपि तत्त्वानां ज्ञानमात्मप्रसिद्धये ।
येनाजीवादयो भावाः स्वभेदप्रतियोगिनः ॥ ३ ॥
श्रुतो ह्यात्मपराभेदोऽनुभूतः संस्तुतोऽपि च ॥
निसर्गादुपदेशाद्वा वेत्ति भेदं तु कश्चन ॥ ४ ॥

अर्थ—नवे तत्त्वनुं जे जाणपणुं करवुं ते पण आत्मज्ञान प्रगट करवाने अर्थे छे, कारण के अजीवादिक जे भाव ते पण आत्मज्ञानवडे शमाय छे ॥ ३ ॥ पोतानो अने पारको जे भेद तेने भेदरूपे सांभळ्यो, अनुभव्यो, परिचय थयो थको, सहेजे अथवा उपदेशथकी कोइक भेदने जाण्यो ॥ ४ ॥

तदेकत्वपृथक्त्वाभ्यामात्मध्यानं हितावहं ॥
वृथैवाभिनिविष्टानामन्यथा धीर्विडंबना ॥ ५ ॥

एक एव हि तत्रात्मा स्वभावसमवस्थित ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणप्रतिपादित· ॥ ६ ॥

अर्थ—ते माटे एकत्वपृथक्त्वे करी आत्मज्ञान हितकारी थाय, नही तो फोकटपणे मिथ्यात्वनी वुद्धिनी विटनना छे ॥ ५ ॥ तिहा एक ज आत्मा स्वभावपणे रह्यो छे, ते आत्मा तो ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप लक्षणे कह्यो छे ॥ ६ ॥

प्रभानैर्मल्यशक्तीना यथा रत्नान्न भिन्नता ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणाना तयात्मन. ॥ ७ ॥

आत्मनो लक्षणाना च व्यवहारो हि भिन्नता ॥
षष्ठ्यादिव्यपदेशेन मन्यते न तु निश्चय. ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम रत्ननी काति अने निर्मलता ए बेउनी शक्ति काइ जुदी नथी, तेम ज्ञान, दर्शन अने चारित्रलक्षणे जे आत्मा ते काइ जुदो नथी ॥ ७ ॥ आत्मा अने आत्मानु लक्षण ए ने व्यवहारे जुदा छे ते षष्टि आदे विभक्तिने व्यपदेशे करी मानिये, पण निश्चयथी नही ॥ ८ ॥

घटस्य रूपमित्यत्र यथा भेदो विकल्पज ॥
आत्मनश्च गुणाना च तया भेदो न तात्त्विक· ॥९॥

शुद्ध यदात्मनो रूप निश्चयेनानुभूयते ॥
व्यवहारो भिदाद्वारानुभावयति तत्पर ॥ १० ॥

अर्थ—जेम घट अने घटनु रूप तेनो भेद ते विकल्पमात्र छे, तेम आत्माने अने गुणने परमार्थे भेद नथी ॥ ९ ॥

जे आत्मरूप शुद्ध छे ते निश्चयनये करी अनुभवाय छे; अने व्यवहारवडे पर के० काया ते पण ओलखाय छे ॥ १० ॥

वस्तुतस्तु गुणानां तद्रूपं न स्वात्मनः पृथक् ॥
आत्मा स्यादन्यथाऽनात्मा ज्ञानाद्यपि जडं भवेत् ॥११
चैतन्यपरसामान्यात्सर्वेषामेकतात्मनां ॥
निश्चिता कर्मजनितो भेदः पुनरुपप्लवः ॥ १२ ॥

अर्थ—वस्तुभावे तो गुणनुं अने आत्मानुं रूप जुदुं नथी. जो जुदुं कहीए तो आत्मा छे ते अनात्मा थाय; ज्ञानादिक जड थाय ॥ ११ ॥ चैतन्य पर सामान्यपणे सर्व आत्मानी एकता छे; अने निश्चयथी तो कर्मे प्रकट्यो जे भेद ते विटंबनारूप छे ॥ १२ ॥

मन्यते व्यवहारस्तु भूतग्रामादिभेदतः ॥
जन्मादेश्च व्यवस्थातो मिथो नानात्वमात्मनां॥१३॥
न चैतन्निश्चये युक्तं भूतग्रामो यतोऽखिलः ॥
नामकर्मप्रकृतिजः स्वभावो नात्मनः पुनः ॥१४॥

अर्थ— जीवसमूहना भेदथी तथा बाल जुवान वृद्ध ए अवस्थावडे मांहोमांहे विचित्रपणुं जणाय छे, एम व्यवहारनयवालो माने छे ॥ १३ ॥ पण ए वात निश्चयनयवालो मानतो नथी. ते एम कहे छे के, ए जीवने सर्व अवस्था नामकर्मना स्वभावथी प्रगटे छे; पण ए आत्मानो मूल स्वभाव नथी ॥ १४ ॥

जन्मादिकोऽपि नियतः परिणामो हि कर्मणां ॥
न च कर्मकृतो भेदः स्यादात्मन्यविकारिणि ॥१५॥
आरोप्य केवलं कर्मकृतां विकृतिमात्मनि ॥
भ्रमंति भ्रष्टविज्ञाना भीमे संसारसागरे ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म जरादिक परिणाम कर्मने वश छे, अने आत्मा तो अविकारी छे तेथी कर्मनो भेद आत्माने संभवे नहीं, केमके ए आत्मस्वभाव नथी ॥ १५ ॥ जन्म जरादिक कर्मप्रकृति छे, अने कर्मजनित भावने केवल आत्माने विषे आरोपीने भ्रष्ट ज्ञानी भयंकर संसारसमुद्रमा भमशे ॥ १६ ॥

उपाधिभेदजं भेदं वेत्यज्ञः स्फटिके यथा ॥
तथा कर्मकृतं भेदमात्मन्येवाभिमन्यते ॥ १७ ॥

उपाधिकर्मजो नास्ति व्यवहारास्त्वकर्मणः ॥
इत्यागमवचो लुप्तमात्मवैरूप्यवादिना ॥ १८ ॥

अर्थ—स्फटिकमा उपाधि भेदे जेम मूर्ख प्राणी भेद माने छे, तेम आत्माने विषे अज्ञानी जे कर्मकृत भेद ते माने छे ॥ १७ ॥ पोताना व्यवहारथी कर्मजनित जे उपाधि ते नथी, एम मानता आत्मनिरूपवादी आगमनु वचन लोपे छे ॥ १८ ॥

एकक्षेत्रस्थितोऽप्येति नात्मा कर्मगुणान्वयम् ॥
यथाऽभव्यस्वभावत्वाच्छुद्धो धर्मास्तिकायवत् ॥१९॥
यथा तैमिरिकश्चन्द्रमप्येकं मन्यते द्विधा ॥
अनिश्चयकृतोन्मादस्तथात्मानमनेकधा ॥ २० ॥

अर्थ—धर्मास्तिकायनी परे एक क्षेत्रमा रह्यो छे तो पण कर्मगुणना संयोगने पामतो नथी, एवो आत्मा रुडा स्वभावथी शुद्ध छे ॥ १९ ॥ जेम तिमिर के० ग्रहणघेलो एक चंद्रने बे चंद्र माने छे तेम निश्चयनयनी जाण विनानो जे प्राणी ते उन्माद ममत्वे करी आत्माने अनेक प्रकारे माने छे ॥ २० ॥

यथानुभूयते ह्येकं स्वरूपास्तित्वमन्वयात् ॥
सादृश्यास्तित्वमप्येकमविरुद्धं तथात्मनां ॥ २१ ॥

सदसद्वादपिशुनात संगोप्य व्यवहारतः ॥
दर्शयत्येकतारत्नं सतां शुद्धनयः सुहृत् ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम अन्वयथी एकस्वरूपास्तिपणाने अनुभविये छीए तेम सरखापणे जे विद्यमानपणु छे ते थकी आत्माने एक कहिये ॥ २१ ॥ व्यवहारनयथी सद्असद्वादरूप जे चाडियो तेने छुपावीने शुद्ध नयरूप जे मित्र छे, ते एकतारूप रत्नने देखाडे छे ॥ २२ ॥

नृनारकादिपर्यायैर प्युत्पन्नविनश्वरैः ॥
भिन्नैर्जहाति नैकत्वमात्मद्रव्यं सदान्वयि ॥ २३ ॥

यथैकं हेमकेयूरकुंडलादिषु वर्त्तते ॥
नृनारकादिभावेषु तथात्मैको निरंजनः ॥ २४ ॥

अर्थ—नर, नारकादि पर्याय जे उपजे छे अने विणशे छे, ते भिन्न पर्याय कांइ रम्य नथी; माटे ते पर्याये करीने सदा अन्वयी-जे शुद्धवंशी आत्मतत्त्व ते एकत्वपणाने छांडतुं नथी ॥ २३ ॥ जेम सुवर्ण एक छे, पण बाजुबंध, कंठी, कुंडलादिक पर्याये वर्त्ते छे, तेम आत्मा एक छे, पण नर, नारकादिकना भवे करी भिन्न छे; पण आत्मा तो एक निरंजन छे ॥ २४ ॥

कर्मणस्ते हि पर्याया नात्मनः शुद्धसाक्षिणः ॥
कर्मक्रिया स्वभावो यदात्मा तु न स्वभाववान् ॥२५॥

नाणूनां कर्मणो वासौ भवसर्गः स्वभावजः ॥
एकैकविरहो भावान्न च तत्त्वांतरं स्थितं ॥ २६ ॥

अर्थ—जे नर, नारकादिक भव ते तो मर्ने कर्मना पर्याय छे, पण शुद्ध साक्षी निश्चयनये आत्मपर्याय छे, अने कर्मक्रियारूप जे स्वभाव ते काइ आत्मानो मूल स्वभाव नथी, आत्मा तो अज, अविनाशी स्वस्वभावी छे ॥ २५ ॥ केवल कर्मना जे परमाणुओ तेथी आ ससार सर्ग स्वाभाविक नथी परतु जीव अने पुद्गल ए बन्नेना मलवाथी ते उत्पन्न थयेल छे, अने ते बेना परस्पर विरहथी ससार सर्गनी उत्पत्ति नथी, तेमज जीवना कोइ तत्त्वथी पण ससारनी स्थिति सभवती नथी एकेक उज्वलताने विषे भावथकी नर तत्त्वमा रह्यु छे ॥ २६ ॥

श्वेतद्रव्यकृत श्वैत्य भित्तिभागे यथा द्वयो॰ ॥
भात्यनतर्भवत्सत्य प्रपचोऽपि तथेक्षता ॥ २७ ॥

यथा स्वभावबुद्ध्योऽर्था चिबुद्धेन न दृश्यते ॥
व्यवहारमत सर्गा ज्ञानिना न तथेक्षते ॥ २८ ॥

अर्थ—जेम श्वेत द्रव्ये कीधेलु जे चित्रामण ते भींतना भागमा (सबधथी) शोभे, तेम अनत भवसत्यताये ए प्रपचने जाणवो, एटले जीव कर्मनो सबध छूटी गया पछी ससार रहतो नथी ॥ २७ ॥ जेम स्वप्नमा दीठेलो अर्थ जाग्या पछी देखाय नही, तेम व्यवहारे स्वर्गादिक मार्ग श्रेष्ट छे, पण नियत प्रमाणी ज्ञानी पुरुषने ससार न जणाय ॥ २८ ॥

मध्याह्ने मृगतृष्णाया पय॰ पूरो यदेक्ष्यते ॥
तथा सयोगज सर्गो विवेकाख्यातिविप्लवे ॥ २९ ॥

गधर्वनगरादीनामवरे डम्बरो यथा ॥
तथा सयोगज सर्वो विलासो वितथाकृति॰ ॥३०॥

अर्थ–जेम मध्याह्ने मृगजलवडे पृथ्वी उपर जलपूर देखाय छे, तेम संयोगे उपनी जे सृष्टि ते विवेकनी ख्यातिये नाश देखाय छे ॥ २९ ॥ जेम गंधर्वनगरवडे आकाशे आडंबर जणाय, तेम संयोगे प्रगटया जे सर्व विलास ते जूठा छे ॥३०॥

इति शुद्धनयायत्तमेकत्वं प्राप्तमात्मनि ॥
अंशादिकल्पनाप्यस्य नेष्टा यत्पूर्णवादिनः ॥ ३१ ॥
एक आत्मेति सूत्रस्याप्ययमेवाशयो मतः ॥
प्रत्यग्ज्योतिषमात्मानमाहुः शुद्धनयाः खलु ॥३२॥

अर्थ—ए रीते शुद्ध नये जे एकत्वपणुं ग्रह्युं ते आत्माने विषे पाम्युं; अने अंशादिकनी जे कल्पना ते पूर्ण वादीने व्हाली नथी ॥ ३१ ॥ सूत्रमां, "एगे आया" एवो जे पाठ छे, ते एज आशये कह्यो छे. एक प्रगट ज्योतिरूप जे आत्मा ते तेज-रूप छे, एम शुद्ध नयवाला कहे छे ॥ ३२ ॥

प्रपंच संचयक्लिष्टान्मायारूपाद्बिभेमि ते ॥
प्रसीद भगवन्नात्मन् ! शुद्धरूपं प्रकाशय ॥ ३३ ॥
देहेन सममेकत्वं मन्यते व्यवहारवित् ॥
कथंचिन्मूर्ततापत्तेर्वेदनादिसमुद्भवात् ॥ ३४ ॥

अर्थ—निश्चय नय कहे छे के, प्रपंच संचयवडे संक्लिष्ट एटले दुःखरूप एवुं जे ए मायारूप छे; ते थकी हे भगवन् ! हे आत्मा ! हुं बीहुं छुं; माटे प्रसन्न थाओ अने शुद्धरूप प्रकाश करो ! ॥ ३३ ॥ कोइक प्रकारे रूपीपणुं पाम्यो जे आत्मा तेने वेदनादिक उपजे छे; माटे व्यवहार नयवालो शरीर साथे आत्मानुं एकत्वपणुं माने छे ॥ ३४ ॥

तन्निश्चयो न सहते यदमूर्त्तो न मूर्त्तता ॥
अंशेनाप्यवगाहेत पावकः शीततामिव ॥ ३५ ॥
उष्णस्याग्नेर्यथा योगाद् घृतमुष्णमिति भ्रमः ॥
तथा मूर्त्तागसंबंधादात्मा मूर्त्त इति भ्रमः ॥ ३६ ॥

अर्थ—पण ए वात निश्चयवालो सही शकतो नथी, जेम अग्नि शीतलता पामतो नथी, तेम जे अरूपी आत्मा छे ते अंशे करीने पण रूपीपणाने पामतो नथी ॥ ३५ ॥ जेम बलता अग्निने संयोगे घृत उष्ण छे एवो भ्रम थाय छे, तेम रूपी शरीरने संयोगे आत्मा पण रूपी दीसे छे, ए पण भ्रमणाए देखाय छे ॥३६॥

न रूपं न रसो गंधो न च स्पर्शो न चाकृतिः ॥
यस्य धर्मो न शब्दो वा तस्य का नाम मूर्त्तता? ॥३७॥
दृशामदृश्यं ह्यग्राह्यं वाचामपि न गोचरः ॥
स्वप्रकाशं हि यद्रूपं तस्य का नाम मूर्त्तता ? ॥३८॥

अर्थ—जेमके रूप, रस, गंध, स्पर्श अने संस्थान एटला पोताना आत्माने नथी, ए तो पुद्गलना छे, तेमज बाह्य धर्म पण नथी, शब्द नथी, तेवार आत्माने शी रीते रूपी कहवाय ? ॥ ३७ ॥ वली आत्मा नजरे देखाय एवो पण नथी, मनथी ग्रहाय एवो पण नथी, वली वचन पण अगोचर छे, जेनुं रूप पोताना प्रकाशे छे, पण बीजाना प्रकाश नथी, तेने रूपी केम कहवाय ? ३८ ॥

आत्मा सत्यचिदानन्दः सूक्ष्मात्सूक्ष्मः परात्परः ॥
स्पृशत्यपि न मूर्त्तत्वं तथा चोक्तं परैरपि ॥३९॥
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ॥
मनसोऽपि परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मा सत्य छे; चिदानंदमयी छे; सूक्ष्मथी पण सूक्ष्म छे; उत्कृष्टमां उत्कृष्ट छे; ते मूर्त्तपणु केम फरसे? तेमज परदर्शनमां श्रीकृष्ण कहे छे–हे अर्जुन! शरीरमां इंद्रियो मोटी छे, अने इंद्रियोथी मन मोटुं; मन करतां बुद्धि महोटी छे अने तेथी आत्मा मोटो छे ॥ ३९–४० ॥

विकले हंत लोकेऽस्मिन्नमूर्त्ते मूर्त्तताभ्रमात् ॥
पश्यत्याश्चर्यवज् ज्ञानी वदत्याश्चर्यवद्वचः ॥ ४१ ॥
वेदना येन मूर्त्तत्वं निमित्ता स्फुटमात्मनः ॥
पुद्गलानां तदापत्तेः किं त्वशुद्धस्वशक्तिजा ॥ ४२ ॥

अर्थ—हंत इति खेदे. आ विकल लोकने विषे अमूर्त आत्माने विषे मूर्त्तपणाना भ्रमथकी जे ज्ञानी पुरुष छे ते अचंबो देखे छे, अने वचन पण अचंबाना बोले छे ॥ ४१ ॥ जे माटे जीवात्माने मूर्त्त निमित्त वेदना प्रगटपणे छे, एम जो मानीए तो पुद्गलने वेदना थइ जोइये; ते माटे ए वेदना तो आत्माने अशुद्ध शक्तिथी अनुभवाय छे ॥ ४२ ॥

अक्षद्वारा यथा ज्ञानं स्वयं परिणमत्ययं ॥
तथेष्टानिष्टविषयस्पर्शद्वारेण वेदनां ॥ ४३ ॥
विपाककालं प्राप्यासौ वेदनापरिणामभाक् ॥
मूर्त्तं निमित्तमात्रं नो घटे दंडवदन्वयि ॥ ४४ ॥

अर्थ—इंद्रियद्वारे करी जेम ज्ञानदिशा पोतानी मेले परिणमे छे, तेम इष्ट अनिष्ट विषय स्पर्शद्वारे करी वेदना परिणमे छे ॥ ४३ ॥ विपाककाल पामीने आ वेदना परिणामने जेम आत्मा भजे छे, तेथी अमारे मते मूर्त्तपणुं ते

निमित्तमात्र थयु, अन्वयी के० सहचारी थयु जेम घटने निपे दट सहचारी छे तेनी पेठे जाणवु ॥ ४४ ॥

ज्ञानाख्या चेतना बोध, कर्म्माख्य द्विष्टरक्तता ॥
जतोः कर्मफलाख्या सा वेदना व्यपदिश्यते ॥४५॥
नात्मा तस्मादमूर्त्तत्व चैतन्य चातिवर्तते ॥
अतो देहेन नैकत्व तस्य मूर्त्तेन कर्हिचित् ॥ ४६ ॥

अर्थ—ज्ञान नामे चेतना ते बोध छे अने कर्म नामे द्विष्ट रक्तता छे, तेवडे जीवने कर्मफल नाम वेदना व्यपदेश पाम छे ॥ ४५ ॥ ते माटे अमूर्त आत्मा त चेतन्यपणाने उलध नही अने मूर्तिमान् देह साथे आत्माने कोइ प्रकारे एकत्वपणु छेज नही ॥ ४६ ॥

सन्निकृष्टान्मनोवाणीकर्मादेरपि पुद्गलात् ॥
विप्रकृष्टाद्धनादेश्च भाव्यैव भिन्नात्मन ॥ ४७ ॥
पुद्गलाना गुणोमूर्त्तिरात्मा ज्ञानगुणः पुन ॥
पुद्गलेभ्यस्ततो भिन्नमात्मद्रव्य जगुर्जिनाः ॥ ४८ ॥

अर्थ.—ए रीत कर्म वर्गणाना, मनोवर्गणाना, वचनवर्गणाना जे आत्माने समीपवर्ति, एकत्वमगतवर्ति एवा तनधनादिक जे पुद्गल त तो सर्व आत्माथी भिन्न क० दूर छे ॥ ४७ ॥ केमके पुद्गलनो गुण तो मूर्तिमान् छे, अन आत्मा ता ज्ञानगुण मय छे, माटे पुद्गलथी आत्मद्रव्य जुदु छे एम प्रभु कहे छे ।४८।

धर्मस्य गतिहेतुत्व गुणो ज्ञान तयात्मनः ॥
धर्मास्तिकायात्तद्भिन्नमात्मद्रव्य जगुर्जिनाः ॥ ४९ ॥

अधर्मे स्थितिहेतुत्वं गुणो ज्ञान गुणोऽसुमान् ॥
तनो धर्मास्तिकायान्यमात्मद्रव्यं जगुर्जिना: ॥५०॥

अर्थ:—धर्मास्तिकायनो गुण गतिहेतु छे अने आत्मानो गुण ज्ञान छे, माटे धर्मास्तिकायथी आत्मा जुदो छे एम प्रभु कहे छे ॥ ४९ ॥ अधर्मास्तिकायनो गुण स्थितिहेतु छे अने आत्मानो ज्ञान गुण छे, माटे अधर्मास्तिकायथी आत्मद्रव्य जुदुं छे एम प्रभु कहे छे ॥ ५० ॥

अवगाहो गुणो व्योम्नो ज्ञानं खल्वात्मनो गुण: ॥
व्योमास्तिकायात्तद्भिन्नमात्मद्रव्यं जगुर्जिना: ॥५१

आत्मज्ञानगुण: सिद्ध: समयो वर्त्तनागुण: ॥
तद्भिन्नं समयद्रव्यादात्मद्रव्यं जगुर्जिना: ॥ ५२ ॥

अर्थ:—आकाशनो गुण अवगाह छे, अने आत्मानो गुण ज्ञान छे, माटे आकाशास्तिकाय थी आत्मद्रव्य जुदुं छे एम प्रभु कहे छे ॥ ५१ ॥ आत्मा ज्ञान गुणे सिद्ध छे, काल वर्त्तनारूप छे, माटे कालथी आत्मद्रव्य जुदुं छे, एम प्रभु कहे छे ॥ ५२ ॥

आत्मनस्तदजीवेभ्यो विभिन्नत्वं व्यवस्थितं ॥
व्यक्तिभेदेनयादेशादजीवत्वमपीष्यते ॥ ५३ ॥

अजीवा जन्मिन: शुद्धभावप्राणव्यपेक्षया ॥
सिद्धाश्च निर्मलज्ञाना द्रव्यप्राणव्यपेक्षया ॥ ५४ ॥

अर्थ:—ए प्रमाणे अजीवथी आत्मानुं जुदापणुं सत्य ठर्युं, पण भेदे करी देशथकी अजीवपणुं पण वंछीए छीए ॥ ५३ ॥ जेम निर्मल ज्ञानवंत सिद्धने द्रव्यप्राणनी अपेक्षा रहित-पणे अजीवपणुं कहिये, तेम शुद्ध भावप्राणनी अपेक्षा रहित जीवने अजीव कहिये छीए ॥ ५४ ॥

इन्द्रियाणि बल श्वासोच्छ्‌वासो ह्यायुस्तथा परं ॥
द्रव्यप्राणाश्चतुर्भेदाः पर्यायाः पुद्गलाश्रिताः ॥ ५५ ॥

भिन्नास्ते ह्यात्मनोऽत्यन्त तदेतैर्नास्ति जीवन ॥
ज्ञानधैर्यसदाश्वासनित्यस्थितिविकारिभिः ॥ ५६ ॥

अर्थ.—इंद्रिय, बल, श्वासोच्छ्‌वास अने आयुष्य ए रीते द्रव्यप्राण चार भेदे छे एना पर्याय तो पुद्‌गलने आश्री रह्या छे ॥ ५५ ॥ ते आत्माथी अत्यंत जुदा छे, माटे एवडे काइ आत्माने जीववु नथी ए पर्याय तो ज्ञान, धैर्य, तेना श्वासनी जे काइ नित्य स्थिति तेणे करी वर्जित छे ॥ ५६ ॥

एतत्प्रकृतिभूताभिः शाश्वतीभिस्तु शक्तिभिः ॥
जीवत्यात्मा सदेत्येषा शुद्धद्रव्यनयस्थितिः ॥५७॥

जीवो जीवति न प्राणैर्विना तैरेव जीवति ॥
इद चित्र चरित्र को हत पर्यनुयुञ्जता ॥ ५८ ॥

अर्थ.—ए प्रकृतिरूप शाश्वती शक्ति तेणे करीने आत्मा सदैव जीवे छे, ए शुद्ध द्रव्यनयनी स्थिति जाणवी ॥ ५७ ॥ जीव काइ प्राणे करीने जीवतो नथी, ए जीव तो प्राण विना जीवे छे, ए अचरजनी वात विचित्रकारी चरित्र सांभली कोण न हर्खे ? अने ए वात शुद्ध नये कोण न जोडे ? ॥ ५८ ॥

नात्मा पुण्य न वा पापमेते यत्पुद्गलात्मके॥
आद्यबालशरीरस्योपादानत्वेन कल्प्यते ॥ ५९ ॥

पुण्य कर्म शुभ प्रोक्तमशुभ पापमुच्यते ॥
तत्कथ तु शुभ जतून यत् पातयति जन्मनि ॥६०॥

अर्थ —आत्मा पुण्य नहीं तेम पाप पण नहीं, केमके

पण ते पाप नो अनुबन्ध छे, एटला माटे ते कर्मने
उपादानकारण कह्यो छे ॥ ५९ ॥ जे शुभ कर्म ते सुवर्णनी,
अने जे अशुभ कर्म ते पाप लोढानी, बेडी ते शुभ कर्म ते छे ते
बीजाने बंधनमां केम पाडे छे ? ॥ ६० ॥

न चायसस्य सौवर्णस्य पाशस्य च ॥
पारतंत्र्याविशेषेण फलभेदोऽस्ति कश्चन ॥ ६१ ॥
फलाभ्यां सुखदुःखाभ्यां न भेदः पुण्यपापयोः ॥
दुःखान्न भिद्यते हंत यतः पुण्यफलं सुखं ॥ ६२ ॥

अर्थः—एक लोढानी बेडी अने एक सुवर्णनी बेडी ते पण परतन्त्रपणुं छे, माटे विशेषपणे तो फलभेद कांई नथी. तेम अशुभ कर्म ते लोढानी बेडी अने जे शुभ कर्म ते सुवर्णनी बेडी ॥ ६१ ॥ सुखनां फल अने दुःखनां जे फल प्रगट छे, तेथी पुण्यपाप मध्ये कांई भेद नथी. जे माटे पाप सुख भिन्नसे ए पुण्यनुं फल छे, ते पण दुःखरूप ज छे ॥ ६२ ॥

सर्वं पुण्यफलं दुःखं कर्मोदयकृतत्वतः ॥
तत्र दुःखप्रतीकारे विमूढानां सुखत्वधीः ॥ ६३ ॥
परिणामाच्च तापाच्च संस्काराच्च बुधैर्मतं ॥
गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखं पुण्यभवं सुखं ॥ ६४ ॥

अर्थः—माटे सर्वे पुण्यनुं फल ते दुःखरूप छे, केमके ए कर्मना उदयथी थाय छे; माटे दुःखना प्रतीकारने विषे मूर्खने सुखबुद्धि उपजे छे ॥ ६३ ॥ पंडित कहे छे के, परिणामथी, तापथी अने संस्कारथी गुणवृत्ति विरोधी एहवुं जे पुण्य, तेथी नीपन्युं जे सुख ते दुःखप्राय छे ॥ ६४ ॥

देहपुष्टेर्नरामर्त्यनायकानामपि स्फुट ।
महाजपोपणस्येव परिणामोऽतिदारुण॰ ॥ ६५ ॥

जलूकाः सुखमानिन्यः पिबत्यो रुधिर यथा ॥
भुजाना विपयान् याति दशामतेऽतिदारुणा ॥६६॥

अर्थ—नरने, राजाने तथा इन्द्रादिकने पण जे सुखमा शरीरनी पुष्टि थाय छे ते मोटा बोकडानी पेठे छे, ए कथा उत्तराध्ययनसूत्रमा कही छे तिहाथी जाणवी जे वारे वध थयो, ते वारे परिणाम अतिदु ख छे ॥ ६५ ॥ जेम जलो लोही पीता थका सुख माने छे तेम विषय भोगवता थका प्राणी सुख माने छे, पण तेथी अते माठी दशाने पामे छे ॥ ६६ ॥

तीव्राग्निसगसशुष्यत्पयसामयसामिव ॥
यत्रौत्सुक्यात्मदाक्षाणा तप्तता तत्र कि सुख ? ॥६७॥
प्राक्पश्चाचारतिस्पर्शात्पुटपाकमुपेयुपि ॥
इद्रियाणा गणे तापव्याप एव न निर्वृत्तिः ॥ ६८ ॥

अर्थ—आकरी अग्निमा बलतराए करी लोह पाणी पीये छे तेम ज्या सदा इद्रियोनी उत्कठाथी घणीज बलतरा रहे छे त्या शु सुख छे ? ॥ ६७ ॥ पहला अथवा पछी पण जे थकी अरति उपजे, तेने अडकवाथी विपाक पामे थके इद्रियोना समूहमा ताप व्यापे पण सुख न थाय, एटले पहला बाध्या जे कर्म ते जेवारे भोगववामा आवे तेवारे पण अरति लइनेज आवे, अने पछी ते कर्मो विपाके पण दुःख आपे ॥ ६८ ॥

सदा यत्र स्थितो द्वेपोल्लेख स्वप्रतिपक्षिषु ॥
सुखानुभवकालेऽपि तत्र तापहत मन. ॥ ६९ ॥

स्कंधात् स्कंधांतरारोपे भारस्येव न तत्त्वतः ॥
अक्षाल्हादेऽपि दुःखस्य संस्कारोऽपि निवर्त्तते ॥७०॥

अर्थः—जेहने मदेत्र शत्रु उपर द्वेष रह्यो छे ते प्राणी जो घरमां सुखे बेठो होय, तो पण तेहने सुख न होय. तेम विषयसुखमां अनुभवकाले पण विषयना तापे करी जेनुं मन हणायुं छे, तेहने सुख क्यांथी होय ? ॥ ६९ ॥ जेम एक खंभा उपरथी बीजा खंभा उपर भार लीधो, पण तत्त्वथी भार उतर्यो नहीं एम इंद्रियोने आनंदे दुःखनो संस्कार मटतो नथी ॥ ७० ॥

सुखं दुःखं च मोहश्च तिस्रोपि गुणवृत्तयः ॥
विरुद्धा अपि वर्त्तंते दुःखजात्यनतिक्रमात् ॥ ७१ ॥
क्रुद्धनागफणाभोगोपमो भोगोद्भवोऽखिलः ॥
विलासश्चित्ररूपोऽपि भयहेतुर्विवेकिनां ॥ ७२ ॥

अर्थः—सुख, दुःख अने मोह ए त्रणे जो के विरुद्ध छे, तो पण गुणवृत्तिये वर्ते छेः केमके दुःखनी जातिने उल्लंघन करी शकता नथी, माटे गुणवर्तीरूप छे ॥ ७१ ॥ क्रोधी नागनी फणना विस्तार सरखो सर्व भोगविलास छे. वली ते भोग-विलास यद्यपि विचित्ररूप छे, तथापि विवेकीजनने ते भयनो हेतु छे ॥ ७२ ॥

इत्थमेकत्वमापन्नं फलतः पुण्यपापयोः ॥
मन्यते यो न मूढात्मा नांतस्तस्य भवोदधेः ॥ ७३ ॥
दुःखैकरूपयोर्भिन्नस्तेनात्मा पुण्यपापयोः ॥
शुद्धनिश्चयतः सत्यचिदानंदमयः सदा ॥ ७४ ॥

अर्थः—ए रीते फलनी अपेक्षाये पुण्यपापनुं एकत्वपणुं

ठगाव्यु, पण जे मूर्ख न मानशे ते समारमा भटकशे, अने जे मानशे ते भवसागर तरी जशे ॥ ७३ ॥ पुण्य अने पाप ए बेउ एक सरखा दुःखस्वरूप ज छे, ते थकी आत्मा भिन्न छे, शुद्ध निश्चयनयथी सदा सतचिदानदमय छे ॥ ७४ ॥

तत् तुरीयदशाव्यग्गरूपमाचरणान्वयात् ॥
भात्युष्णोद्योतशीलस्य घननाशाद्रवेरिव ॥ ७५ ॥
जायते जाग्रतोऽक्षेभ्यश्चित्रार्थीसुखवृत्तय. ॥
सामान्य तु चिदानदरूप सर्वदशान्वयि ॥ ७६ ॥

अर्थः—ए वात त चाथी दिशाये जाणवा योग्य छे जेम वर्षाकालमा मघ वरमी रह्या पछी वादलनो नाश थाय छे, अने सूर्यप्रभा शोभे छे, तेम व्यगरूप विचित्र एहवा आचरण विशेष करी चोथी दशामा शोभे छे ॥ ७५ ॥ जागता जीवने इद्रियोनी सुखवृत्तिओ नाना प्रकारनी थाय छे, पण सामान्य जे चिदानद-स्वरूप तने तो सर्व दशामा सरखु सुख छे ॥ ७६ ॥

स्फुलिगनै यथा वह्निर्दीप्यते ताप्यतेऽथवा ॥
नानुभूतिपराभूती तयेताभि किलात्मनः ॥ ७७ ॥
साक्षिण सुखरूपस्य सुषुप्तौ निरहकृते ॥
यथा भान तथा शुद्धविवेके तदतिस्फुट ॥ ७८ ॥

अर्थ.—तणखे करीने जेम अग्नि दीप नहीं, तपे नहीं, तेम अनुभव पराभवादिके करीने आत्माने कइ नथी ॥ ७७ ॥ निद्रावस्थामा जेम सुखरूपनो साक्षी जे आत्मा तने अहकारे रहित सुखनो भास थाय छे, तेम शुद्ध विवेकने विषे तो प्रगटपणे सुख भासे छे ॥ ७८ ॥

संग्रहनय उपर चाले, केमके सम्मति ग्रंथमां सिद्धसेन सूरिए कह्युं छे ॥ ८८ ॥

तन्मते च न कर्तृत्वं भावानां सर्वदान्वयात् ॥
कूटस्थः केवलं तिष्ठत्यात्मा साक्षित्वमाश्रितः॥८९॥
कर्त्तुं व्याप्रियते नायमुदासीन इव स्थितः ॥
आकाशमिव पंकेन लिप्यते न च कर्मणा ॥ ९० ॥

अर्थः—तेने मते कर्त्तापणुं नथी, केमके सर्वभावनो अन्वय छे; माटे कूटस्थ केवल निर्विक्रिय जे आत्मा ते साक्षीपणाने आश्रीने रह्यो छे ॥ ८९ ॥ करवानो व्यापार करतो नथी; उदासीनी पेठे रह्यो छे. जेम कचरे आकाश लेपातुं नथी तेम कर्मे आत्मा लेपातो नथी ॥ ९० ॥

स्वरूपं तु न कर्त्तव्यं ज्ञातव्यं केवलं स्वतः ॥
दीपेन दीप्यते ज्योतिर्नित्यपूर्वं विधीयते ॥९१॥
अन्यथा प्रागनात्मा स्यात्स्वरूपाननुवृत्तितः ॥
भव हेतुसहस्रेणाप्यात्मता स्यादनात्मनः ॥ ९२ ॥

अर्थः—पोताना रूपने नवीन करवुं नथी, मात्र पोताना रूपने पोताथकी केवल जाणी लेवुं छे. जेम दीवेथी ज्योति दीपे छे तेम नित्य शाश्वत आत्मा स्वप्रकाश होवाथी पोते पोताने प्रकाशे छे ॥ ९१ ॥ एम आत्माने स्वप्रकाश अने शाश्वत अंगीकार करीए नही अने परप्रकाश तथा कर्तृत्व सिद्ध मानीए तो, पूर्वे अनात्मपणुं अंगीकार करवुं पडशे, केमके क्रियावडे उत्पन्न थएला पदार्थनुं पूर्वनुं रूप जुदुंज होय छे, एवो नियम छे. एवी रीते आत्मानी उत्पत्तिनी पूर्वे आत्माने अनात्मा मानवो

पडशे अने क्रियावडे आत्मानु रूपांतर थाय छे, एम मानीए तो आत्मानी आवृत्ति अगीकार करवी पडशे आवृत्ति अगीकार करीए तो ससार विषयक हजारो कृत्यरूप हेतुवडे हजारो रूप बदलाशे त्यारे पूर्व पूर्वनु रूप अनात्मा अने उत्तर उत्तरक्रियाजन्य रूप आत्मा मानवो पडशे, अने एम कर्याथी छेवटे अनवस्था दोष प्राप्त थशे ॥ ९२ ॥

नये तेनेह नो कर्त्ता किं त्वात्मा शुद्धभावभृत् ॥
उपचारात्तु लोकेषु तत्कर्तृत्वमपीष्यते ॥ ९३ ॥
उत्पत्तिमात्र धर्माणा विशेषग्राहिणो जगुः ॥
अव्यक्तिरावृत्तेस्तेषा नाभावादिति का प्रमा? ॥९४॥

अर्थ — ते माटे आ नयने विषे कर्तापणु नथी, केमके आत्मा शुद्ध भावनो धरनार छे अने लोकमा उपचारथी तेनु कर्तापणु कह छे ॥ ९३ ॥ विशेषग्राही जे ज्ञानी पुरुषो छे ते पूर्वोक्त रीते आत्माने क्रियासिद्ध मानता नथी, किंतु आत्माना धर्मोनी उत्पत्ति माने छे अहीं कोइने शका थशे के, जेम आत्मा अव्यक्त छे तेम आत्माना धर्म पण अव्यक्त छे, तो ज्यारे आत्मानी उत्पत्ति मानता नथी त्यारे तेना धर्मनी उत्पत्ति पण केम मनाय? तेनु समाधान ए के, केटली एक अव्यक्त वस्तुओ आकाशनी पेठे जेमनी तेम रहे छे अने केटली एक रूपांतरने पामे छे आत्मा शाश्वता व्यक्त छे अने तेना धर्म अशाश्वता व्यक्त छे, माटे तओनी आवृत्ति थाय छे केमके जेम आत्मानी अनावृत्तिमा घणा प्रमाणो छे, तम आत्माना धर्मनी आवृत्ति न थवामा कोइ प्रमाण नथी, तेथी आत्मानी पुनरावृत्ति थती नथी पण आत्माना धर्मोनी पुनरावृत्ति थाय छे, एवु सिद्ध थयु ॥९४॥

सत्वं च परसंताने नोपयुक्तं कथंचन ॥
संतानिनामनित्यत्वात्संतानोऽपि न च ध्रुवः ॥९५॥
व्योमाव्युत्पत्तिमत्तत्त्वदवगाहात्मना ततः ॥
नित्यता नात्मधर्माणां तद्दृष्टांतबलादपि ॥ ९६ ॥

अर्थः—आत्मानुं उत्पत्तिरहितपणुं दृष्टांतवडे दृढ करे छे. जेम पिता पुत्ररूप परिवारनी उत्पत्तिमां पूर्व पूर्वपितारूप कारणथी उत्तर उत्तरपुत्ररूप कार्यनी उत्पत्ति थवाथी पितापणानो अभाव अने पुत्रपणानो भाव थाय छे, एम संकलना चालतां जेम पितानो नाश तेम पुत्रनो पण नाश थाय छे. तेम अनात्माथी आत्मानी उत्पत्तिरूप प्रवाहथी पूर्वनो अभाव अने उत्तरनो भाव थतां पूर्वनी पेठे उत्तरना नाशनो पण संभव सिद्ध थाय छे, एथी आत्मा अशाश्वत अने नाशरूप ठरशे ॥ ९५ ॥ आकाशना दृष्टांतवडे आत्मानुं अचलपणुं अने आत्माना धर्मोनुं चलायमान-पणुं सिद्ध थाय छे. जेम आकाश उत्पत्ति रहित छे तेथी तेनुं रूपांतर थतुं नथी; तेमज आत्मा पण उत्पत्ति रहित होवाथी तेनुं रूपांतर थतुं नथी. अने आत्माना धर्म उत्पत्तिवान छे तेथी तेनुं रूपांतर थाय छे. अहीं पण आकाशनुं व्यतिरेकपणे दृष्टांत लेवुं. जे वस्तु आकाशनी पेठे उत्पत्ति रहित नथी होती तेनुं रूपांतर थाय छे ॥ ९६ ॥

ऋजुसूत्रनयसूत्रः कर्तृतां तस्य मन्यते ॥
स्वयं परिणमत्यात्मा यं यं भावं यदा यदा ॥९७॥
कर्तृत्वं परभावानामसौ नाभ्युपगच्छति ॥
क्रियाद्वयं हि नैकस्य द्रव्यस्याभिमतं जिनैः ॥९८॥

अर्थ·—ज्यारे आत्मानुं रूपांतर थतुं नथी त्यारे परिणामनादनो उच्छेद थशे, एवी आशंका करीने तेनो उत्तर कहे छे. रुजुसूत्रनयवालो, ज्यारे ज्यारे जे जे भावना परिणामने आत्मा पामे छे त्यारे त्यारे त ते भावरूप कर्मवडे परिणामरूप उत्पत्ति माने छे, तथापि आत्माने कर्तृत्वपणे बीना भावनी प्राप्ति थती नथी, केमके एक द्रव्यमा बे क्रिया समवे नही, एवुं जिनने अभिमत छे ॥ ९७–९८ ॥

भूतिर्या हि क्रिया सैव स्यादेकद्रव्यसततौ ॥
न साजात्य विना च स्यात्परद्रव्यगुणेषु सा ॥९९॥
न चैवमन्यभावाना न चेत्कर्त्ताऽपरो जन ॥
तदा हिंसादयादानहरणाय व्यवस्थित· ॥ १०० ॥

अर्थ.—भूति एटले भाव अने क्रिया ए बन्नेनो एक अर्थ छे ते एक द्रव्य सततिने विषे सामान्य विना न थाय, अने द्रव्यना गुणने विषे पण न थाय, केमके कोइ पण द्रव्य अपरभावनो कर्त्ता होतो नथी ॥ ९९ ॥ एमज आत्माने विषे अन्य भावनु कर्त्तापणु नथी त्यारे शिष्य पूछे छे के हिंसा, दया, दान वगेरनी व्यवस्था केम रहेशे ? ॥ १०० ॥

सत्य पराश्रय न स्यात् फल कस्यापि यद्यपि ॥
तथापि स्वगत कर्म स्वफल नाभिवर्त्तते ॥ १०१ ॥
हिनस्ति न पर कोऽपि निश्चयान्न च रक्षति ॥
नचायु कर्मणो नाशो मृतिर्जीवनमन्यथा ॥१०२॥

अर्थ.—त्यारे गुरु कहे छे, यद्यपि ए तारु बोलवु साचु छे केमके कोइने पण पराश्रये फल थतु नथी (तथापि पोताने

विषे रहेलुं जे कर्म ते पोताना फलने विषे प्रवर्त्ततुं नथी)
॥ १०१ ॥ निश्चयवडे बीजा कोइने कोइ मारतो नथी तेम
कोइनुं कोइ रक्षण करतो नथी; आयु कर्मनो नाश थाय नहीं
अने मृत्यु जीवन अन्यथा थाय नहीं ॥ १०२ ॥

हिंसादयाविकल्पाभ्यां स्वमताभ्यां तु केवलं ॥
फलं विचित्रमाप्नोति परापेक्षां विना पुमान् ॥१०३॥
शरीरी म्रियतां मा वा ध्रुवं हिंसा प्रमादिनः ॥
दयैव यतमानस्य वधेऽपि प्राणिनां क्वचित् ॥ १०४ ॥

अर्थः—हिंसा अने दयानी पण मात्र कल्पना छे. पोताना मते करी तो परनी अपेक्षाथी पुरुष केवल विचित्र फलने पामे छे ॥ १०३ ॥ जीवनो घात थाय अथवा न थाय, तो पण जे प्रमादी जीव छे तेने निश्चये करी हिंसा थाय छे; अने जे दयावान प्राणी छे तेना हाथे कदाच कोइ जीवनो घात थइ जाय, तो पण तेने हिंसा लागती नथी ॥ १०४ ॥

परस्य युज्यते दानं हरणं वा न कस्यचित् ॥
न धर्मसुखयोर्यत्ते कृतनाशादिदोषतः ॥ १०५ ॥
भिन्नाभ्यां भक्तवित्तादिपुद्गलाभ्यां च ते कुतः ? ॥
स्वत्वापत्तिर्यतो दानं हरणं सत्वनाशनं ॥ १०६ ॥

अर्थः—कोइ बीजाने दान देतो नथी, अने बीजानी पासेथी कोइ कांइ हरण करी लेतो नथी; धर्म अने सुखने विषे पण दान तथा हरणनो संभव नथी, केमके कृतनाश अने अकृतनो प्रसंग इत्यादि दोष प्राप्त थशे. जेम दान कर्युं तेनो नाश थाय तेने कृतनाश कहे छे, अने जे बीजाने आप्युं नथी तेनुं हरण

करवु ते अकृतागम प्रसंग कहवाय एवा दोष आत्माने विषे प्राप्त थशे ॥ १०५ ॥ केमके भोजन तथा धनादिक जे पुद्गल ते तो आत्माथी भिन्न छे, तो तेमा क्याथी पोतापणु आव्यु ? माटे दान अने हरण ते पोताथी ज नाश छे ॥ १०६ ॥

कर्मोदयाच्च तद्दान हरण वा शरीरिणा ॥
पुरुषाणा प्रयासः कस्ततोपनमति स्वतः ॥ १०७ ॥
स्वागताभ्या तु भावाभ्या केवल दानचौर्ययोः ॥
अनुग्रहोपघातौ स्तः परापेक्षा परस्य न ॥ १०८ ॥

अर्थ.—वली ते दान अने हरण प्राणीने कर्मना उदयथकी छे, त्या पुरुषने शो प्रयास छे ? ते तो पोतानी मेलेज उदय पामे छे ॥ १०७ ॥ पोतामा रह्या एवा जे दान अने हरणना भाव तेणे करीने एकथी उपकार थाय, बीजाथी उपघात थाय, त्या परनी अपेक्षा परने नहीं ॥ १०८ ॥

पराश्रिताना भावाना कर्तृत्वाद्यभिमानतः ।
कर्मणा बध्यतेऽज्ञानी ज्ञानवास्तु न लिप्यते ॥१०९॥
कर्तृत्वमात्मनो पुण्यपापयोरपि कर्मणो ॥
रागद्वेषाशयाना तु कर्तेष्टानिष्टवस्तुषु ॥ ११० ॥

अर्थ —पर आश्रित जे भाव तेना हु कर्ता छु, एम अभिमानथी रहतु, एवा कर्मे अज्ञानी बधाय छे, पण ज्ञानी तेना कर्म लेपाता नथी ॥ १०९ ॥ माटे आत्मा ते पुण्य पापरूप कर्मनो कर्ता छे, राग-द्वेष आशयनो कर्ता छे अने इष्ट अनिष्ट वस्तुने विषे पण आत्मा कर्ता छे ॥ ११० ॥

रज्यते द्वेष्टि चार्थेषु तत्तत्कार्यविकल्पतः ॥
आत्मा यदा तदा कर्म भ्रमदात्मनि युज्यते ॥१११॥
स्नेहाभ्यक्तत नोरंगं रेणुनाश्लिष्यते यथा ॥
रागद्वेषानुविद्धस्य कर्मबंधस्तथामतः ॥ ११२ ॥

अर्थः—जेवारे ते ते कर्मना विकल्पथी आत्माने कोइ पदार्थ उपर रागदशा अथवा द्वेष उपजे छे तेवारे आत्मामां कर्मनो भ्रम जोडाय छे ॥ १११ ॥ तेल लगाडेला शरीरे जेम रजनो लेप वलगे छे तेम रागी अने द्वेषी आत्माने कर्मनो बंध वलगे छे ॥ ११२ ॥

आत्मा न व्यापृतस्तत्र रागद्वेषाशयं सृजन् ॥
तन्निमित्तोपनम्रेषु कर्मोपादानकर्मसु ॥ ११३ ॥
लोहं स्वक्रिययाभ्येति भ्रामकोपलसंनिधौ ॥
यथा कर्म तथा चित्रं रक्तद्विष्टात्मसंनिधौ ॥११४॥

अर्थः—तिहां आत्मा पोते कोइ क्रिया करतो नथी, पण राग द्वेष करतो थको ते निमित्ते पाम्यां जे कर्म तेना निमित्ते कर्त्तापणुं कर्म छे; पण तिहां आत्मा तो रागद्वेष रूप कर्मनो मूकनारो छे. एटले आत्मा भावकर्मनो व्यापारवंत छे; पण द्रव्य कर्मनो व्यापारवंत नथी ॥ ११३ ॥ जेम चमक पाषाण ते लोहने आकर्षे, तेणे करी लोह पोतानी क्रियाये चमक पासे आवी मले, तेम रागद्वेषी आत्मानी पासे कर्म आकर्षणे आवी मले छे ॥ ११४ ॥

वारि वर्षन् यथांभोदो धान्यवर्षी निगद्यते ॥
भावकर्म सृजन्नात्मा तथा पुद्गलकर्मकृत् ॥ ११५ ॥

नैगमव्यवहारौ तु स्थूलः कर्मादिकर्तृता ॥
व्यापारः फलपर्यंतः परिदृष्टो यदात्मनः ॥ ११६ ॥

अर्थ.—जेम पाणी वरसे छे ते लोकव्यवहारे धान्य वरसे छे एम कहीए, तेम भावकर्म करतो थको आत्मा पुद्गल कर्मनो कर्त्ता कहीए ॥ ११५ ॥ नेगम अने व्यवहारनयवाला तो कर्मादिकनो कर्त्ता आत्माने माने छे, जे आत्मानो व्यापार ते फलपर्यंत देखाय छे ॥ ११६ ॥

अन्योऽन्यानुगतानां का तदेतदिति वा भिदा॥
यावच्चरमपर्याय यथा पानीयदुग्धयोः ॥ ११७ ॥

नात्मनो विकृतिं दत्ते तदेषा नयकल्पना ॥
शुद्धस्य रजतस्येव शुक्तिधर्मप्रकल्पना ॥ ११८ ॥

अर्थः—परस्पर मल्या एवा जे नय तेने, (एवो निर्णय यावत् चरमपर्याय छे) परंतु जातिभेद केम जणाय ? जेम दूध अने पाणीना संयोगनी पेठे संग्रह माने नेगमने, अने नैगम माने संग्रहने, ए बे नय माहोमाह भले छे एम व्यवहार पण भले छे ॥ ११७ ॥ वली शुद्धनयवालो बोले छे के, आत्माने विकार नथी विकार ए नेगम तथा व्यवहारनयनी कल्पना छे केनी पेठे ? ते कहे छे जेम शुद्ध रूपाने छीपनो धर्म कल्प छे तेनी पेठे जाणवुं ॥ ११८ ॥

मुषितत्वं यथा पान्थ गतं पथ्युपचर्यते ॥
तथा पुद्गलकर्मस्था विक्रियात्मनि बालिशैः ॥११९॥

कृष्णः शोणोऽपि चोपाधेर्नाशुद्धः स्फटिको यथा ॥
रक्तोद्विष्टस्तथैवात्मा संसर्गात्पुण्यपापयोः ॥१२०॥

अर्थः—जेम पंथीजनने लुंटतां लोक कहेशे जे मार्ग लुंटाणो, ए लोक वाक्य छे तेम मूर्ख प्राणी पुद्‍गल कर्ममां रही जेवी क्रिया करे ते आत्माने विषे माने छे ॥ ११९ ॥ जेम कालो अथवा रातो स्फटिक छे ते उपाधिथी छे, माटे तेने अशुद्ध न कहिये; तेम पुण्य-पापना संयोगथी आत्मा रागी-द्वेषी कहेवाय छे ॥ १२० ॥

सेयं नटकला तावद् यावद्विविधकल्पना ॥
यद्रूपं कल्पनातीतं न तु पश्यत्यकल्पकः ॥ १२१ ॥
कल्पनामोहितो जंतुः शुक्लं कृष्णं च पश्यति ॥
तस्यां पुनर्विलीनायामशुक्लं कृष्णमीक्षते ॥ १२२ ॥

अर्थः—जिहां सुधी विविध प्रकारनी कल्पना होय तिहां सुधी ए सर्व नटकलारूप छे, पण कल्पनाये अतीत जे रूप तेने तो जे अकल्प कह्यो होय ते देखे ॥ १२१ ॥ पण कल्पनाये मुंझाणो जे जीव ते तो धोलाने कालुं देखे अने कालाने धोलुं देखे, अने ते कल्पना जेवारे जाय तेवारे तो कालाने कालुंज देखे अने धोलाने धोलुंज देखे ॥ १२२ ॥

तद्ध्यानं सा स्तुतिर्भक्तिः सैवोक्ता परमात्मनः ॥
पुण्यपापविहीनस्य यद्रूपस्यानुचिंतनं ॥ १२३ ॥
शरीररूपलावण्यवप्रच्छत्रध्वजादिभिः ॥
वर्णितैर्वीतरागस्य वास्तवी नोपवर्णना ॥ १२४ ॥

अर्थः—पुण्य-पाप रहित एहवा जे परमात्मा प्रभु तेना स्वरूपनु चिंतवनु तेनेज ध्यान कहिये, अने स्तुति पण तेज तथा भक्ति पण तेज कहिये ॥ १२३ ॥ पण शरीरना वर्णे, रूपे करी, लावण्यताए करी, समवसरणे अने छत्रे करी, तथा इंद्रध्वजादिके करी जे परमात्माने वखाणवा एहवी स्तुतिने वस्तुत साची न कहिये ॥ १२४ ॥

व्यवहारस्तुतिः सेयं वीतरागात्मवर्त्तिना ॥
ज्ञानादीनां गुणानां तु वर्णना निश्चयस्तुतिः ॥१२५॥
पुरादिवर्णनाद्राजा स्तुतः स्यादुपचारतः ॥
तत्त्वतः शौर्यगांभीर्यधैर्यादिगुणवर्णनात् ॥ १२६ ॥

अर्थः—केमके ए स्तुति तो व्यवहार छे, पण जेमां वीतरागना ज्ञानादिक गुण प्रशमवा तेहज निश्चय स्तुति कहिये ॥ १२५ ॥ जेम देश नगरादिके करी राजा वखाणवो ए उपचारे स्तुति जाणवी, पण राजानु बल, गांभीर्यता, धैर्यतानु वर्णववु, ते निश्चयथी स्तुति कहिये ॥ १२६ ॥

मुख्योपचारधर्माणामविभागेन या स्तुतिः ॥
न सा चित्तप्रसादाय कवित्व कुकवेरिव ॥ १२७ ॥
अन्यथाभिनिवेशेन प्रत्युतानर्थकारिणी ॥
सुतीक्ष्णखड्गधारेव प्रमादेन करे धृता ॥ १२८ ॥

अर्थः—जेम कुकविनी रचिताथी पंडित रीझे नहीं, तेम नाथ उपचार देखी भेंचण विनानी ने स्तुति करिये ते थकी चित्तप्रसन्न थाय नहीं ॥ १२७ ॥ जे पोताना हठ—कदाग्रह करी

मुखउपचारे स्तुति करी गुण माने छे, पण ते ऊलटी अनर्थकारी छे; जेम प्रमादे करी हाथमां झालेली तरवार ते जो कदाच पडे, तो ऊलटी अनर्थ–विघात करे छे; तेनीपरे ते स्तुति पण अन्यथा जाणवी ॥ १२८ ॥

मणिप्रभामणिज्ञानन्यायेन शुभकल्पना ॥
वस्तुस्पर्शितया न्याय्या यावन्नाञ्जनप्रथा ॥ १२९ ॥
पुण्यपापविनिर्मुक्तं तत्त्वतस्त्वविकल्पकं ॥
नित्यं ब्रह्म सदा ध्येय मेषा शुद्धनयस्थितिः ॥१३०॥

अर्थः—मणिरत्ननी कांति देखीने जेम मणिनुं ज्ञान के० ओलखाण थाय छे, ए दृष्टांते शुभ कल्पनाये करी आत्मानुं ज्ञान थाय छे. पछी वस्तुस्पर्शिकवडे करी योग्यता थाय छे; पण ज्यां सुधी निरंजन प्रथा नथी थइ त्यां सुधी कर्म छे ॥ १२९ ॥ माटे पुण्य–पाप रहितपणे तत्त्वथी निर्विकल्प एवो शाश्वतो जे आत्मा ते सदाय ध्याववो. एवी शुद्ध नयनी स्थिति छे ॥१३०॥

आश्रवः संवरश्चापि नात्मा विज्ञानलक्षणः ॥
यत्कर्मपुद्गलादानरोधावाश्रवसंवरः ॥ १३१ ॥
आत्मादत्ते तु यैर्भावैः स्वतंत्रः कर्मपुद्गलान् ॥
मिथ्यात्वाविरती योगाः कषायास्ते तदाश्रवा॥१३२

अर्थः—आत्मा ज्ञानरूप छे, माटे आत्माने आश्रव. संवर कांइ न कहिये; पण कर्म पुद्गलनुं ग्रहवुं तथा रोधवुं ते आश्रव संवर छे ॥ १३१ ॥ जे भावे करी स्वाधीनपणे कर्म-पुद्गलने आत्मा ग्रहे छे, ते मिथ्यात्व, अविरति, कषाय अने योगरूप आश्रवे करी जाणवुं ॥ १३२ ॥

भावनाधर्मचारित्रपरिषहजयादयः ॥
आश्रवोच्छेदिनो धर्मा आत्मनो भावसंवराः ॥१३३॥
आश्रवः संवरो न स्यात्संवरश्चाश्रवः क्वचित् ॥
भवमोक्षफलाभेदोऽन्यथा स्याद्धेतुसंकरात् ॥ १३४ ॥

अर्थः—अने भावना धर्म जे चारित्र छे, जेथकी परिषहनो जय थाय ते ए आश्रवनो उच्छेदक धर्म छे ए आत्माने भावसंवर कहिये ॥ १३३ ॥ जे आश्रव ते संवर न थाय, अने जे संवर ते आश्रव न थाय हेतु संकर ए ने जो कदापि एकरूप थाय, तो संसार अने मोक्ष ए बेना फल पण एक थाय, पण तेमा भेद रहे नहीं एटले ज्यां आश्रवे करी संवरनु संक्रमण थाय त्यां मोक्षफल जाणवु, अने ज्यां संवरे करी आश्रवनु संक्रमण थाय त्यां संसारफल जाणवु ॥ १३४ ॥

कर्माश्रवांश्च संरुन्धन्नात्मा भिन्ननिजाशयः ॥
करोति न परापेक्षामलंभूष्णुः स्वतः सदा ॥१३५॥
निमित्तमात्रभूतास्तु हिंसाऽहिंसादयोऽखिलाः ॥
ये परप्राणिपर्याया न ते स्वफलहेतवः ॥ १३६ ॥

अर्थ —आश्रवभावने संवर करतो थको जे पोताना आत्माथी जुदा नथी एवा जे पोताना आशय तेणे करी परअपेक्षा न करे, केमके ते पोताथी सदा समर्थ छे ॥ १३५ ॥ जे हिंसा अहिंसादिक सघला पर प्राणिना पर्याय ते आत्माने निमित्तभूत जे, पण पोताने फलहेतु नथी ॥ १३६ ॥

व्यवहारविमूढस्तु हेतूंस्तानेव मन्यते ॥
बाह्यक्रियारतस्वान्तस्तत्त्वं गूढं न पश्यति ॥१३७॥

हेतुत्वं प्रतिपद्यंते नैवेति नियमास्पृशः ॥

यावंत आश्रवाः प्रोक्तास्तावंतोहि परिश्रवा॥ १३८

अर्थः—व्यवहारमूढ जे आत्मा ते परपर्यायने पोताना फलहेतु माने छे, माटे जेनुं मन बाह्यक्रियामां रक्त छे तेवा प्राणी गुप्त तत्त्वने देखता नथी ॥ १३७ ॥ जे हिंसादिक तथा अहिंसादिक परपर्याय हेतुपणुं छे, तेने पडिवजे अथवा नथी पडिवर्जता एहवो नियम ते तो निश्चयना जे फरमनारा छे तेहने जेटला आश्रव छे तेटला संवररूप थाय ॥ १३८ ॥

तस्मादनियतं रूपं बाह्यहेतुषु सर्वथा ॥

नियतौ भाववैचित्र्यादात्मैवाश्रवसंवरौ ॥ १३९ ॥

अज्ञाता विषयासक्तो बध्यते विषयैस्तु नः ॥

ज्ञानाच्छिद्वि मुच्यते चात्मा नतु शास्त्रादिपुद्गलात् १४०

अर्थः—ते माटे सदाय बाह्य हेतुने विषे अनियतरूप छे. नियतिने विषे भावना विचित्रपणाथकी आत्मा तेज संवर आश्रवरूप छे ॥ १३९ ॥ जे अज्ञानी छे अने विषयासक्त छे, तेहिज विषयमां बंधाय छे. ते विषय तो आत्माने आत्मज्ञानथकी मूकाय, पण शास्त्रादिक पुद्गलथकी न मूकाय ॥ १४० ॥

शास्त्रं गुरोश्च विनयं क्रियामावश्यकानि च ॥

संवरांगतया प्राहु र्व्यवहारविशारदाः ॥ १४१ ॥

विशिष्टा वाक्तनुस्वांत पुद्गलास्तेऽफलावहाः ॥

ये तु ज्ञानादयो भावाः संवरत्वं प्रयांति ते ॥१४२॥

अर्थः—शास्त्र भणवुं, गुरुनो विनय करवो, तथा आवश्यकादिक क्रिया करवी एने व्यवहारमां विचक्षण पुरुषोए संवरनां

अंग कह्या छे ॥ १४१ ॥ जे रुडा मन-वचन-कायाये करी प्रवर्तेलु तेहना जे पुद्गल ते फलदायी छे, पण जे ज्ञानादिक भाव छे, ते संवरपणाने पामे छे ॥ १४२ ॥

ज्ञानादिभावयुक्तेषु शुभयोगेषु तद्गत ॥
संवरत्व समारोप्य स्मयते व्यवहारिणः ॥ १४३ ॥
प्रशस्तरागयुक्तेषु चारित्रादिगुणेष्वपि ॥
शुभाश्रवत्वमारोप्य फलभेद वदंति ते ॥ १४४ ॥

अर्थः—ज्ञानादिक भावे युक्त एवा जे शुभ योग तेने विषे तद्गत जे संवरत्व तेने आरोपीने व्यवहार प्रवर्त्तक जे जीव ते हर्ष पामे छे ॥ १४३ ॥ रुडा रागे युक्त एवा जे चारित्रादिक गुण तेने विषे पण शुभ आश्रवपणु आरोपीने फलभेद कहे छे ॥ १४४ ॥

भवनिर्वाणहेतूना वस्तुतो न विपर्यय ॥
अज्ञानादेव तद्भावो ज्ञानी तत्र न मुह्यति ॥ १४५ ॥
तीर्थकृन्नामहेतुत्व यत्सम्यक्त्वस्य वर्ण्यते ॥
यच्चाहारकहेतुत्व संयमस्यातिशायिनः ॥ १४६ ॥

अर्थ —संसार तथा मोक्षनो हेतु तेने वस्तुतत्त्व काइ विपर्यास नथी, पण अज्ञानना योगथकी ते जगाये विपर्यासपणु थाय छे, पण तिहा ज्ञानी पुरुष काइ मुझाता नथी ॥ १४५ ॥ जिननाम कर्मनो हेतु जे समकितने वर्णवीए छीए, ते पण उपचार कहवाय छे, अने आहारक शरीरनो हेतु जे अतिशय लब्धिवत संयमी मुनि ते पण उपचार कहवाय छे ॥ १४६ ॥

अर्थः—निर्जरानुं कारण ते शुद्ध ज्ञाने सहित प्रगट्यो अने चित्तनी चंचलवृत्तिने रोकतो एहवो बार भेदे तप छे ॥ १५५ ॥ जिहां प्रभुना ध्यानयुक्त कषायनो रोध छे, ब्रह्मचर्यनुं धरवुं छे ते शुद्ध तप जाणवो. ए सिवाय बीजो तप ते मात्र लांघण करवा जेवो छे ॥ १५६ ॥

बुभुक्षा देहकार्श्यं वा तपसो नास्ति लक्षणं ॥

तितिक्षाब्रह्मगुप्त्यादिस्थानं ज्ञानं तु तद्वपुः ॥१५७॥

ज्ञानेन निपुणेनैक्यं प्राप्तं चंदनगंधवत् ॥

निर्जरामात्मनो दत्ते तपो नान्यादृशं क्वचित् ॥१५८॥

अर्थः— भूखे मरवुं, शरीरने दुबलुं करवुं, ए तपनुं लक्षण नथी; पण जिहां ज्ञानयुक्तपणे ब्रह्मचर्यनी गुप्ति, तथा तितिक्षा के० शांति होय ते तपनुं स्वरूप छे ॥ १५७ ॥ ज्ञान साथे एकता भावने पाम्यो एवो जे तप तेने तप कहिये, जेम चंदन साथे गंध एकताभावने पाम्यो छे, तेनीपरे ए तप ते ज्ञाने युक्त थको आत्माने निर्ज्जरा फल आपे, पण बीजी रीते न आपे ॥ १५८ ॥

तपस्वी जिनभक्त्या च शासनोद्भासनोत्थया ॥

पुण्यं बध्नाति बहुलं मुच्यते तु गतस्पृहः ॥ १५९ ॥

कर्मतापकरं ज्ञानं तपस्तनैव वेत्ति यः ॥

प्राप्नोतु स हतस्वांतो विपुलां निर्जरां कथं ? ॥१६०॥

अर्थः—निरासी भावे तपनो करनारो तपसी जिन तथा ज्ञानभक्तिए करी शासनने दिपावे, घणुं पुण्य बांधे अने कर्मथी मुकाय ॥ १५९ ॥ कर्मने तपावे एवुं ज्ञान छे, अने ते ज्ञानने

जे धणी तप न जाणे ते तपसी निर्बुद्धिनो धणी निपुल निर्जरा केम पामे ? ॥ १६० ॥

अज्ञानी तपसा जन्मकोटिभि कर्म यन्नयेत ॥
अत ज्ञानतपोयुक्तस्तत्क्षणेनैव संहरेत् ॥ १६१ ॥
ज्ञानयोगस्तपःशुद्धमित्याहुर्मुनिपुंगवा. ॥
तस्मान्निकाचितस्यापि कर्मणो युज्यते क्षय ॥१६२॥

अर्थ'—ज्ञान विना एक कोटि भन सुधी जेटला तप करे, ते तपमा जेटला कमक्षय न थाय तेटला कर्मोने एक क्षणमा ज्ञान सहित तपे करी खपावे ॥ १६१ ॥ माटे ज्ञानयोगे जे तप करवो ते शुद्ध छे, ए रीते प्रभु कहे छे, केमके ते तपथी निकाचित कर्मनो क्षय थाय छे ॥ १६२ ॥

यदिहापूर्वीकरण श्रेणि शुद्धा च जायते ॥
ध्रुवः स्थितिक्षयस्तत्र स्थिताना प्राच्यकर्मणा॥१६३॥
तस्माद्‌ज्ञानमय शुद्धस्तपस्वी भावनिर्जरा ॥
शुद्धनिश्चयतस्त्वेषा शुद्धाशुद्धस्य क्वापि न ॥१६४॥

अर्थ'—जे तपथी इहा अपूर्वकरण श्रेणि शुद्ध थाय, वली एथी पूर्वकर्मनी रही जे स्थिति ते स्थिति निश्चयथी क्षय थाय ॥ १६३ ॥ ते माटे ज्ञानमयी जे शुद्ध तपसी तेने निश्चयथी शुद्ध भाव निर्जरा थाय, पण अज्ञान तपसीने काइ न थाय॥१६४॥

बंध कर्मात्मसंश्लेषो द्रव्यत स चतुर्विधः ॥
तद्धेतवध्यवसायात्मा भावतस्तु प्रकीर्तित ॥१६५॥

वेष्टयत्यात्मनात्मानं यथा सर्पस्तथासुमान् ॥
तत्तद्भावैः परिणतो बध्नात्यात्मानमात्मना ॥१६६॥

अर्थः—कर्मनी साथे आत्मानुं जे मलवुं तेने बंध कहिये, ते बंध चार भेदे छे. ते हेतु अध्यवसाये आत्मभावथी कह्यो छे ॥ १६५ ॥ जेम सर्प पोतानी मेले पोते विंटाय छे तेम आत्मा पण ते ते भावे परिणम्यो थको पोतपोतानी मेलेज कर्म साथे बंधाय छे ॥ १६६ ॥

बध्नाति स्वं यथा कोशकारकीटः स्वतंतुभिः ॥
आत्मनः स्वगतैर्भावैर्बंधने सोपमा स्मृता ॥ १६७॥
जंतूनां सापराधानां बंधकारी न हीश्वरः ॥
तद्बंधकानवस्थानादबंधस्याप्रवृत्तितः ॥ १६८ ॥

अर्थः—जेम रेशमनो कीडो पोतानी लाळे करी पोतेज बंधाय छे तेम आत्मा पोताना रागादि परिणामे करी पोतेज बंधाय छे, ए उपमा कही ॥ १६७ ॥ पण जे ईश्वर कर्त्ता कहे छे ते वात निषेध छे, अपराधी जीवने कांइ ईश्वर बंधकर्त्ता नथी, ते ईश्वर बंधकर्त्तापणाना निषेधवा थकी अबंधनीय आत्माने विषे अप्रवृत्ति छे. एटले स्वभावेज बंधनिवृत्ति आत्माने छे पण ईश्वर कर्त्ता नथी ॥ १६८ ॥

तत्त्वज्ञानप्रवृत्त्यर्थं ज्ञानवन्नोदना ध्रुवा ॥
अबुद्धिपूर्वकार्येषु स्वभादौ तददर्शनात् ॥ १६९ ॥
तथाभव्यतया जंतुर्नोदितश्च प्रवर्त्तते ॥
बध्नन् पुण्यं च पापं च परिणामानुसारतः ॥१७०॥

अर्थः—ज्ञाननतनी जे प्रेरणा छे ते तत्त्वज्ञाननी प्रवृत्तिने अर्थे ध्रुव छे, केमके स्वप्नादिक जे अबुद्धिपूर्वक कार्य छे तेने विषे ए ज्ञाननी प्रेरणा काइ देखाती नथी, ते माटे ॥ १६९ ॥ तेमज प्राणी भव्यताये प्रेर्यो थको परिणामने अनुसारे करी पुण्य, पापने साधतो थको प्रवर्त्ते छे ॥ १७० ॥

शुद्धनिश्चयत. स्वात्मा न बद्धो बधशकया ॥
भयकपादिक किंतु रज्जावहिपतेरिव ॥ १७१ ॥
रोगस्थित्यनुसारेण प्रवृत्ती रोगिणो यथा ॥
भवस्थित्यनुसारेण तथा बधोऽपि वर्ण्यते॥ १७२ ॥

अर्थ'—शुद्ध निश्चयनयथकी तो आत्मा अबधक छे, पण भयकपादिके करी बधनी शका रहे छे, जेम दोरडु देखी सर्पनी शका उपजे छे तेनीपर जाणवुं ॥ १७१ ॥ रोगनी स्थितिने अनुसारे रोग छे, एटले जे दिवसे शरीर उपनु, तेन दिवसथी मर्व रोगनी स्थितिओ शरीरमा उत्पन्न थयेली छे अर्थात शरीर कमल रोगनी स्थितिम्यन छे, पण ते रोग जेवार रोगी कुपथ्य सवे तेवारे प्रगट थाय छे तेवार रोगी पुरुप जेम रोगनी प्रवृत्ति गणे छे तेमन भवस्थितिने अनुसार आत्माने बध कहिये छीए ॥ १७२ ॥

दृढाज्ञानमयीशका मर्नोमपनिनीषत ॥
अध्यात्मशास्त्रमिच्छति श्रोतु वैराग्यकाक्षिण. ॥१७३
दिशाप्रदर्शक शाखा चद्रन्यायेन तत्पुन ॥
प्रत्यक्षविषया शका न हि हति परोक्षभी ॥१७४॥

अर्थ —दृढ अज्ञानमय एवी जे शका तेहने टालवाने

इच्छतो, वैराग्यनो अभिलाषी थको, अध्यात्मशास्त्र सांभलवाने इच्छे छे ॥ १७३ ॥ जेम निर्मल चक्षु छतां ग्रहणवेला जेवी नजर थइ जाय तो तेणे करी एक चंद्रनी पासे बीजो चंद्र देखे ए न्याये करी जे अध्यात्मशास्त्र छे ते पण दिशिनुं देखाडनार छे, पण परोक्ष बुद्धि कांइ प्रत्यक्ष विषयनी आशंकाने टाळी न शके. एटले अध्यात्मनो विषय प्रत्यक्षपणे नथी, परोक्षपणे छे; माटे स्वभावे जे अध्यात्मशास्त्र छे ते परोक्षबुद्धि छे, पण अनुभव ते साक्षात् प्रत्यक्षपणाने हणी न शके; एटले आत्मानुभवी पुरुषो पोताना अनुभवे करी आत्मानो प्रत्यक्ष अनुभव करे छे ॥१७४॥

शंखे श्वैत्यानुमानेऽपि दोषात्पीतत्वधीर्यथा ॥

शास्त्रज्ञानेऽपि मिथ्याधीः संस्काराद्बंधधीस्तथा १७५

श्रुत्वा मत्वा मुहुः स्मृत्वा साक्षादनुभवंति ये ॥

तत्त्वं न बंधधीस्तेषामात्माबंधः प्रकाशते ॥ १७६ ॥

अर्थः—जेम मधुरानो रोगवंत पुरुष ते यद्यपि शंखने उज्वल तो जाणे छे, पण रोगे करी तेने पीला वर्णनी बुद्धि थाय छे, तेम शास्त्रे करी आत्माने निर्मल तो जाणे छे पण मिथ्यात्व बुद्धिना संस्कारथकी बंधरूप बुद्धि छे. एटले आत्माने रागी द्वेषी बंधरूप जे देखे छे, ते अनुभव विना देखे छे. ए भावार्थ छे ॥ १७५ ॥ गुरुना मुखथी अध्यात्मशास्त्रनुं सांभलवुं तेने श्रवण कहे छे, ते सांभळेला विषयनो अनुक्रमे पुनः पुनः अंतःकरणमां विचार करवो तेने मनन कहे छे, अने सांभळीने विचार करी संशय तथा विपर्ययभाव रहित थइने उक्त आध्यात्मिक विषयरूप स्वात्मतत्त्व अंतर्वृत्ति करीने जे साक्षात अनुभव करवो तेने निदिध्यासन कहे छे. एवा स्वात्म तत्त्वज्ञातृ पुरुषने बंधबुद्धि

होती नथी, केमके नवने प्रकाश करनार तो आत्मा पोतेन छे त अनुभव थया पछी अज्ञानरूपय नो आश्रय केम करे ? त्या सुधी आत्मा अनुभव अथवा ज्ञानवडे प्रकाशने पाम्यो न हतो त्या सुधी तमरूप अज्ञान अने नधवान् थयो हतो, पण अनुभव थया पछी आत्माने निप नथ नथी ॥ १७६ ॥

द्रव्यमोक्षः क्षयः कर्मद्रव्याणा नात्मलक्षण ॥
भावमोक्षस्तु तद्धेतुरात्मा रत्नत्रयान्वयी ॥ १७७ ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रैरात्मैक्य लभते यदा ॥
कर्माणि कुपितानीव भवत्याशु तदा पृथक् ॥१७८॥

अर्थः—जे द्रव्यकर्मना क्षय त द्रव्यमाक्ष छे, पण ते काइ आत्मानु लक्षण नथी, मात्र ते द्रव्य कर्मनो क्षय त मोक्षनो हतु थाय छे, पण आत्मा तो रत्नत्रय परिणतिरूप छे, तेने द्रव्यकर्मना क्षय तो उपचारथी मोक्षहतु कहिये, पण वस्तुथी तत्त्वबुद्धिये कहवाय नहीं ॥ १७७ ॥ ज्ञान–दर्शन–चारित्र ए रत्नत्रयीवडे करीने जेवारे आत्मा एकभावपणाने पाम, तवारे जे कर्म हता, ते क्रोडक ससारी जीव जेम रीसाइने घरमाथी जुदो निकळे तेम जीवथी जुदा नीकली जाय ॥ १७८ ॥

अतो रत्नत्रय मोक्ष स्तदभावे कृतार्थता ॥
पाखण्डिगणलिंगैश्च गृहलिंगैश्च क्वापि न ॥ १७९ ॥
पाखण्डिगणलिंगेषु गृहलिंगेषु ये रताः ॥
न ते समयसारस्य ज्ञातारो बालबुद्धयः ॥ १८० ॥

अर्थ.—ए माटे जे रत्नत्रयी तेथीन मोक्ष छे, पण त रत्नत्रयीन अभाव पाखडी साधुना समूहन तथा पाखडी गृही-

लिंगीने कृतार्थपणुं कांइ नथी ॥ १७९ ॥ माटे पाखंडी साधुना समूहमां तथा पाखंडीग्रही लिंगीमां जे प्राणी रक्त छे तेहने बाल-मतिवाला समजवा; पण ते सिद्धांतना सार एटले रहस्यना जाण नथी ॥ १८० ॥

भावलिंगरता येषु सर्वसारविदो हि ते ॥
लिंगस्था वा गृहस्था वा सिध्यंति धुतकल्मषाः॥१८१॥

भावलिंगं हि मोक्षांगं द्रव्यलिंगमकारणं ॥
द्रव्यं नात्यंतिकं यस्मान्नाप्यैकांतिकमिष्यते ॥१८२॥

अर्थः—अने जे प्राणी भावलिंगे रता छे तेहने सर्व सारना जाण कहिये. ते वेषधारी साधुलिंगे होय अथवा गृहस्थ-लिंगे होय; तोपण पापकर्म धोइने मोक्ष पामे ॥ १८१ ॥ केमके जे भावलिंग ते मोक्षनुं अंग छे, अने द्रव्यलिंग तो अकारण छे, द्रव्यलिंग ते कांइ आत्यंतिक नथी, माटे जे भावलिंगी छे ते द्रव्यलिंगने एकांते नथी इच्छता ॥ १८२ ॥

यथाजातदशालिंगमर्थादव्यभिचारि चेत् ॥
विपक्षाबाधकाभावात् तद्धेतुत्वेतु का प्रमा ॥१८३॥

वस्त्रादिधारणेच्छा चेद्बाधिका तस्य तां विना ॥
धृतस्य न किमस्थाने करादेरिव बाधकं ॥ १८४ ॥

अर्थः—इहां कोइक कहेशे जे नग्नपणे मोक्ष छे तेनो उत्तर कहे छे. जो ए अर्थथी वात खरी छे तो आत्माने मोह-बाधक छे, ते मोहनो अभाव थाशे अने जो नग्नपणे मोक्ष होय तो मोह टालवानुं शुं प्रमाण? तेवारे तो मोह टालवानी कांइ जरुर न रहे ॥ १८३ ॥ वस्त्र रक्षणे एटले इच्छा विना पण

जो वस्त्र राखता मोक्षनी बाधकता छे तो इच्छा विना जे करादिक एटले हाथ प्रमुख अंग वर्या छे ते पण मोक्षना बाधक थाशे, एटले दिगंबर लोक कहे छे के वस्त्र राखवाथी मोक्षनी बाधकता छे तेहने निरुत्तर कर्या ॥ १८४ ॥

स्वरूपेण च वस्त्रं चेत्केवलज्ञानबाधक ॥
तदा दिक्पटनीत्यैव तत्तदावरणं भवेत् ॥१८५॥
इत्थं केवलिनस्तेन मूर्ध्नि क्षिप्तेन केनचित् ॥
केवलित्वं पलायेत त्यहो किमसमंजसं ॥१८६॥

अर्थ.—जो परमार्थथी जे वस्त्र छे तेहिज केवलज्ञानने बाधकपणे होय तो दिगंबरनी रीते केवलज्ञानावरणीयने ठेकाणे वस्त्रावरणीय एम थवु जोइये, ते वस्त्रावरणीय कर्म दिगंबरीयो कहता नथी एटली एनी चुक छे ॥ १८५ ॥ ए रीते तो केवलीने माथे कोइक वस्त्र ओढाडे तेवारे केवलज्ञाने नासी जवु जोइये, पण केवलीने वस्त्र ओढाडता केवलज्ञान नासी जाय छे एम तो थतु नथी, माटे अहो इति आश्चर्ये शु जुठु असमंजस बोलो छो ? ॥ १८६ ॥

भावलिंगात्ततो मोक्षो भिन्नलिंगेष्वपि ध्रुव ॥
कदाग्रहं विमुच्यैतद्भावनीयं मनस्विना ॥ १८७ ॥
अशुद्धनयतो ह्यात्मा बद्धो मुक्त इति स्थितिः ॥
न शुद्धनयतस्त्वेष बध्यते नापि मुच्यते ॥ १८८ ॥

अर्थ.—ते माटे भावलिंगथी मोक्ष छे, वेषनो काइ नियम नथी, कदापि द्रव्यथी अन्यलिंगीनो वेष होय, तो पण निश्चये मोक्ष छे माटे कदाग्रह छाडीने बुद्धिवंत पुरुषे ए रीत

विचारवुं ॥ १८७ ॥ अशुद्ध नयथी आत्मा बंधाय छे अने मुंझाय पण छे, पण शुद्ध नये तो ए आत्मा बंधातो पण नथी अने मुंझातो पण नथी ॥ १८८ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मतत्त्वविनिश्चयं ॥
नवभ्योऽपि हि तत्त्वेभ्यः कुर्यादेवं विचक्षणः ॥१८९॥
इदं हि परमध्यात्mममृतं ह्यद एव च ॥
इदं हि परमं ज्ञानं योगोऽयं परमः स्मृतः ॥ १९० ॥

अर्थः—अन्वय व्यतिरेके करीने जे छते ते छतुं, तेहने अन्वय कहिये अने जे अछते ते अछतुं तेहने व्यतिरेक कहिये. ॥ तद्भावे तद्भावो अन्वयः तदभावे तदभावो व्यतिरेकः दंडघट-दृष्टांतेन भाव्यं ॥ विचक्षण पुरुषे ए रीते आत्मतत्त्वनो निश्चय नव तत्त्वे करीने करवो ॥ १८९ ॥ एहिज उत्कृष्ट अध्यात्म छे; एहि ज अमृतोपम छे; वली एहिज परमज्ञान छे अने एहिज परमयोग कह्यो छे ॥ १९० ॥

गुह्याद्गुह्यतरं तत्त्वमेतत्सूक्ष्मनयाश्रितं ॥
न देयं स्वल्पबुद्धीनां ते ह्येतस्य विडंबिकाः ॥१९१॥
जनानामल्पबुद्धीनां नैतत्तत्त्वं हितावहं ॥
निर्बलानां क्षुधार्त्तानां भोजनं चक्रिणो यथा ॥१९२॥

अर्थः—छानामां छानुं ए तत्त्व छे; माटे सूक्ष्मनय आश्रीने ए तत्त्व अल्पबुद्धिने न संभलाववुं; शामाटे के जे अल्प-मतिवाला ते ए तत्त्वना विडंबक छे ॥ १९१ ॥ माटे अल्पबुद्धि-वंत प्राणीने ए तत्त्व हित करे नही, जेम चक्रवर्त्तीनुं खीरनुं भोजन

निर्बल जे क्षुधाये पीड्या प्राणी होय तेने पचे नही तेनीपरे जाणवु ॥ १९२ ॥

ज्ञानागद्‌दुर्विदग्धाना तत्त्वमेतदनर्थकृत् ॥
अशुद्धमन्त्रपाठस्य फणिरत्नग्रहो यथा ॥ १९३ ॥
व्यवहाराविनिष्णातो यो ज्ञीप्सति विनिश्चय ॥
कासारतरणाशक्तः सागर स तितीर्षति ॥ १९४ ॥

अर्थः—तेम रड रड पडिताइये करीने अर्धनल्या एहवा जे प्राणी तेने ए तत्त्व अनर्थकारी छे, जेम अशुद्ध मत्रना पाठवालो पुरुष सर्पनो मणि लेवा जाय, ते तेने अनर्थकारी थाय तेनीपरे जाणवु ॥ १९३ ॥ जे प्राणी व्यवहारनयमा कुशल नथी अने निश्चयनयने समजवा जाय, ते प्राणी तलावने तरवामा असमर्थ छता समुद्र तरवा वाछे छे ॥ १९४ ॥

व्यवहार विनिश्चित्य ततः शुद्धनयाश्रितः ॥
आत्मज्ञानरतो भूत्वा परम साम्यमाश्रयेत् ॥१९५॥

अर्थः—व्यवहार अने निश्चये करी शुद्धनयने आश्रीने आत्मज्ञाने रत थइ जे प्रवर्त्ते ते प्राणी परमपदने पामे ॥ १९५ ॥

इति आत्मनिश्चयाधिकार अष्टादश समाप्त ॥



जैनमतस्तुत्याधिकारः

उत्सर्पद्व्यवहारनिश्चयकथाकल्लोलकोलाहल
त्रस्यद्दुर्नयवादिकच्छपकुलं भ्रश्यत्कुपक्षाचलं ॥
उद्यद्युक्तिनदीप्रवेशसुभगं स्याद्वादमर्यादया
युक्तं श्रीजिनशासनं जलनिधिं मुक्त्वा परं नाश्रये ॥१॥

अर्थः—हवे जिनशासनरूप रत्नाकरनी स्तुति करे छे तेमां प्रथम जिनशासनने समुद्रनी उपमा आपे छे, ते जिनशासनरूप समुद्र केवो छे ? ते कहे छे. प्रसरती एहवी व्यवहार तथा निश्चयनयनी जे कथा, तेरूप जे कल्लोल तेनो जे कोलाहल, तेणे करीने दुष्टजन नयवादिरूपी काचबानो कुल जेने विषे त्रास पामे छे. वली जेमांथी कुमतिरूपी पर्वत तूटी गया छे, भांग्या छे; वली जेमां मोटी उक्तियुक्तिरूपिणी नदीओनो प्रवेश छे तेणे करी जे सुभग एटले मनोहर छे; वली स्याद्वादशैलीरूप मर्यादाये जे युक्त छे एवो श्रीजिनशासनरूप रत्नाकर जे समुद्र तेने तजीने परदर्शनने कोण सेवे ? ॥ १ ॥

पूर्णपुण्यनयप्रमाणरचनापुष्पैः सदास्थारसै
स्तत्त्वज्ञानफलैः सदा विजयते स्याद्वादकल्पद्रुमः ॥
एतस्मात् पतितैः प्रवादकुसुमैः षड्दर्शनारामभू-
यः सौरभमुद्वमत्यभिमतैरध्यात्मवातालवैः ॥ २ ॥

अर्थः—हवे ए जिनमतने कल्पवृक्ष करी देखाडे छे जेमा पूर्ण पवित्र जे सात नय अने चार प्रमाण तेहनी जे रचना तेरूपी फूलमांहेथी सदैव श्रद्धारूप रसे करीने तत्त्वज्ञानरूप फल नीपन्या छे, एवो स्याद्वाद नामा जे कल्पवृक्ष ते सदा जयवंतो वर्तो ! ए कल्पवृक्षथी खरी पड्या जे प्रवाहरूपी फूल तेणे करीने षड्दर्शनरूप वाडीनी जे धरती ते नयननी अध्यात्मनी जे वार्त्ताओ तेना जे लव तेणे करीने भूयः कहेता फरी फरीने सुगधपणाने प्रगट करे छे ॥ २ ॥

चित्रोत्सर्गशुभापवादरचनासानुश्रियालंकृत,
श्रद्धानंदनचंदनद्रुमनिभप्रज्ञोल्लसत्सौरभ ॥
भ्राम्यद्भि. परदर्शनग्रहगणैरासेव्यमानः सदा
तर्कस्वर्णशिलोच्छ्रितो विजयते जैनागमो मंदरः । ३॥

अर्थः—हवे जिनशासनने मेरुपर्वतनी उपमा आपे छे. नाना प्रकारनो उत्सर्ग मार्ग अने रुडो जे अपवाद मार्ग तेनी रचनारूप शिखर तेनी शोभाए शोभित छे वली श्रद्धारूप [illegible] वनमां चंदनना वृक्ष तद्रूप जे बुद्धि ते थकी प्रगटी छे [illegible] जेहा एवो मेरुतुल्य छे. वली ए मेरुपर्वतनी [illegible] परदर्शनरूपी ग्रहना समूह तेणे करीने [illegible] छे, [illegible] जे शुद्ध विचार ते रूपिणी सुवर्णशिला [illegible] छे, [illegible] जैनागमरूप जे मेरु ते जयवंतो वर्तो । ॥ ४ ॥

स्याद्वादोपगमस्तमामि [illegible]
दध्यानां [illegible] निधा [illegible] ॥

यस्मिन्नभ्युदिते प्रमाणदिवसप्रारंभकल्याणिनी
प्रौढत्वं नयगीर्दधाति स रविर्जैनागमो नंदतात् ॥४॥

अर्थः—हवे जिनशासनने सूर्यनी उपमा आपी वखाणे छे. जैनागमरूप सूर्यना उदयथकी चोरी जारी इत्यादि दोष टले, वली जे थकी क्षणेकमां जगत्ने विषे अज्ञानरूप अंधारुं क्षय थाय, जे थकी मार्ग निर्मल थाय छे, वली चक्षुमांथी प्रमादरूप निद्रा जाय छे, तथा जेम सूर्योदयथी दिवस उग्यो एम सिद्ध थाय छे तेम जैनागमना उदयथी प्रमाणनी सिद्धतारूप दिवसनी सिद्धता थाय छे ते जाणे दिवसने प्रारंभे लोक प्रभाते मंगलिक बोले छे. जेम सूर्य उदये लोक न्यायमार्गे चाले, न्यायनां वचन बोले, तेम जैनसूर्य उदये नय तथा आगमनी वाणी ते घणी रुडी रीते प्रौढता पामे छे. एवो ए जिनशासनरूपी सूर्य ते जयवंतो वर्त्तो ! ॥ ४ ॥

अध्यात्मामृतवर्षिभिः कुवलयोल्लासं विलासैर्गवां
तापव्यापविनाशिभिर्वितनुते लब्धोदयोयः सदा ॥
तर्कस्थाणुशिरःस्थितः परिवृतः स्फारैर्नयैस्तारकैः
सोऽयं श्रीजिनशासनामृतरुचिः कस्यैति नो रुच्यतां ।५।

अर्थः—हवे जिनशासनने चंद्रनी उपमा आपी वखाणे छे. अध्यात्मरूप अमृतनो जे वरसाद तेणे करीने कुवलय जे पृथ्वीरूप कमल तेने विकस्वर करे छे एवो, वली गवां के० वाणीरूप किरण तेना विलासे करीने संसारना तापनो जे समूह तेनो नाश करे छे एवो, वली ए चंद्रमा केवो छे? जे तर्कविचाररूपी जे महादेव तेना मस्तके रह्यो थको उदय पाम्यो छे एवो,

वली दीप्त जे नय तेरूप जे तारामडल तेणे परिवर्यो थको फिरे छे एवो जिनागमरूपी चद्र ते कोने रुचिपणाने न उपजावे? अपितु सर्वने उपजावेज ॥ ५ ॥

बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमभूद्वेदांतिना सग्रहात्
साख्याना तत एव नैगमनयाद योगश्च वैशेषिकः ॥
शब्दब्रह्मविदोऽपि शब्दनयतः सर्वैर्नयैर्गुंफिता
जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्वीक्षते ॥ ६ ॥

अर्थ.—जेना अनेक नयमाथी एकेका नय ग्रहण करीने एटले रुजुसूत्रनयथी बौद्धनो मत प्रगट्यो, अने सग्रहनयथी वेदांतिकनो मत प्रगट्यो, तथा साख्यमत पण सग्रहनयथीज उपनो अने नैगमनयथी योगमत अने वैशेपिकमत प्रगट्यो, शब्दनयथकी मीमासक दर्शन उपनु अने जैनशासन तो सर्व नये करीने गुफित छे, ते माटे आ जिनशासनमा सारमा सारपणु प्रत्यक्षपणे रुडी रीते देखीए छीए ॥ ६ ॥

ऊष्मा नार्कमपाकरोति दहन नैव स्फुलिगावली
नाब्धि सिंधुजलप्लवः सुरगिरि ग्रावा न चाभ्यापतन् ॥
एव सर्वनयैकभावगरिमस्थान जिनेंद्रागम
तत्तद्दर्शनसकथाशरचनारूप न हतु क्षमा ॥ ७ ॥

अर्थः—उकलाट जे वाफ तेनो जे ताप ते सूर्यने जीती शके नहीं, अने अग्निना कणिया ते दावानलने जीती न शके, तथा सिंधुनदीनु जल तेनो जे वेग ते लवणसमुद्रने ठेली न शके, पत्थरना जे खड ते मेरुपर्वतने दाबी न शके, एम सर्व

नयना एकता भावनी मोटाइनुं स्थानक एहवुं तीर्थंकरनुं जे आगम तेहने ते परदर्शनीओ हणवाने समर्थ नथी, शा माटे जे ए जैन ते सर्वदर्शनी छे, अने ते दर्शनीयो जैनना एकेक अंशी छे ॥ ७ ॥

दुःसाध्यं परवादिनां परमतक्षेपं विना स्वं मतं
तत्क्षेपे च कषायपंककलुषं चेतः समापद्यते ॥
सोऽयं निःस्वनिधिग्रहव्यवसितो वेतालकोपक्रमो
नायं सर्वहितावहो जिनमते तत्त्वप्रसिद्ध्यर्थिनां ॥ ८ ॥

अर्थः—परदर्शनी जेटला छे ते एक एकना मतने खंड्या विना पोताना मतने थापी शकता नथी. ए मतमतनो जे कदाग्रह तेनो प्रक्षेप करतां कषायरूप कादवे करीने मन मलिन थाय छे. ए कदाग्रहनो व्यापार ते तो दरिद्रीना घरनो निधान हरवाने वेताल गयो ते प्राय जाणवो. ए उपक्रम सर्व जिनमतने विषे हितकारी नथी, माटे अर्थी जीवने ए जिनमत ते तत्त्वरूपे प्रसिद्ध छे ॥ ८ ॥

वार्ताः संति सहस्रशः प्रतिमतं ज्ञानांशबद्धक्रमा
श्चेतस्तासु ततः प्रयाति न तु मां लीनं जिनेंद्रागमे ॥
नोत्सर्पंति लताः कति प्रतिदिशं पुष्पैः पवित्रा मधौ
ताभ्यो नैति रतिं रसालकलिकारक्तस्तु पुंस्कोकिलः॥९॥

अर्थः—जेनो अनुक्रम ज्ञानने मात्र अंशे करीने बंधायो छे एवी परदर्शनीओनी वार्त्ता छे, तेवा मतममत्व हजारो गमे वर्त्ते छे, पण ते वार्तोने विषे माहरुं चित्त जातुं नथी. शा माटे?

जे सिद्धांतोने विषे महारुं मन लीन छे, माटे चैत्रमासे दिशोदिशे जे फूल तेणे करीने पवित्र एहवी जे लता ते केटलीक विकस्वर थाय, फले, पण पुस्कोकिल जे कोयल ते आंबानी मंजरीथी रक्त एवी थकी ते लताओने विषे रति न पामे, तेनी पेरे महारुं चित्त पण सिद्धांतरूप आंबानी मंजरिये रक्त थयुं थकुं अन्य दर्शनरूप लताओमां जातुं नथी ॥ ९ ॥

शब्दो वा मतिरर्थ एव वस्तु वा जाति क्रिया वा गुणः।
शब्दार्थे किमिति स्थितिः प्रतिमतं संदेहशंकुर्यथा ॥
जैनेंद्रे तु मते न सा प्रतिपदं जात्यंतरार्थस्थितिः ।
सामान्यं च विशेषमेव च यया तात्पर्यमन्विच्छति ॥१०॥

अर्थ —आ शब्द छे, किंवा मति छे, के अर्थ छे, के गुण छे, के वस्तु के० द्रव्य छे, के जाति छे के क्रिया छे ? वली एनो शब्दार्थ केम हशे ? एवो संदेहरूपी खीलो मत मत प्रत्ये रह्यो छे पण जिनमतमां नथी. ते पद पद प्रत्ये जात्यंतर अर्थनी स्थिति छे, माटे सामान्य अने विशेष जेवा पदार्थनो यथार्थ निश्चय तात्पर्य–अर्थ तेने भजे छे, माटे जिनमतमां संदेहरूप खीलो नथी ॥ १० ॥

यत्रानर्पितमादधाति गुणतां मुख्यं तु वस्त्वर्पितं ।
तात्पर्यानवलंबनेन तु भवेद्बोधः स्फुटं लौकिकः ॥
संपूर्णं त्ववभासते कृतधिया कृत्स्नाद्विवक्षाक्रमात् ।
तां लोकोत्तरभंगपद्धतिपदं स्याद्वादमुद्रां स्तुमः ॥११॥

अर्थ.—स्याद्वादरूप जैन मुद्रामां केवो गुण छे ? के

जेमां वस्तुने अनर्पण करी छतां पण ते वस्तु गौणताने प्राप्त थाय छे; अने वस्तु अर्पण करी छतां ते मुख्यताभावने पामे छे, अने जेना तात्पर्य अर्थने अवलंबने करीने तो प्रगटपणे लौकिक बोध थाय छे; अने संपूर्ण बोध तो समग्र विवक्षाना अनुक्रमथकी महानिपुण बुद्धिवालाने प्रकाश थाय छे; ते माटे ए लोकोत्तर भंगजालनुं ठेकाणुं एवी जे स्याद्वादशैलीरूप मुद्रा तेने अमे स्तवीए छीए ॥ ११ ॥

आत्मीयानुभवाश्रयार्थविषयोऽप्युच्चैर्यदीयः क्रमो ।
म्लेच्छानामिव संस्कृतं तनुधियामाश्चर्यमोहावहः ॥
व्युत्पत्तिप्रतिपत्तिहेतुविततस्याद्वादवाग्गुंफितं ।
तं जैनागममाकलय्य न वयं व्याक्षेपभाजः क्वचित् ॥१२॥

अर्थः—ते जैनागम केवुं छे ? जेमां पोताना आत्मानो अनुभव करवाना आश्रयनो विषय छे, एवो उच्चपणे करीने जेनो क्रम छे एटले परिपाटी छे, अने म्लेच्छने जेम संस्कृत भाषा आश्चर्य करनारी अने मोह उपजावनारी छे तेनी परे अल्पबुद्धिवाळाने अचंबो पामी मुंझावानुं स्थानक छे; माटे जैनागम ते व्युत्पत्तिनुं निरूपण करनारा जे हेतु तेणे करी विस्तीर्ण एहवो जे स्याद्वाद मार्ग तेणे करी रचेलुं छे. तेने पामीने महारा चित्तमां बीजुं कोइपण व्याक्षेपपणुं क्यारे पण थतुं नथी ॥ १२ ॥

मूलं सर्ववचोगतस्य विदितं जैनेश्वरं शासनं ।
तस्मादेव समुच्छितैर्नयमतैस्तस्यैव यत्खंडनं ॥
एतत्किंचन कौशलं कलिमलच्छन्नात्मनः स्वाश्रितां ।
शाखां छेत्तुमिवोद्यतस्य कटुकोदर्काय तर्कार्थिनः॥१३॥

अर्थ—माटे सर्वनयवचनगत समूहनु जे मूल एहवु ए जिनशासन कह्यु छे ए जिनशासनथकीज प्रगट्या एहवा जे नयनयना मत तेना मते करीनेज दुष्ट प्राणी तेज जिनआगमनु खंडन करे छे, ते पापिष्ट आत्माओनो आत्मा पापरूप मेले करी ढंकाणो छे, एवा दुष्टोनु जे काइ किंचितमात्र डहापणपणु छे, ते जेम कोइ मूर्ख जे वृक्षनी डाले बेठो थको तेज डाल कापवाने उजमाल थाय तेथी कडवा विपाक पामे, तेम ते कुविचारवालाने आगल कडवा फल प्रगटे छे ॥ १३ ॥

त्यक्त्वोन्माद विभज्य वादरचनामाकर्ण्य कर्णामृतं ।
सिद्धातार्थरहस्यवित्क लभतामन्यत्र शास्त्रे रतिं ॥
यस्यां सर्वनया वसंति न पुनर्व्यस्तेषु तेष्वेव या ।
मालायां मणयो लुठंति न पुनर्व्यस्तेषु तेष्वेव सा ।१४।

अर्थ—विवेचना लक्षण जे नयनोवाद तेनो उन्माद तजीने, माहोमाह झगडो तजीने, वली काने अमृतरूप वाणी सांभलीने, सिद्धांतना अर्थरहस्यनो जे जाण पुरुष ते बीजा शास्त्रने विषे रति केम पामे ? अर्थात् नज पामे जे जैनवाणीने विषे सघला नय प्रवेश करे छे, पण ते जुदा जुदा मतवालाना मतमां सर्वनय नथी तेथी जैन वाणी काइ तेमा रहती नथी शा माटे जे ते सर्व व्यग्र रितवाला छे माटे जैनमा सर्व नय छे जेम मालाने विषे सर्व मणका रहे छे, पण छूटा मणका पड्या होय तेने माला न कहिये, अने एक मणके सर्व मणका समाणा एम पण न कहीए, माटे ए माला सरखो जैनमत छे ॥ १४ ॥

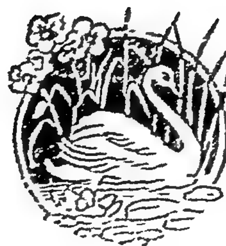
अन्योऽन्यप्रतिपक्षभावरितयान स्वरदार्यमत्यान्नया—
नपेक्षाविपर्ययर्दविभजते माध्यस्थमास्थाय य ॥

स्याद्वादे सुपथे निवश्य हरते तेषां तु दिङ्मूढतां ।
कुंदेंदुप्रतिमं यशोविजयिनस्तस्यैव संवर्धते ॥ १५ ॥

अर्थः—एम एकबीजाने वैरभावे करी जूठा जूठा जे पोतपोताना अर्थ तेने माच्या करता एवा मतवाला जे दर्शनी ते पोताना नयनो विषय ग्रहण करी, माध्यस्थपणाने स्वीकारी, सारा माठानो विभाग करीने, स्याद्वादरूप उत्तम मार्गने विषे लोकनुं चित्त स्थापन करावीने अने माध्यस्थपणुं ग्रहण करी तेमनी दिग्मूढतानो नाश करे, ते विजयवंत प्राणी कुंदनुं फूल तथा चंद्रमा सरखो उजवलो जे जश तेणे करी वृद्धिवन्तो थशे. अहीं कविये पोतानुं नाम पण सूचव्युं छे ॥ १५ ॥

। इतिश्री जैनमतस्तुत्यधिकार एकोनविंशति समाप्तः ॥

॥ इतिश्री महोपाध्याय श्री यशोविजयगणिना
विरचिताध्यात्मसारप्रकरणे षष्ठप्रबंधः ॥



अनुभवाधिकार

शास्त्रोपदर्शितदशा गलितासद्ग्रहकषायकलुषाणां ॥
प्रियमनुभवैकवेद्यं रहस्यमाविर्भवति किमपि ॥१॥
प्रथमाभ्यासविलासादाविर्भूयैव यत्क्षणाल्लीनं ॥
चंचलतरुणीविभ्रमसमं सुतरलमनः कुरुते ॥ २ ॥

अर्थः—शास्त्रे बतावी जे दिशा तेणे करीने गली गइ छे मारी नरमी असद्ग्रहरूप कषायनी कलुषता जेनी, तेने प्रिय एहवो जे एक अनुभव तेथी जणातु एवु जे रहस्य ते काइक प्रगट थाय छे ॥ १ ॥ प्रथम अभ्यासरूपी विलासना योगे करीने ते प्राणी पूर्वोक्त काइक रहस्यना लीन थाय छे अने फरी चंचलपणे रह छे, जेम चचल स्त्री पोताना विलासना योगे करी काइक सुरतमा लीन थाय छे अने पछी जेवी ने तेवी चचल रहे छे, तथा जेम कीडाने भमरी ज्यारे चटको भरावे छे त्यारे तेना ध्याने करीने ते तल्लीन थइ जाय छे अने पछी जेवारे भमरी पोताना चटकानो उद्योग मुकी दे छे, त्यारे ते सर्व भूली जइ पोतानो मूलनो स्वभाव धारण करे छे तेनी परे जाणी लेवु ॥ २ ॥

सुविदितयोगैरिष्टं क्षिप्तं मूढं तथैव विक्षिप्तं ॥
एकाग्रं च निरुद्धं चेतः पंचप्रकारमिति ॥ ३ ॥
विषयेषु कल्पितेषु च पुरःस्थितेषु च निवेशितं रजसा ॥
सुखदुःखयुग्बहिर्मुखमाम्नातं क्षिप्तमिह चित्तं ॥४॥

अर्थः—योगशास्त्रमां पांच भेदे मन कह्युं छे. १ क्षिप्त-मन, २ मूढ मन, ३ विक्षिप्तमन, ४ एकाग्रमन, ५ निरुद्धमन. ए पांच प्रकार मनना छे ॥ ३ ॥ तेमां क्षिप्तनुं लक्षण कहे छे. पोताना चित्तने सन्मुख कल्प्या जे विषय तेने विषे रजोगुणे करीने थाप्युं तेमज सुख तथा दुःखयुक्त, अने बहिर्मुख थयेलुं चित्त तेने क्षिप्त मन कह्युं छे ॥ ४ ॥

क्रोधादिभिर्नियमितविरुद्धकृत्येषु यत्तमो द्राग् ॥
कृत्याकृत्यविभागासंगतमेतन्मो मूढं ॥ ५ ॥
सत्त्वोद्रेकापरिहृतदुःखनिदानेषु सुखनिदानेषु ॥
शब्दादिषु प्रवृत्तं तदेव चित्तं तु विक्षिप्तं ॥ ६ ॥

अर्थः—जेमां बहुलताये तमोगुण होय, एटले क्रोध सहित विरुद्ध कामने विषे जे तत्पर होय अने विवेकरहितपणे कृत्याकृत्यनी वहेंचण विना जे मन, तेने मूढ मन कहिये ॥ ५ ॥ जे धैर्यना बलथी दुःखनां कारण गणतुं नथी, शब्दादिक विषयमां रूपरसादिकनां कारण जाणी कठोरपणे प्रवर्त्ते एवुं जे चित्त तेने विक्षिप्त मन कहिये ॥ ६ ॥

अद्वेषादिगुणवतां नित्यं खेदादिषट्कपरिहारात् ।
सदृशप्रत्ययसंगतमेकाग्रं चित्तमाम्नातं ॥ ७ ॥
उपरतविकल्पवृत्तिकमवग्रहादिक्रमच्युतं शुद्धं ॥
आत्मारामसुनीनां भवति निरुद्धं सदा चेतः ॥ ८ ॥

अर्थः—रागद्वेषादिके रहित जे गुणवंत पुरुष छे अने सदा खेदादिकनो परिहार करनार जे पुरुष छे, जेनुं मन सदैव रागद्वेष टलवाथी सर्व कार्यमां सरखुं मल्युं छे; तेने एकाग्र मन कहिये

॥ ७ ॥ जेनी विकल्पवृत्ति शांत थइ छे, वली अनुग्रहादि क्रमथी पाछुं आस्युं छे एहवुं शुद्ध मन, आत्मारामसुनिनुं जे अंतःकरण तेने निरुद्ध मन कहिये ॥ ८ ॥

न समाधावुपयोगं तिस्रश्चेतोदशा इह लभते ॥
सत्त्वोत्कर्षात् स्थैर्यादुभे समाधिसुखातिशयात् ॥९॥
योगारंभस्तु भवेद्विक्षिप्ते मनसि जातुसानंदे ॥
क्षिप्ते मूढे चास्मिन् व्युत्थानं भवति नियमेन ॥१०॥

अर्थ —चित्तनी त्रण दशा ते आ समाधिमां कांइ उपयोग पामती नथी, तेमांर पण तेमां बे दशा तो सत्त्वोत्कर्षथकी तथा स्थिरताथकी अने समाधिसुखना अतिशयथी उपयोग पामे छे ॥ ९ ॥ कदाचित् विक्षिप्त चित्तने विषे योगसमाधिमां आनंदित होय तो योगारंभ संभवे, क्षिप्त मूढ मने तो योगनो निशेष विषयरूप उदय होय ॥ १० ॥

• विषयकषायनिवृत्तं योगेषु च संचरिष्णु विविधेषु ॥
गृहखेलद्बालोपममपि चलमिष्टं मनोऽभ्यासे ॥११॥
वचनानुष्ठानगतं यातायातं च सातिचारमपि ॥
चेतोऽभ्यासदशायां गजाङ्कुशन्यायतोऽदुष्टं ॥ १२॥

अर्थ —विविध प्रकारना योगने विषे फरतुं अने विषय-कषाय भर्युं एवुं घरमां रमता बालकनी परं चपल जे मन ते अभ्यासे करी रुद्ध जाणवुं ॥ ११ ॥ वचनानुष्ठानमां रह्यं एवुं जातुं आवतुं अतिचार सहित मन होय तो पण जो अभ्यासदशामां वर्ततुं होय तो, जेम हस्ति ते अंकुशे करी रुडो थाय ते दृष्टांते ते मन पण रुद्ध थाय ॥ १२ ॥

ज्ञानविचाराभिमुखं यथा यथा भवति किमपि सानंदं ।
अर्थैः प्रलोभ्य बाह्यैरनुगृह्णीयात्तथा चेतः ॥ १३ ॥
अभिरूपजिनप्रतिमां विशिष्टपदवाक्यवर्णरचनां च ॥
पुरुषविशेषादिकमप्यत एवालंबनं ब्रुवते ॥ १४ ॥

अर्थः—ज्ञानविचारणाना सुखथी जेम कांइक आनंद थाय एहवे बाह्य अर्थे करी लोभावीने तेमां चित्तने थोभावी राखीने ज्ञानना विचारने सन्मुख करीये ॥ १३ ॥ रुडी जिनप्रतिमा, रुडां सिद्धांतनां पद, वचन, अक्षर, ते पुरुषविशेष जे बहुश्रुत गीतार्थ मुनि होय तेहने ए त्रण आलंबन प्रमुख कह्यां छे ॥ १४ ॥

आलंबनैः प्रशस्तैः प्रायो भावः प्रशस्त एव यतः ॥
इति सालंबनयोगी मनः शुभालंबनं दध्यात् ॥१५॥
सालंबनं क्षणमपि क्षणमपि कुर्यान्मनो निरालंबं ॥
इत्यनुभवपरिपाकादाकालं स्यान्निरालंबनः ॥ १६ ॥

अर्थः—रुडे आलंबने करीने प्राये रूडो भाव होय, माटे सालंबन योगी जे रुडा जीव होय तेणे शुद्ध आलंबन धरवुं ॥ १५ ॥ अने क्षणिकमां सालंबन मन करे, अने क्षणिकमां निरालंबन मन करे, ए रीते अनुभवना परिपाकथी ते प्राणी सदा निरालंबन थाय ॥ १६ ॥

आलंब्यैकपदार्थं यदा न किंचिद्विचिंतयेदन्यत् ॥
अनुपनतेंधनवन्हिवदुपशांतं स्यात्तदा चेतः ॥ १७ ॥
शोकमदमदनमत्सरकलहकदाग्रहविषादवैराणि ॥
क्षीयंते शांतहृदामनुभव एवात्र साक्षात्तः ॥ १८ ॥

अर्थः—पछी एक पदार्थने अवलंबीने जे वार नीजु काइ चिंतने नही तेवारे जेम काष्ठ विनानो अग्नि उपशमे छे, तेनी परे मन उपशांतपणु पामे ॥ १७ ॥ माटे शोक, गर्व, काम, मत्सर, क्लेश, हठ, विषाद अने वेर एटला वाना शमतावंत प्राणीने न होय, ए वातनो साक्षी ब्रह्म अनुभव छे ॥ १८ ॥

शांते मनसि ज्योतिः प्रकाशते शांतमात्मनः सहज ॥
भस्मीभवत्यविद्या मोहध्वांत विलयमेति ॥ १९ ॥

बाह्यात्मनोऽधिकारः शांतहृदामंतरात्मना न स्यात् ॥
परमात्मानुध्येयः सन्निहितो ध्यानतो भवति ॥२०॥

अर्थ.—शांत मनने विषे रहेता थका आत्मानु शांत, स्वाभाविक, सहजानंदरूप जे तेज छे ते प्रगट थाय, तेवार जे अविद्या ते राख थइ जाय अने मोहांधकार नाश पामे ॥ १९ ॥ बाह्यथकी मननो जे अधिकार ते शांत परिणामी अंतरआत्मा वाला प्राणीने न होय, केमके तेने ध्येयरूपी जे परमात्मा ते ध्यानथी ढुकडो छे ॥ २० ॥

कायादिर्बहिरात्मा तदधिष्ठातांतरात्मतामेति ॥
गतनिःशेषोपाधिः परमात्मा कीर्तितस्तज्ज्ञैः ॥२१॥

विषयकषायावेशस्तत्त्वाश्रद्धा गुणेषु च द्वेषः ॥
आत्माज्ञानं च यदा बाह्यात्मा स्यात्तदा व्यक्तः ॥२२॥

अर्थ —काया अधिष्ठित जे बहिरात्मा तनु अधिष्ठान जे अंतरात्मा छे ते प्रते पामे अने गइ छे समस्त उपाधि जेने तेने ज्ञानिय परमात्मा कह्यो छे ॥ २१ ॥ जेने विषयकषायनो आवेश

होय, तत्त्वनी अश्रद्धा होय, गुणी उपर द्वेष होय, अने जेने आत्मानी ओलखाण नथी तेने प्रगटपणे बहिरात्मा कहिये ॥२२॥

तत्त्वश्रद्धा ज्ञानं महाव्रतान्यप्रमादपरता च ॥
मोहजयश्च यदा स्यात् तदांतरात्मा भवेद्व्यक्तः ॥२३॥
ज्ञानं केवलसंज्ञं योगनिरोधः समग्रकर्म्महतिः ॥
सिद्धिनिवासश्च यदा परमात्मा स्यात्तदा व्यक्तः॥२४॥

अर्थः—जेने तत्त्वनी श्रद्धा होय, ज्ञानपणुं होय, महाव्रतीपणुं होय, तथा अप्रमादीपणुं होय, एम करतां जेवारे मोहने जीते तेवारे तेने प्रगटपणे अंतरात्मा कहिये ॥ २३ ॥ जिहां केवलज्ञान होय अने मन—वचन—कायाना योगनिरोधी आठ कर्म क्षय करी सिद्धमां वसे तेवारे तेने प्रगटपणे परमात्मा कहिये ॥ २४ ॥

आत्मानंतो गुणवृत्तिर्विविच्य यः प्रतिपदं विजानाति ॥
कुशलानुबंधयुक्तः प्राप्नोति ब्रह्मभूयमसौ ॥ २५ ॥
ब्रह्मस्थो ब्रह्मज्ञो ब्रह्म प्राप्नोति तत्र किं चित्रं ?॥
ब्रह्मविदां वचसाऽपि ब्रह्मविलासाननुभवामः ॥ २६ ॥

अर्थः—जे प्राणि आत्माने अने गुणवृत्तिने मांहोमांहे वहेंचण करीने ठेकाणे जोडे ते प्राणि कुशलानुबंधी पुण्य सहित मोक्षपदने पामे ॥ २५ ॥ जे ब्रह्ममां रह्यो ब्रह्मनो जाण ते ब्रह्मने पामे, एमां शो अचंबो छे ? माटे ब्रह्मवेत्ता पुरुष जे ज्ञानी तेना वचने करी ब्रह्म जे मोक्षविलासी सुख, तेने अमे अनुभवीए छीए ॥ २६ ॥

ब्रह्माध्ययनेषु मतं ब्रह्माष्टादशसहस्रपदभावैः ॥
येनाप्तं तत् पूर्णं योगी स ब्रह्मणः परमः ॥ २७ ॥

ध्येयोऽय मेऽध्योऽय कार्या भक्ति सुकृतधिया सैव ॥
अस्मिन्गुरुत्वबुद्धया सुतरः ससारसिंधुरपि ॥ २८॥

अर्थ.—ब्रह्मअध्ययनने विषे कह्यु छे के, अढार हजार शीलागरथे करी जे ब्रह्मचर्यने पाम्यो, तेने पूर्ण योगी अने परम ब्रह्म कहिये ॥ २७ ॥ माटे एनेज ध्यावो, एनीज पुण्यवते भक्ति करवी, अने एने विषे मोटापणानी बुद्धि धरीये, तो ससारसमुद्र तरवो सहेल छे ॥ २८ ॥

अवलम्ब्येच्छायोग पूर्णाचारासहिष्णवश्च वय ॥
भक्त्या परममुनीना तदीयपदवीमनुसरामः ॥२९॥

अल्पापि यत्र यतना निर्दम्भा सा शुभानुबधकरी ॥
अज्ञानविषय यत्तद्विवेचन चात्मभावाना ॥ ३० ॥

अर्थः—इच्छायोग तो अमारे निर्मल छे, पुरो आचार पण अमे पाली शकता नथी, पण मोटा मुनिनी भक्तिए करीने तेइनी पदवीने पामशु ॥ २९ ॥ थोडी पण जयणा कपट रहित थशे तो ते शुभ अनुबधकारी छे, पण आत्मभावनी जे वहेंचण ते अज्ञानने टालनार छे ॥ ३० ॥

सिद्धाततदगाना शास्त्राणा य सुपरिचयः शक्त्या ॥
परमालबनभूतो दर्शनपक्षोऽयमस्माक ॥ ३१ ॥

विधिकथन विधिरागो विधिमार्गस्थापन विधेरिच्छा ॥
अविधिनिषेधश्चेति प्रवचनभक्ति प्रसिद्धातः ॥३२॥

अर्थ'—सिद्धातना अमे पक्षी छीये, तेना अंग जे शास्त्र तेनो शक्ति प्रमाणे अमारे परिचय छे, माटे परम आलबनभूत एवो जे समकितपक्ष ते अमारे रूडो छे ॥ ३१ ॥ शुद्ध भाषवु,

विधिशास्त्रनो राग करवो, शुद्ध मार्गनुं स्थापन करवुं, विधिमार्गनी इच्छा राखवी, अविधि टालवी अने सिद्धांतनी भक्ति करवी ए अमारो सिद्धांत छे ॥ ३२ ॥

अध्यात्मभावनोज्ज्वलचेतोवृत्त्योचितं हितं कृत्यं ॥
पूर्णक्रियाभिलाषश्चेति द्वयमात्मशुद्धिकरम् ॥ ३३ ॥

द्वयमिद शुभानुबंधः शक्यारंभश्च शुद्धपक्षश्च ॥
अहितो विपर्ययः पुनरित्यनुभवसंगतः पंथाः ॥३४॥

अर्थः—अध्यात्मनी भावनाए करी उज्ज्वल एहवी जे चित्तवृत्ति तेणे करीने उचित कार्य करवुं, तथा हितकारी करणी करवी, पूर्ण क्रियाना विलासनो अभिलाप धरवो, ए अमारे आत्मानी शुद्धिकारक छे, एटले एक अंतःकरणनी उज्ज्वलता जे शुद्धि करवी ते, अने बीजुं आद्यथी मांडी अंतपर्यंत पूर्ण शुभ क्रिया करवानी अभिलाषा ए बे वानां आत्मानी शुद्धि करनारां छे ॥ ३३ ॥ तथा एक करवा योग्य आरंभ ते शक्य आरंभ अने बीजो शुद्ध पक्ष ए बे वानां शुभानुबंधी छे, ए बे जेने प्रारंभ काले समर्थ छे, एमां जेनी शक्ति, उद्यम अने शुद्ध प्ररूपकपणुं छे तेने हितकारी माने अने एथी विपर्यास जे छे, तेने अहितकारी माने, एवी रीते अनुभवज्ञानने मलवानो पंथ छे. एथी मिथ्यात्व टले ॥३४।

ये त्वनुभवाविनिश्चितमार्गाश्चारित्रपरिणतिभ्रष्टाः ॥
बाह्यक्रियया चरणाभिमानिनो ज्ञानिनोऽपि न ते ॥३५॥

लोकेषु बहिर्बुद्धिषु विपणिकानां बहिःक्रियासु रतिः ॥
श्रद्धां विना न चैताः सतां प्रमाणं यतोऽभिहितं ॥ ३६ ॥

अर्थः—जेने अनुभवनो निश्चय नथी, अने निश्चय मार्गना चारित्रथी भ्रष्ट छे, तथा बाह्य क्रियानी आचरणा छे अने लोकमां

उग्र विहारी थइ आचारनो गर्व धरे छे, तेने ज्ञानी न कहीए ॥ ३५ ॥ बाह्य दृष्टिवाला जे मुर्ख लोक ते तेने बाह्यक्रियावत देखी प्रीति धरे, ते तो जेम कोइक वाणियो बाह्य करियाणानो व्यापार करतो देखिये तेनी परे जाणवी, माटे श्रद्धा विनानु कशुये प्रमाण नथी ॥ ३६ ॥

बाल पश्यति लिङ्गं मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्त ॥
आगमतत्त्व तु बुध परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ ३७ ॥
निन्द्यो न कोऽपि लोके पापिष्ठेष्वपि भवस्थितिश्चिन्त्या ॥
पूज्या गुणगरिमाढ्या धार्यो रागो गुणलवेऽपि ॥३८॥

अर्थः—जे बाल जीव होय ते वेष जोइने परीक्षा करे, तथा मध्यम जीव ते आचरणा जोइ परीक्षा करे, अने पंडित तो ज्ञानतत्त्व देखी परीक्षा करे ॥ ३७ ॥ लोकने विषे कोइनी निंदा करिये नहीं पापीने विषे महोटी संसारनी स्थिति चिंतविये, जे गुणयुक्त पुरुष होय तेनी पूजा करीये, वडाइ करीये, तथा जे अल्पगुणी होय तेना उपर पण राग धरीये ॥ ३८ ॥

निश्चित्यागमतत्त्व तस्मादुत्सृज्य लोकसञ्ज्ञा च ॥
श्रद्धाविवेकसार यतितव्य योगिना नित्य ॥ ३९ ॥
ग्राह्य हितमपि बालादालापैर्दुर्जनस्य न द्वेष्य ॥
मत्या वाच पराशापाशा इव सगमा ज्ञेया ॥४०॥

अर्थः—आगमनो निश्चय करी लोकसंज्ञा छोडीने विवेकनो सार जे श्रद्धा तेने विषे योगीश्वरे सदा उद्यम करवो ॥३९॥ बालकथकी पण आलापे करीने हितनी वात लेवी, दुर्जन उपर द्वेष न करवो, मत्य बोलवु अने पारकी आशा पाम सरखी जाणवी ॥ ४० ॥

स्तुत्या स्मयो न कार्यः कोपोऽपि च निंद्या जनैः कृतया ॥
सेव्या धर्माचार्यास्तत्त्वं जिज्ञासनीयं च ॥ ४१ ॥
शौचं स्थैर्यमदंभो वैराग्यं चात्मनिग्रहः कार्यः ॥
दृश्या भगवद्दोषाश्चिंत्यं देहादिवैरूप्यं ॥ ४२ ॥

अर्थः—कोइ वखाणे तो गर्व न करवो, कोइ निंदे तो कोप न करवो, धर्माचार्यनी सेवा करवीः तत्त्वने जाणवानी इच्छा राखवी ॥ ४१ ॥ पवित्रपणुं, स्थिरतापणुं अने निष्कपटपणु आदरवुं तथा वैराग धरवो अने मनने वश करी राखवुं, तथा संसारना दोष देखवा, वली देहने विनाशीपणे चिंतववो ॥ ४२ ॥

भक्तिर्भगवति धार्या सेव्यो देशः सदा विविक्तश्च ॥
स्थातव्यं सम्यक्त्वे विश्वास्यो न प्रमादरिपुः ॥४३॥
ध्येयात्मबोधनिष्ठा सर्वत्रैवागमः पुरस्कार्यः ॥
त्यक्तव्याः कुविकल्पाः स्थेयं वृद्धानुवृत्त्या च ॥ ४४ ॥

अर्थः—प्रभु उपर भक्ति धरवी; पशुपंडकादि दोष रहित देश जे स्थानक ते सेववुं, समकितदशामां स्थिर रहेवुं, प्रमादरुप शत्रुनो विश्वास न करवो ॥ ४३ ॥ ध्येयस्वरूप जे आत्मबोध तेमां रहेवुं, सवले स्थले आगमसिद्धांतने आगल करवुं, कुविकल्प छांडवा, जे मार्गे वृद्ध चाले ते मार्गे चालवुं ॥ ४४ ॥

साक्षात्कार्यतत्त्वं चिद्रूपानंदमेदुरैर्भाव्यं ॥
हितकारी ज्ञानवतामनुभववेद्यः प्रकारोऽयम् ॥४५॥

अर्थः—तत्त्वने प्रगट करवुं, ज्ञानरूप आनंदभर रहेवुं, ज्ञानवंतने हितकारी थइने रहेवुं, ए अनुभववंत जीवोना प्रकार छे ॥ ४५ ॥

॥ इति अनुभवाधिकारः समाप्तः ॥ २० ॥

प्रशस्ति.

येषां कैरवकुंदवृंदशशभृत्कर्पूरशुभ्रा गुणा ॥
मालिन्यं व्यपनीय चेतसि नृणां वैशद्यमातन्वते ॥
सतऽसतु मयि प्रसन्नमनसस्ते केऽपि गौणीकृत–॥
स्वार्थामुख्यपरोपकारविधयोऽत्युच्छृंखलैः किंखलैः?॥१॥

अर्थ — चंद्रविकासी कमलना फूलनो समूह, चंद्रमा, कपूर, ए सरखा उज्ज्वला जेना गुण छे, तथा जे मनुष्यना चित्तने विषे मलिनता टालीने निर्मलता–उज्ज्वलताने विस्तारे छे, एवा जे सज्जन पुरुषो ते, मारा उपर प्रसन्न मने सदैव रहजो ! जेणे पोतानो अर्थ गौण कर्यो छे, अने जेनी मुख्यपणे परउपकारनी बुद्धि छे, एवा सज्जन जो मारा उपर प्रसन्न छे तो, उन्मत्त एवा खल जे दुर्जन लोक तेनी अप्रसन्नताए शुं थवानुं छे ? ॥१॥

ग्रथार्थान् प्रगुणीकरोति सुकविर्यत्नेन तेषां प्रथा–
मातन्वंति कृपाकटाक्षलहरीलावण्यतः सज्जनाः ॥
माकंदद्रुममंजरीं वितनुते चित्रंवा मधुश्रीस्ततः
सौभाग्यं प्रथयति पंचमचमत्कारेण पुंस्कोकिलाः॥ २॥

अर्थ.—रुडा जे कवि छे, ते अर्थानुपत्तिए नवा ग्रंथ रचे, पण कृपानजरनी लेहरो तेनुं घर एवा जे सज्जन ते ग्रन्थने वखाणीने विस्तार करे छे ते उपर दृष्टांत कहे छे, जेम चमत-लक्ष्मी आंबानी मंजरीना मनोहरपणाने प्रगट करे छे, पण पोताना पंचम रागना चमत्कार करी एटले रागना टहुको तेणे करीने कोयल मंजरीनुं सौभाग्यपणुं जगमां विस्तारे छे ॥ २ ॥

दोपोल्लेखविपः खलाननविलादुच्छ्याय कोपाज्ज्वलन्
जिह्वाहिर्ननु किं गुणान्न गुणिनां वासक्षयं प्रापयेत् ॥
तस्माच्चेत्प्रबलप्रभावभवनं दिव्यौषधी सन्निधौ
शास्त्रार्थप्रतिपद्विदां शुभहृदां कारुण्यपुण्यप्रथा ॥ ३ ॥

अर्थः—दोपना विस्ताररूप विषे सहित एहवुं खल प्राणीना मुखरूप जे सर्पनुं घर तेथी उठीने कोपे बलतो थको एवो दुर्जननी जीभरूप जे सर्प ते गुणीना गुणने ननु के० निश्चेथी क्षयपणाने न पमाडे शुं ? अपितु पमाडेज. ते माटे महाप्रभावनुं घर एहवो जे शास्त्रनो अर्थ छे तेनी प्राप्तिना जाण जे सज्जन तेनी जे करुणा ते पुण्य वार्त्तारूपनी बुटी एटले जडी ते दिव्य औपधि कहिये, तेनी पासे रहता थका तेने झेर चढे नहीं ॥ ३ ॥

उत्तानार्थगिरां स्वतोऽप्यवगमान्निःसारतां मेनिरे
गंभीरार्थसमर्थने बत खलाः काठिन्यदोषं ददुः ॥
तत्को नाम गुणोऽस्तु कश्च सुकविः किं काव्यमित्यादिकां
स्थित्युच्छेदमतिं हरंति नियतां दृष्टा व्यवस्थाः सतां ॥४॥

अर्थः—जेवारे पोतानी मेळे पद वांचतां अर्थ सुझे एवा अल्पार्थ ने सुगम पद जो अमे जोडीये तो खल माणस एम कहेशे जे, आ ग्रंथमां कांइ सार नथी, वली जो अमे गंभीर अर्थ सहित पद बांधीए तो खल माणस कहेशे के, कठण पद बांध्यां छे, एनो शुं अर्थ करीए ? ए तो मुंगानी पारसी छे. एवे ग्रंथे कोइने गुण न थाय; जे आगलबुद्धि विचारे एवा आजे कोण रुडा कवि छे ? वली सर्वने भोग पडे एवां काव्य क्यां छे ? एवुं दुर्जन बोले माटे ए ग्रन्थ मर्यादानी स्थितिने उच्छेद करवानी

मति छे, तेने जे टाले, कविना गुणने जाणे एवा जे सज्जन पुरुष तेनी व्यवस्था रूडी दीठी ॥ ४ ॥

अध्यात्मामृतवर्षिणीमपि कथामापीय सतः सुख
गाहन्ते विषमुद्गिरन्ति तु खला वैषम्यमेतत्कुतः ॥
नेदं वाद्भुतमिन्दुदीधितिपिबा प्रीताश्चकोरा भृशं
किं न स्युर्बत चक्रवाकतरुणास्त्वत्यन्तखेदातुराः ॥५॥

अर्थः—अध्यात्मरूप अमृतवृष्टि एवी वार्त्ता, तेनु पान करीने सज्जन पुरुष सुख माने छे, अने जे खल लोक छे ते एवी वाणीने विषमपद कहीने विषरूप प्रगट करे छे, एमा शु आश्चर्य छे ? ते उपर दृष्टांत कहे छे जुओ चंद्रकिरणना दर्शनथी अमृत पीने चकोर घणु रीझ पामे छे, तो शु चंद्र देखीने चकवो चकवी घणो खेद नथी पामता ? अपितु पामेज छे ॥ ५ ॥

किंचित्साम्यमवेक्ष्य ये विदधते काचेन्द्रनीलाभिदां
तेषां न प्रमदावहा तनुधिया गूढा कवीनां कृतिः ॥
ये जानन्ति विशेषमप्यविषमे रेखोपरेखांशतो
वस्तुन्यस्तु सतामितः कृतधियां तेषां महानुत्सवः ॥६॥

अर्थः—जेम काइक सरखापणु देखीने काचमां अने इन्द्रनीलमणिमा अभेदरूप ते एकपणु जाणे, तेवा अल्प बुद्धिवालाने मोटा कविनी गूढ अर्थनी रचना ते हर्षभणी न थाय जे प्राणी अविषम वस्तुने विषे एक रेखा, उपरेखा, अर्धरेखा इत्यादिक अंशे थकी वस्तुने विशेषपणे जाणे छे, एवा कुशल बुद्धिवाला सज्जनने ए ग्रन्थना जे भाव छे, ते महा ओच्छवरूप छे. ॥ ६ ॥

पूर्णाध्यात्मपदार्थसार्थघटना चेतश्चमत्कारिणी
मोहच्छन्नदृशां भवेत्तनुधियां नो पंडितानामिव ॥
काकुव्याकुलकामगर्वगहनप्रोद्दाम वाक्चातुरी
कामिन्याः प्रसभं प्रमोदयति न ग्राम्यान् विदग्धानिव॥७॥

अर्थः—जेमां पूर्ण अध्यात्म पदार्थ ते सहित घटना छे, पण जेनी दशा अज्ञाने करीने अवराणी छे एवा अल्पबुद्धिवालाना चित्तमां तो जे रीते पंडित लोक आवा ग्रंथथी रीझ पामे ते रीतनो चमत्कार न उपजावे. तेहनो दृष्टांत—जेम कामे व्यापी थकी, अंतरंगमां विषयसुखने इच्छती थकी, तथा बाह्यथी भय शोक धरती थकी, पुरुषने वल्लभ, हुं रूपवती एम गर्वे भरी थकी, रुडी वचननी चतुराइ करनार एवी जे चतुर स्त्री होय ते पण गामडीआ मूर्खने रीझवी न शके, पण पंडितने तो आनंद पमाडे तेनी पेरे जाणवुं ॥ ७ ॥

स्नात्वा सिद्धांतकुंडे विधुकरविशदाध्यात्मपानीयपूरै-
स्तापं संसारदुःखं कलिकलुषमलं लोभतृष्णां च हित्वा ॥
जाता ये शुद्धरूपाः शमदमशुचिताचंदनालिप्तगात्राः
शीलालंकारसाराः सकलगुणनिधीन्सज्जनांस्तान्नमामः॥८

अर्थः—सिद्धांतरूप कुंडमां चंद्र सरखा निर्मल अध्यात्म रूप पाणीना पूरमां स्नान करीने, भवदुःखरूप जे ताप अने पापरूप जे मल तथा लोभ, ने तृष्णाने छांडीने, यथा शुद्धरूपे करी, वली समतारूप इंद्रियदमन जे पवित्र ते रूप चंदने करी शरीर विलेपित छे जेनुं, वली शीलरूप घराणे करी शोभता, सर्वगुणना निधान एवा जे सज्जन तेने अमे नमीए छीए.

पायोद· पद्यवृैर्विपुलरसभर वर्षति ग्रथकर्ता
प्रेम्णा पूरैस्तु चेतःसर इह सुहृदा स्लाव्यते वेगवद्भिः ॥
त्रुट्यति स्वातथवा पुनरसमगुणद्वेपिणा दुर्जनाना
चित्र भावज्ञनेत्रात प्रणयरसवशात्नि.सरत्यश्रुनीरम्॥९॥

अर्थः—जे ग्रथकर्ता मेघ सरखा छे ते पद्यवृंदे करीने, बहु रसभरे, वरसता थका ते प्रेमरूप पूर ते सज्जनना चित्तरूप सरोवरमा वेगे करीने भराय छे, वली असाधारण गुणना द्वेषी जे दुर्जन, तेना तो अत·करणना बध तूटे छे, अने एवा विचित्रकारी जे ग्रथ तेना भावना जाण जे पुरुष छे ते विनयेप्रणीत रसे उज्ज्वला छे तेना नेत्रथी स्नेहरूप आसु झरे छे ॥९॥

उद्दामग्रथभावप्रथनभवयशः सचय· सत्कवीना
क्षीराब्धिर्मथ्यते य. सहृदयविबुधैर्मेरुणा वर्णनेन ॥
एतड्डिंडीरपिंडो भवति विधुरुचेर्मडल जिष्णुपस्ता
स्तारा· कैलासशैलादय इह दधते वीचिविक्षोभलील॥१०॥

अर्थः—रुडा कविनी उद्दामके० प्रौढ एहवी जे ग्रथना भावनी रचना तेणे करीने उपनो जे यशनो समूह ते रूप क्षीर समुद्र ते सज्जन पंडिते वर्णनरूपी मेरुए करीने मथ्यो तेथी प्रगटयु जे फीण, तेनो उज्ज्वलो चन्द्रमा थयो, वली तेने वलोवता जे छाटा उड्या तेना तारामडल थया, तथा कैलासादिक पर्वत थया, ए रीते ग्रथनो जश लीलाए करी प्रसर्यो ॥ १० ॥

काव्य दृष्ट्वा कवीना हृतमभृतमिति स्व· सदा पानशक्री
स्वेद धत्ते तु मूर्च्छा मृदुतरहृदय· सज्जनो व्याकुतेन ॥

ज्ञात्वा सर्वोपभोग्यं प्रसृमरमथ तत्कीर्त्तिपीयूषपूरं
नित्यं रक्षाविधानानियमनमतितरां मोदते च स्मितेन ॥११॥

अर्थः—कविनां काव्य देखीने अमृत हरायुं, एम विचारीने देवताओ सदा अमृत पीवानी शंका धरता थका खेद धरे छे. शामाटे जे मृदु सुकोमल छे हृदय जेनुं एवा जे सज्जन ते मस्तक धूणावीने जे सर्वने उपभोग्यपणे प्रसरतुं एवुं, कविनी कीर्त्तिरूप अमृतनुं पूर तथा जेने निरंतर रक्षारूप ढांकणुं अत्यन्तपणे दीधुं छे तेने जाणीने, देखीने हर्ष पामे छे ॥ ११ ॥

निष्पाद्य श्लोककुंभं निपुणनयमृदा कुंभकाराः कवींद्रा
दार्ढ्यं चारोप्यस्मिन् किमपि परिचयात्सत्परीक्षार्कभासाम्
पक्कं कुर्वंति याढं गुणहरणमतिप्रज्वलद्दोषदृष्टि-
ज्वालामालाकराले खलजनवचनज्वालजिह्वे निवेश्य॥१२॥

अर्थः—रुडा नयरूप माटीवडे कवीश्वररूपी जे कुंभकार ते श्लोकरूप घडो निपजावे, पछी जेम कुंभकार ते घटने परिचयथी हाथे झाली, टपणे समारी तडके मूके तेम श्लोक घटने परिचय विचारीने पद अक्षर आघापाछा होय तेने समारे एवी रीते तडके मूके; पछी पंडितने देखाडी परिपक्व करे, ते जाणे नीभाडो देखाडे छे. हवे दुर्जन जाणे जे ए पंडित छे, तेथी माहरा गुण हरण थशे, एम बलतो थको पंडितनी जोडेली कलामां दोष काढवानी दृष्टिरूप आगमनी ज्वालानी श्रेणि तेणे करी विकराल एवी पोतानी नजररूप अग्नि, वली ते दुर्जननां जे वचन ते जाणे निंदारूप अग्निनी ज्वाला तेणे करी घडेली जीभ ते

वेहु अग्निना वचमा ग्रथरूप घडो मूकीने पाको करे छे, अने नीभाडानो राख थाय, घटमूल पोसाय छे ॥ १२ ॥

इक्षुद्राक्षारसौघ, कविजनवचन दुर्जनस्याग्नियत्रा–
न्नानार्थद्रव्ययोगात्समुपचितगुणे मद्यता याति सद्यः ॥
सतः पित्वा यदुच्चैर्दधति हृदि मुद घूर्णयत्यक्षियुग्म
स्वैर हर्षप्रकर्षादपि च विदधते नृत्यगानप्रबध ॥ १३॥

अर्थ.—शेलडी अने द्राक्षना रसना समूह सरखु कविनु वचन छे, पण दुर्जनरूपी अग्निनु जे यत्र छे ते मध्ये नाना प्रकारना द्रव्यना योगथकी रुडी रीते गुणपुष्टिने पामतु एहवु कविनु जे वचन ते, ताजा मदिरापणाने पामे छे, ते मदिराने हर्षे करी सज्जन पुरुष पान करीने हृदयमा हर्ष धरे छे, तेथी बे आखो घुर्णायमान थाय छे' स्वइच्छाये हर्षना कल्लोलथी पण श्लोकनो भावार्थ पामीने नाचे छे, गाय छे ॥ १३ ॥

नव्योऽस्माक प्रबधोऽप्यनणुगुणभृता सज्जनाना प्रभावात्
विख्यात' स्यादिति स्तुतिकरणविधौ प्रार्थनीया न किं नः॥
निष्णातास्च स्वतस्ते रविरुचयइवाम्भोरुहाणा गुणाना–
मुल्लासेऽपेक्षणीयो न खलु पररुचा कापि तेषा स्वभावः॥१४

अर्थ'—अमारो ग्रथ नवो छे, तोपण महागुणवत जे सज्जन तेना प्रभावथकी विख्यात थजो ! ए रीते रुडा हितने अर्थे अमार ए सज्जनने प्रार्थना करवा योग्य नथी शु ? अपितु छे ज जेम कमलना गुणने उल्लास करवाने सूर्यना किरण छे एम पोतायकी जे प्रविण छे एवा ते सज्जनना जे स्वभाव ते क्याये परुरुचिभणी निश्चे उपेक्षा योग्य नथी ॥ १४ ॥

यत्कीर्त्तिस्फूर्त्तिगानावहितसुरवधूवृंदकोलाहलेन
प्रक्षुब्धस्वर्गसिंधोः पतितजलभरैः क्षालितः शैत्यमेति ॥
अश्रांतभ्रांतकांतग्रहगणकिरणैस्तापवान् स्वर्णशैलो
भ्राजंते ते मुनींद्रा नयविजयबुधाः सज्जनव्रातधुर्याः ॥१५॥

अर्थः—हवे पोताना गुरुनो वर्णव करे छे. जेनी प्रसरती जे कीर्त्ति तेने गावाने सावधान एटले स्वर्गमां देवतानी अप्सराओ जे छे ते श्रीनयविजयजीना गुण गाय छे, तेना गीत शब्दना कोलाहले करीने क्षोभना पामी एवी जे स्वर्ग नदी तेनी पाज भांगी, तेथी पड्युं जे जल तेना समूहे करी पखाल्यो जे मेरु पर्वत, तेणे करी मेरुपर्वत पण शीतलताने पाम्यो छे. नहि तो अहर्निश प्रदक्षिणाये भमता जे ग्रहमंडल तेना किरणे करी तापवंत मेरु हतो, ते हमणां शीतल थयो थको शोभे छे. एवा ते मुनींद्र श्रीनयविजयनामा पंडित जे सज्जन पुरुषोना समूहमां वडेरा हता ॥ १५ ॥

चक्रे प्रकरणमेतत्तत्पदसेवापरो यशोविजयः ॥
अध्यात्मधृतरुचीनामिदमानंदावहं भवतु ॥ १६ ॥

अर्थः—तेना चरणना सेवक उपाध्याय श्रीयशोविजयजी ए प्रकरण करता हवा. ते अध्यात्मने विषे जेणे रुचि धरी छे, एवा प्राणीने रुचि सहित ए प्रकरण आनंद सुखनुं आपनार होजो ॥ १६ ॥

॥ इति सज्जनस्तुतिअधिकार एकविंशतितमः समाप्तः ॥

॥ इति महोपाध्याय श्रीकल्याणविजयजीगणि शिष्यमुख्य पंडित श्रीलाभविजयगणि शिष्य मुख्य पंडित श्रीजितविजयगणि तच्छिष्यमुख्य पंडित श्रीनयविजयगणी चरणकमलचचरीकेण पंडित श्रीपद्मविजयगणिसहोदरेण पंडित श्री यशोविजयेन विरचिते अध्यात्मसारप्रकरणे सप्तमग्रंथः समाप्तः ॥

॥ इति श्रीमत्तपागच्छे भट्टारकश्रीविजयसिंहसूरीश्वर शिष्य पंडित श्रीसत्यविजयगणि शिष्य पंडित श्री कर्पूरविजयगणि शिष्य पंडित श्रीक्षमाविजयगणि शिष्य पंडित श्रीयशोविजयगणि शिष्य पंडित श्रीशुभविजयगणि शिष्य पंडित श्रीवीरविजयगणिभिरध्यात्मसार ग्रंथस्य वार्त्तिकरूपो मुनि कीर्त्तिविजयस्यानुग्रहाया यटनार्थं कृत संवत् १८८१ चैत्र शुक्लपक्षे पूर्णिमायामितिश्रेयः ॥